THE BOOK WAS DRENCHED

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182093
UNIVERSAL
LIBRARY

OUP—881—5-8-74—15,000

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H80·9 Y65H Accession No. P.G.H1244

Author विजयेन्द्र स्नातक.

Title हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास

This book should be returned on or before the date last marked below.

हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास

लेखक

प्रो० विजयेन्द्र स्नातक, एम० ए०

शास्त्री, सिद्धान्त शिरोमणि

हिन्दी विभाग, रामजस कॉलेज, दिल्ली।

दिल्ली

रणजीत प्रिंटर्ज़ एंड पब्लिशर्ज़

प्रकाशक
रणजीत प्रिंटर्ज़ एंड पब्लिशर्ज़
४८७२, चाँदनी चौक,
देहली

सर्वाधिकार सुरक्षित हैं

मूवीज प्रेस, चावड़ी बाजार देहली में छपा।

दो शब्द

हिन्दी साहित्य का इतिवृत्त प्रस्तुत करने वाले अनेक इतिहास प्रतिवर्ष प्रकाशित होते रहते हैं। इतिहासों की इस बाढ़ को देखते हुए हमारा यह संक्षिप्त इतिहास अपनी क्या विशेषता रखता है यह बताना हम आवश्यक समझते हैं। यह इतिहास माध्यमिक कक्षाओं की आवश्यकता को ध्यान में रखकर लिखा गया है अतः उन्हीं कलाकारों का हमने विवेचन इसमें प्रमुख रूप से किया है जो इन कक्षाओं में किसी न किसी रूप में पढ़ाये जाते हैं। प्रवृत्तियों का वर्णन विस्तार पूर्वक किया गया है। आधुनिक काल का वर्णन साहित्य की विविध शैलियों के आधार पर है। गद्य का विकास दिखाकर उपन्यास, नाटक, कहानी, निबंध, आलोचना, कविता आदि सभी विषयों पर पृथक् पृथक् विस्तृत रूप से लिखा गया है और प्रत्येक क्षेत्र के प्रमुख कलाकारों का समीक्षात्मक रूप से परिचय प्रस्तुत किया है। भाव, विचार, भाषा और शैली सभी दृष्टियों से लेखकों का साङ्गोपांग चित्रण करने में हमारा प्रयोजन यह रहा है कि छात्रगण प्रमुख कलाकारों की समालोचना करने के लिए उपयुक्त सामग्री प्राप्त कर सकें।

पुस्तक के आदि काल और भक्तिकाल की रूप रेखा श्रद्धेय पं० गंगाराम जी शर्मा एम० ए० ने तैयार की थी। उसी को पल्लवित करके पुस्तक में रखा गया है। रीति काल का विवेचन मेरे स्नेह भाजन प्रो० भारतभूषण सरोज एम० ए० द्वारा प्रस्तुत किया गया है। इन दोनों सज्जनों का आभार स्वीकार करना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ। इन दोनों विद्वानों का अपने अपने काल पर पूर्ण अधिकार है अतः इनके सहयोग से पुस्तक की श्रीवृद्धि ही हुई है। मेरे छात्र श्री उमाकान्त गोयल और श्री सुरेशचन्द्र गुप्त ने भी मुझे आरम्भ से अन्त तक इस पुस्तक की

सामग्री चयन करने में बड़ी सहायता दी है। उनके परिश्रम के लिए धन्यवाद देकर मैं उनके प्रति अपने स्नेह भाव को कम नहीं करना चाहता। मुझे आशा है कि भविष्य में वे अवश्य ही योग्य लेखक बनेंगे।

पुस्तक में कुछ अक्षम्य त्रुटियाँ रह गई हैं जो अगले संस्करण में ही दूर हो सकेगी। फिर भी अन्त मे लगे हुए शुद्धिपत्र से पाठकगण भूलों को अवश्य सुधारने की कृपा अवश्य करें। यदि इस संक्षिप्त इतिहास को पढ़ कर छात्रों का हिन्दी साहित्य का विवेचनात्मक परिचय मिल सका तो लेखक अपना परिश्रम सफल समझेगा।

लेखक--
विजयेन्द्र स्नातक

रामजस कॉलेज,
[दिल्ली विश्व विद्यालय, दिल्ली]
१० अगस्त १६५२.

विषय सूची

अध्याय	विषय		पृष्ठ
	विषय प्रवेश		१
	पद्य काव्य, प्रबन्ध काव्य, वीरगीत		२
	मुक्तक		३
	श्रव्य गद्य काव्य, हिन्दी साहित्य का इतिहास	...	४
(१)	**हिन्दी साहित्य का आदि युग**	...	६
	आदिकाल का अपभ्रंश साहित्य	..	७
	अपभ्रंश साहित्य (सं० १०५० से १४५०)	.	८
	हेमचन्द्र, सोमप्रभसूरि ...	...	८
	जैनाचार्य मेरु तुङ्ग, शार्ङ्गधर ...	...	६
	पिङ्गल या प्राचीन हिन्दी या देसी भाषा साहित्य	...	१०
	खुम्मान रासो ...	...	१२
	बीसल देव रासो, पृथ्वीराज रासो	...	१३
	चन्दबरदाई ...	...	१४
	आल्हा ऊदल चरित्र ...	...	१५
	जगनिक ...	...	१६
	खुसरो ...	...	१७
(२)	**भक्ति काल (संवत् १३७५ से १७००)**	...	१८
	निर्गुण भक्ति और उसके प्रतिनिधि कवि	. .	२४
	निर्गुण मत की विशेषताएं ...	...	२५
	इसके प्रतिनिधि कवि ...	...	२७
	कबीर ...		२८
	धर्मदास ..	...	३२

अध्याय	विषय		पृष्ठ
गुरुनानक, दादू	...	...	३३
सुन्दरदास	...	...	३४
मलूकदास, रैदास	...	...	३५
प्रेममार्गी शाखा	...	...	३७
कुतबन	...	...	३६
मंझन, जायसी	...	...	४०
उसमान	...	...	४४
सगुण भक्ति	...	...	४५
रामभक्ति शाखा	..	...	४७
रामभक्ति शाखा के प्रतिनिधि कवि	...	...	४८
गोस्वामी तुलसीदास	...	...	४८
स्वामी अग्रदास, नाभादास	..	..	५३
प्राणचन्द चौहान, हृदयराम	...	.	५४
कृष्णभक्ति शाखा	...	...	५६
कृष्णभक्ति शाखा के प्रतिनिधि कवि		...	५८
महात्मा सूरदास	...	.	५८
अष्ट छाप के अन्य कवियों का वर्णन		...	६२
नन्ददास	...	...	६२
कृष्णदास, परमानन्द दास	..	...	६३
कुम्भनदास, चतुर्भुज दास	..	...	६४
छीत स्वामी, गोविन्द स्वामी	...	...	६५
अष्ट छाप के अतिरिक्त कृष्णभक्ति कवि		...	६५
विद्यापति ठाकुर	...	...	६५
हितहरिवंश	...	...	६६
गदाधर भट्ट, मीराबाई	...	...	६७

अध्याय	विषय			पृष्ठ
	स्वामी हरिदास	...	...	६८
	रसखान	...	...	६६
	भक्तिकाल की फुटकर रचनाएं		...	७०
	कृपाराम	...	...	७०
	महापात्र नरहरि बन्दीजन, नरोत्तमदास, आलम			७१
	महाराज टोडरमल, महाराज बीरबल, गंग			७२
	रहीम	...	...	७३
	केशवदास और सेनापति	...	...	७४
(३)	रीतिकाल संवत् (१७०० से १६००)			७५
	रीतिकाल की परिस्थितियाँ		...	७५
	राजनीतिक स्थिति		..	७५
	सामाजिक परिस्थिति	...	...	७६
	धार्मिक परिस्थिति	...	...	७८
	रीतिकाव्य की मुख्य प्रवृत्तियाँ	...	...	८०
	केशवदास	...	...	८४ (क)
	सेनापति		...	८४ (ग)
	चिन्तामणि	...	...	८५
	महाराज जसवंतसिंह			८६
	बिहारी —		..	८७
	बिहारी की जीवनी		...	८७
	दोहे की समास पद्धति		...	८६
	बहुज्ञता	...	...	६०
	संयोग श्रृङ्गार	...	...	६२
	वियोग श्रृङ्गार	...	..	६३
	भक्ति भावना	...		६५

अध्याय	विषय		पृष्ठ
वाग्वैदग्ध्य और उक्ति वैचित्र्य	.	...	९७
बिहारी की भाषा,		...	९८
बिहारी का प्रभाव	...	...	१००
मतिराम—	...	...	१००
कवित्व और आचार्यत्व	...	...	१०१
भूषण	...	...	१०२
कुलपति मिश्र	...	..	१०५
नेवाज ...	...	...	१०६
देव ...	...	...	१०७
देव के ग्रन्थ, कवित्व, शृङ्गार	..	...	१०९
वैराग्य भावना,	...	..	१११
आचार्यत्व,	...	..	११२
हिन्दी साहित्य में देव का स्थान	..	...	११३
भिखारी दास	...	...	११४
तोषनिधि	...	...	११६
रसलीन	...	...	११७
दूलह	...	..	११८
बेनी प्रवीन	...	..	११९
पद्माकर भट्ट	...	...	१२०
ग्वाल कवि	...	...	१२१
सबलसिंह चौहान	...	...	१२२
वृन्द, आलम	...	...	१२३
गुरु गोविन्द सिंह	...	...	१२४
गोरेलाल	...	...	१२५
घनानन्द	...	...	१२६
जोधराज	...	...	१२८

अध्याय	विषय		पृष्ठ
	सूदन ...	...	१२६
	बोधा ...	...	१३१
	सम्मन, बाबा दीनदयाल गिरि ...	...	१३२
	पजनेस, गिरधर दास ...	...	१३३
(४)	**आधुनिक काल** .	...	१३५
	हिन्दी गद्य का इतिवृत्त ...	..	१३५
	गोरखनाथ, विठ्ठलनाथ, नाभादास ..	..	१३७
	सूरति मिश्र ..		१३८
	खड़ी बोली ...	...	१३८
	रामप्रसाद निरञ्जनी ..		१३६
	मुन्शी सदासुखलाल, इंशा अल्लाखाँ	...	१४०
	लल्लूलाल, सदलमिश्र ..	...	१४१
	राजा राममोहन राय ...	...	१४२
	राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द ...	...	१४३
	राजा लक्ष्मण सिंह ...	...	१४३
	भारतेन्दु युग ...	..	१४४
	भारतेन्दु युग के प्रमुख लेखक ...	...	१४६
	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	..	१४६
	श्री बालकृष्ण भट्ट ...	...	१४८
	श्री प्रतापनारायण मिश्र ...	...	१४६
	श्री बालमुकुन्द गुप्त ...	...	१५१
	द्विवेदी युग ...	...	१५२
	बाबू श्याम सुन्दरदास, पं० राम नारायण मिश्र	...	१५२
	ठाकुर शिवकुमार सिंह ...	...	१५३

अध्याय	विषय		पृष्ठ
	आधुनिक हिन्दी साहित्य में नाटक	...	१५३
	बनारसी दास, हृदयराम ...	...	१५३
	[यु]ग प्रवर्तक भारतेन्दु ...	...	१५५
	[श्र]ी बद्री नारायण चौधरी प्रेमघन ...	...	१५७
	पं० प्रतापनारायण मिश्र, श्री राधाकृष्णदास	...	१५७
	चन्द्रशर्मा, श्री केशवराम भट्ट, राधाचरण गोस्वामी, बालकृष्ण भट्ट, अम्बिका प्रसाद व्यास, गोपालराम गहमरी, देवकी नन्दन खत्री		
	मिश्र बन्धु, पं० बद्रीनारायण भट्ट, रायदेवीप्रसादपूर्ण, मैथिली शरण गुप्त, पं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी, नारायण प्रसाद बेताब, पं० राधेश्याम कथावाचक, हरिकृष्ण जौहर, आगा हश्र		१५८
	श्री जयशंकर प्रसाद ...	...	१५९
	हरिकृष्ण प्रेमी ...	...	१६०
	गोविन्द वल्लभ पंत, उदयशंकर भट्ट ...	...	१६१
	लक्ष्मीनारायण मिश्र, सेठ गोविन्ददास	...	१६१
	एकांकी नाटक	...	१६१
	रामकुमार वर्मा, भुवनेश्वर प्रसाद, उपेन्द्रनाथ अश्क, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, उदयशंकर भट्ट, जी० पी० श्रीवास्तव, विष्णु प्रभाकर, रामचन्द्र तिवारी, भगवती चरण वर्मा	..	१६२
	आधुनिक हिन्दी साहित्य में उपन्यास	...	१६३
	श्री निवास दास, ठाकुर जगमोहनसिंह, अम्बिकादत्त व्यास, बालकृष्ण भट्ट, गोपालराम गहमरी, देवकी नन्दन खत्री		१६४

अध्याय	विषय	पृष्ठ
	श्री किशोरीलाल गोस्वामी	१६५
	अयोध्यासिंह उपाध्याय, मुंशी प्रेमचन्द ...	१६६
	विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक, जयशंकर प्रसाद ...	१६७
	श्री जैनेन्द्र कुमार	१६७
	प्रतापनारायण श्रीवास्तव, श्री चतुरसेन शास्त्री, श्री भगवतीचरण वर्मा, उपेन्द्रनाथ अश्क, भगवतीप्रसाद वाजपेयी, अनूपलाल मंडल, यशपाल, हीरानन्द सच्चिदानन्द वात्स्यायन अज्ञेय	१६८
	आधुनिक हिन्दी कहानी	१६९
	श्री किशोरीलाल गोस्वामी	१७१
	विश्वम्भरनाथ, राजा राधिकारमनसिंह, चंडीप्रसाद हृदयेश, श्री जयशंकर प्रसाद	१७२
	पं० ज्वालादत्त शर्मा, पं० चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, .. मुंशी प्रेचन्द, सुदर्शन, चतुरसेन शास्त्री, बेचन शर्मा उग्र, गोविन्दवल्लभ पंत, गोपालराम गहमरी	१७३
	श्री विनोदशंकर व्यास, मोहनलाल महता, वियोगी, ... सियारामशरण गुप्त, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, श्री जैनेन्द्रकुमार	१७७
	भगवती प्रसाद वाजपेयी, भगवती चरण वर्मा, ... हीरानन्द सच्चिदानन्द वात्स्यायन अज्ञेय, कमलाकान्त वर्मा, उपेन्द्रनाथ अश्क, यशपाल, सुभद्राकुमारी चौहान, राहुल सांस्कृत्यायन, सुमित्रानन्दन पन्त, महादेवी वर्मा, श्रीमती सत्यवती मलिक, उषादेवी मित्रा, होमवती, चन्द्रकिरण सौनरिक्सा, कमलादेवी चौधरी, शिवरानी, सर्वश्री इलाचन्द्र जोशी, वृन्दावनलाल वर्मा प्रतापनारायण वास्तव, राजेश्वर प्रसादसिंह, राधाकृष्ण,	१७९

अध्याय	विषय			पृष्ठ
	भैरव प्रसाद गुप्त, विष्णु प्रभाकर, रामचन्द्र तिवारी, जी० पी० श्रीवास्तव, अन्नपूर्णानन्द तथा कृष्ण			१७६
	देव प्रसाद, श्री भगवतशरण उपाध्याय		...	१८०
	कहानी की नवीनदिशा	...	...	१८२
	आधुनिक हिन्दी साहित्य में निबन्ध			१८४
	प्रमुख निबन्धकार	...	...	१९०
	श्री महावीर प्रसाद द्विवेदी	...	...	१९०
	सरदार पूर्णसिंह		..	१९१
	बाबू श्यामसुन्दरदास	.	..	१९३
	श्री पदुमलाल पन्नालाल बख्शी	...	...	१९४
	श्री वियोगी हरि	...	...	१९५
	बाबू गुलाब राय	...	..	१९६
	श्रीमती महादेवी वर्मा	...	...	१९७
	महाराज कुमार रघुवीरसिंह	..	...	१९८
	आधुनिक हिन्दी साहित्य में समालोचना		..	१९९
	प्रमुख आलोचक	...	...	२०५
	मिश्रबन्धु पंडित-प्रवर श्याम बिहारी मिश्र, गणेश बिहारी मिश्र			२०५
	शुकदेव बिहारी मिश्र	..	...	२०५
	श्री रामचन्द्र शुक्ल	...	...	२०६
	पंडित पद्मसिंह शर्मा	.	...	२०७
	आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी	...	...	२०९
	श्री नन्द दुलारे लाल वाजपेयी	...	...	२१०
	श्री राम कृष्ण शुक्ल 'शिली मुख'	...	...	२११
	श्री डा० नगेन्द्र	...	...	२१२
	जीवनी तथा अन्य विषय	...	...	२१४

अध्याय	विषय		पृष्ठ
	पत्र पत्रिकायें	...	२१४
	आधुनिक हिन्दी कविता ...	...	२१७
	भारतेन्दु युग का पद्य ...	...	२२५
	भारतेन्दु युग के प्रमुख कवि ..	..	२२६
	भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ...	..	२२६
	पं० प्रतापनारायण मिश्र, पं० अम्बिका दत्त व्यास	...	२२६
	पं० बद्रीनारायण चौधरी, श्री बालमुकुन्द गुप्त	...	२३०
	द्विवेदी युग ..	.	२३१
	पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी ...	.	२३१
	पं० श्रीधर पाठक ...	.	२३२
	पं० नाथूराम शंकर शर्मा ...	.	२३४
	श्री सत्यनारायण कविरत्न ..		२३५
	राय देवी प्रसाद पूर्ण ...	.	२३६
	श्री अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध'	..	२३७
	जगन्नाथ दास रत्नाकर ...	..	२३९
	पं० रामचरित उपाध्याय ...	..	२४१
	बाबू मैथिली शरण गुप्त ...	...	२४२
	पं० गयाप्रसाद शुक्ल सनेही ..	...	२४४
	सियाराम शरण गुप्त ...	..	२४५
	अनूप शर्मा, वियोगी हरि ...	..	२४७
	श्रीयुत गोपालशरण सिंह ...	..	२४९
	छायावाद युग ...	..	२५१
	श्री जयशंकर प्रसाद ...	...	२५१
	सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ...	...	२५३
	श्री सुमित्रानन्द पन्त ...	...	२५६

अध्याय	विषय		पृष्ठ
महादेवी वर्मा	...	...	२६०
माखन लाल चतुर्वेदी	...	...	२६४
गुरु भक्त सिंह	...	...	२६४
सुभद्रा कुमारी चौहान	...	...	२६६
श्री डा० रामकुमार वर्मा	...	...	२६८
बाल कृष्ण शर्मा नवीन	..	...	२६९
कविवर सोहन लाल द्विवेदी	...	...	२७०
रामधारी सिंह 'दिनकर'	...	..	२७२
श्री उदयशंकर भट्ट	...	...	२७५
हरिवंश राय 'बच्चन'	...	...	२७६
आरसी प्रसाद सिह	...	...	२७७
नरेन्द्र शर्मा	...	...	२७८
श्री सच्चिदानन्द वात्स्यायन	.	...	२७९
श्री रामेश्वर शुक्ल अञ्चल	...	...	२८०
श्री शिवमङ्गल सिंह सुमन'	...	...	२८१
श्री केदारनाथ अग्रवाल	..	...	२८२
वर्तमान हिन्दी कविता पर कुछ वाह्य प्रभाव		...	२८२
हिन्दी साहित्य का भविष्य	...		२८४

★

हिन्दी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास

★

विषय प्रवेश

मानव-हृदय भावनाओं की अनन्त क्रीड़ा-स्थली है। जो मनुष्य भावुक प्रकृति के होते हैं, उनके हृदय में भावनाओं के विकसित होने का पर्याप्त स्थान रहता है और अवसर पाकर वे जागृत और विकसित हो जातीं है। यह भी स्वाभाविक है कि प्रत्येक मनुष्य अपनी भावनाओं का भार अन्य मनुष्यों में बांट देने को उत्सुक रहता है।

मनुष्य की ये भावनाएं सामाजिक भावनाएं होती हैं और इन के वशीभूत होकर वह अकर्मण्य नहीं रहता। इनका उद्गार वह काव्य आख्यायिका आदि रचनाओं के तथा अन्य योग्य कार्य-सम्पादन के द्वारा करता है और इसी से साहित्य का जन्म होता है।

किसी देश अथवा जाति की राजनैतिक, सामाजिक, साम्प्रदायिक एवं धार्मिक परिस्थिति में अनिवार्य रूप से होने वाले परिवर्तनों के साथ उनके साहित्य में भी परिवर्तन होना स्वाभाविक है। हिन्दी साहित्य भी इसका जीता जागता उदाहरण है।

हिन्दी साहित्य का इतिहास लगभग एक हज़ार वर्ष पुराणा है। इसके (हिन्दी साहित्य के) जन्मदाता मुख्य रूप से हिन्दू समाज के सहृदय सदस्य तो हैं ही परन्तु कुछ उदार-हृदय मुसलमान भी इसके लेखक रहे हैं। हिन्दी साहित्य अपने वर्तमान रूप में खूब उन्नत और सर्वाङ्ग पूर्ण है। संस्कृत साहित्य या संसार के अन्य साहित्यों के समान हिन्दी साहित्य में भी गद्य का आविर्भाव बहुत पीछे हुआ।

हिन्दी काव्य (कवि की कृति) के दो मुख्य भेद हैं—

(१) दृश्य काव्य

(२) श्रव्य काव्य

(१) दृश्य काव्य वह काव्य है जिस की कथा वस्तु स्टेज पर दिखाई भी जा सके। इसमें रूपक तथा उपरूपक आदि सम्मिलित हैं।

(२) श्रव्य काव्य के भी दो भेद हैं—

(अ) पद्य काव्य (जो छन्दोबद्ध होता है)

(आ) गद्य काव्य जिसकी रचना छन्दोबद्ध नहीं होती।

पद्य काव्य

इसके तीन भेद हैं।

(क) प्रबन्ध काव्य

(ख) वीरगीत जैसे आल्हा खण्ड

(ग) मुक्तक

प्रबन्धकाव्य

इसके दो भेद हैं—

(क) महाकाव्य जिसका लक्षण रीति ग्रंथों में खूब लम्बा चौड़ा दिया हुआ है।

(ख) खण्ड काव्य। इसमें किसी उदार चरित महानुभाव के जीवन की एक घटना का वर्णन होता है। साहित्य के मर्मवेत्ताओं का कथन है कि गुप्त रूप से वह लेखक की आत्माभिव्यंजना होती है।

वीर गीत

महाकाव्य के समान न तो यह किसी नायक या किसी वंश का पूर्ण चरित होता है न यह सर्ग या काण्डों में विभक्त रहता है। यह तो वीरों के युद्ध में प्रदर्शित वीरता का वर्णन मात्र होता है। इसका

आकार काफ़ी बड़ा हो सकता है। जैसे आल्हा खण्ड में प्रत्येक लड़ाई का वर्णन एक गीत है। वीर गीतों का साहित्यिक मूल्य बहुत कम होता है। ये केवल गाए जाते हैं अतएव इनकी भाषा भी समय भेद और देश भेद के अनुसार परिवर्तित होती रहती है।

मुक्तक

मुक्तक काव्य भी वीर की प्रशंसित मात्र ही होती है। इसका आकार वीर गीतों से बहुत छोटा होता है और यह दस-बीस पंक्तियों में समाप्त हो जाया करता है। किसी एक वीर की प्रशंसा में अनेक मुक्तक काव्य लिखे जा सकते हैं और उनका परस्पर कुछ सम्बन्ध न होते हुए प्रत्येक अपनी स्वतंत्र सत्ता रखता है और स्वतन्त्र मोती के समान अपनी पृथक् शोभा रखता है। मुक्तक काव्य भी दो रूपों में पाया जाता है—

(अ) राजनैतिक दोहों के रूप में या सदुक्तियों के रूप में—जैसे रहीम के दोहे या कबीर की साखियां।

(आ) गीति काव्य—यह गाने के रूप में होता है। एक केन्द्रीय भाव कवि के हृदय में उठता है जिसे उसकी गीति का टेक कहते हैं जिसकी पुष्टि गीति में उदाहरण द्वारा या अन्य भावों द्वारा कवि बार बार करता है—जैसे कबीर के या सूरदास के बचन :

(सूर) प्रभु मोरे अवगुन चित न धरो। (टेक)
इक लोहा पूजा में राखत, इक घर बधिक परयो।
गुन अवगुन पारस नहीं बूझत कंचन करत खरयो॥
प्रभु मोरे अवगुन चित न धरो।
इत्यादि।

श्रव्य गद्य काव्य

इसके भेद अधोलिखित हैं—

१. उपन्यास,

२. कहानी,

३. निबन्ध,

४. समालोचना,

५. जीवनी,

६. पत्र-पत्रिकाएं ।

हिन्दी साहित्य का इतिहास

साहित्य में मुख्य प्रवृत्तियों को ध्यान में रखते हुए हिन्दी साहित्य का इतिहास अधोलिखित चार कालों में बाँटा जा सकता है—

१. आदिकाल या वीरगाथा काल—संवत् १०५० से १३७५ तक

२. पूर्व मध्य काल या भक्तिकाल—संवत् १३७५ से १७०० तक

३. उत्तर मध्य काल या रीतिकाल—संवत् १७०० से १९०० तक

४. आधुनिक काल या गद्य काल—संवत् १९०० से ······

कोई इतिहास लेखक इसी समय को तीन कालों में विभक्त कर देता है जैसे—

(क) आदि युग—संवत् १०५० से १३७५ तक

(ख) मध्ययुग—संवत् १३७५ से १९०० तक

इसके दो अवान्तर भेद करने ही पड़ेंगे

(अ) पूर्व मध्य और

(आ) उत्तर मध्य

(ग) वर्तमान युग—संवत् १९०० से ······

इसका अवान्तर भेद आधुनिक युग भी कह सकते हैं। ऊपर भी संकेत किया जा चुका है कि हिन्दी साहित्य अपने वर्तमान युग से

पहले मुख्य रूप से पद्य रूप में ही रहा है। उपर्युक्त तीनों कालों में जो थोड़ा बहुत गद्य मिलता है उसकी चर्चा वर्तमान काल से पूर्व हिन्दी साहित्य में गद्य का इतिहास इस शीर्षक के नीचे की जाएगी। वर्तमान काल से पूर्व हिन्दी प्रबन्ध काव्यों का इतिहास, हिन्दी वीर गीतों का इतिहास और हिन्दी मुक्तकों का इतिहास ही हिन्दी साहित्य का इतिहास है। अब तक ऊपर लिखे का संक्षेपः—

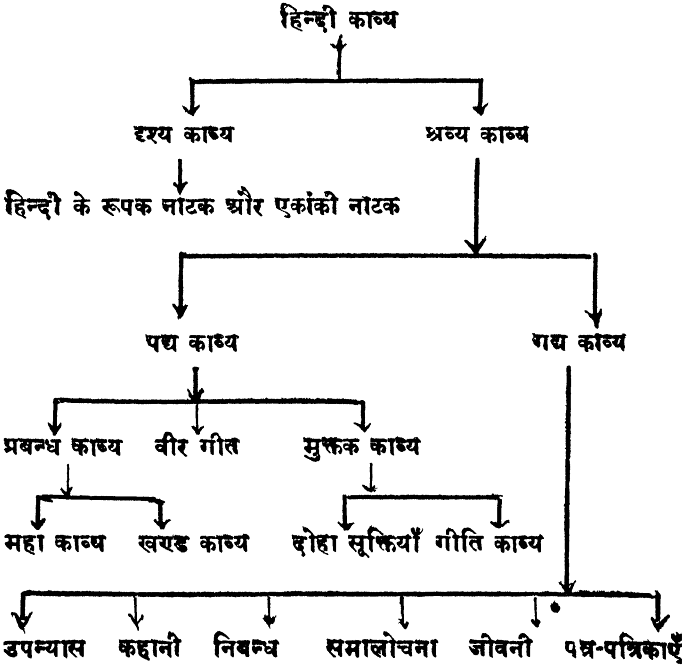

पहला अध्याय

हिन्दी साहित्य का आदि युग

यद्यपि इस युग की भाषा प्राचीन साहित्यिक हिन्दी थी परन्तु उसका कोई नमूना हम तक नहीं पहुंच सका। जो साहित्य इस युग में हिन्दी में लिखा गया उसे चारणों का साहित्य कहते हैं और उसको साहित्यिक हिन्दी न कह कर केवल प्राचीन हिन्दी या पिङ्गल साहित्य कहते हैं जिसमें कुछ राजस्थानी के शब्द भी सम्मिलित हैं। इस भाषा का प्रचार लेख के लिए अजमेर से काशी तक चारणों या भाटों के द्वारा होता था। वह साहित्यिक हिन्दी जिस से पूर्व में अवधी, पश्चिम में ब्रज और देहली और मेरठ के आस पास खड़ी बोली का विकास हुआ दूसरी थी और उसकी छाया चरणों की कविता में मिलती है। पिंगल के अनुकरण पर प्राचीन शुद्ध राजस्थानी को डिंगल कहते थे।

यद्यपि संवत् १०५० से १३७५ तक की साहित्यिक भाषा मुख्य रूप से पिंगल थी परन्तु उसके साथ साथ कुछ लेखक अर्थात् बज्रयानी सिद्ध नाथ पंथी साधु और कुछ जैन मत के आचार्य और विद्वान अपभ्रंश भाषा में भी लिख रहे थे अतः हिन्दी साहित्य के आदि युग का साहित्य दो भाषाओं में मिलता है।

(क) अपभ्रंश भाषा में—जिसे इस काल का अपभ्रंश साहित्य कहते हैं।

(ख) पिंगल साहित्य—जिसे प्राचीन हिन्दी साहित्य या प्राचीन देशी भाषा साहित्य कहते हैं।

आदिकाल का अपभ्रंश साहित्य

इस साहित्य में हम उसकी चर्चा करेंगे जो जैन मत के आचार्यों और विद्वानों ने लिखा। वज्रयानी सिद्धों का साहित्य और नाथपंथी साधु या हठयोगियों का साहित्य साम्प्रदायिक साहित्य होने के कारण उपेक्षणीय है। उसकी ओर संकेत करने के दो अभिप्राय हैं।

(१) वे लोग भी यद्यपि अपनी वाणियां मुख्य रूप से अपभ्रंश में लिखते थे परन्तु प्रचार के समय वे भी देशी भाषा हिन्दी का ही प्रयोग करते थे उस भाषा को इतिहास वेत्ताओं ने सधुक्कड़ी भाषा कहा है। कबीर आदि संत कवियों ने थोड़ा संशोधन करके इसी सधुक्कड़ी भाषा को अपनाया। इस सधुक्कड़ी भाषा में अपभ्रंश शब्द तथा फ़ारसी शब्द भी मिलते हैं।

(२) कबीर के साहित्य में हठयोगियों के विचारों की छाया मिलती है और इस अंश में वह नाथपंथीं साधुओं का भी ऋणी है।

अपभ्रंश भाषा का प्रयोग वीरगाथा काल के कुछ अनन्तर भी होता रहा और इसी कारण से विद्यापत्ति की चर्चा जो वस्तुतः भक्तिकाल के कवि हैं इस अपभ्रंश काल में भी आ जाती है क्योंकि उन्होंने अपभ्रंश भी लिखा। वस्तुतः हम मैथिल कोकिल विद्यापति और उनकी हिन्दी साहित्य की अनूठी पुस्तक पदावली की चर्चा भक्ति काल में मीरा के साथ करेंगे क्योंकि मीरा के समान उनकी भक्ति भी (यदि पदावली को भक्ति का ग्रंथ मानें तो) दाम्पत्य भाव को लिए हुए हैं। अपभ्रंश भाषा से तात्पर्य हमारा उन अनेक भाषाओं से है जिन से आर्य परिवार से सम्बन्ध रखने वाली अनेक वर्तमान भारतीय भाषाओं का संवत् ६०० के लगभग तथा जो ६०० से पूर्व देशी भाषाएं थीं और जो १० वीं शताब्दी के बाद केवल एक रूप में लेख भाषा ही रह गई। संवत् १०५० से पूर्व अपभ्रंश साहित्य का इतिहास इस पुस्तक के बाहर का विषय है।

अपभ्रंश साहित्य (संवत १०५० से १४५० तक)

इस साहित्य के प्रसिद्ध लेखक—हेमचन्द्र, सोमप्रभ सूरि, जैनाचार्य मेरुतुङ्ग, शार्ङ्गधर और विद्यापति हैं जिनका संक्षिप्त परिचय नीचे दिया गया है।

हेमचन्द्र—सम्भवतः ये संवत् ११५०-१२३० के बीच के समय में हुए हैं। ये अपने समय के एक प्रसिद्ध जैनाचार्य थे इन्होंने एक व्याकरण ग्रन्थ "सिद्ध हेमचन्द्र शब्दानुशासन" लिखा था। यह प्रधान रूप से अपभ्रंश भाषा का व्याकरण है परन्तु इसमें उदाहरण संस्कृत और प्राकृत भाषाओं के भी दिये गए हैं। अपभ्रंश के उदाहरणों में अधिकतर दोहे इनके समय से पहिले के हैं, जैसे—

भल्ला हुआ जु मारिया वहिणि महारा कंतु।
लज्जेजं तु वयंसिअहु जइ भग्गा घरु एंतु॥

अर्थः—हे बहिन यह अच्छा ही हुआ कि हमारा कंत मारा गया। यदि वह भागा हुआ घर आता तो मैं अपनी समवयस्क सखियों में लज्जित होती।

इन्होंने दोहों में आए हुए अपभ्रंश शब्दों को संस्कृत शब्दों का आदेश माना है।

इन्होंने 'कुमारपाल चरित' नामक एक काव्य भी लिखा था।

सोमप्रभसूरी—इन्होंने संवत् १२४१ के कुमारपाल प्रतिबोध नामक एक पुस्तक संस्कृत तथा प्राकृत में लिखी। बीच में कहीं कहीं संस्कृत के समान अपभ्रंश भाषा का भी प्रयोग किया है। अपभ्रंश भाषा के पद्य कुछ औरों के हैं और कुछ इनके स्वयं के लिखे हुए हैं, जैसे—

रावण जामउ जहि दिअहि दह मुह एक सरीरु।
चिंताविंध तइयहि जणणि कवणु पियावउ खीरु॥

अर्थः—माता ने जिस दिन दस मुख और एक शरीर वाले रावण

को जन्म दिया वह उसी समय से चिन्ता करने लगी कि मैं इसे दूध कैसे पिलाऊं

जैनाचार्य मेरुतुङ्ग—ये एक प्रसिद्ध विद्वान् तथा अपने समय के बहुत बड़े कवि थे। इन्होंने संस्कृत में प्रबन्ध चिन्तामणि नामक एक ग्रंथ की रचना की। (इस ग्रंथ में बहुत से प्राचीन राजाओं का संक्षिप्त वृत्त है। बीच बीच में प्राचीन अपभ्रंश के तथा प्राचीन हिन्दी के दोहे भी दिये गए हैं जो बहुत सुन्दर हैं। कुछ दोहों को तो राजा भोज के चाचा मुञ्ज ने बनाया था। मुञ्ज ने तैलंग देश पर आक्रमण किया और वहां के राजा तैलप ने उसे बन्दी बना लिया तथा रस्सियों से बांध कर अपने यहाँ ले गया वहाँ उसकी तैलप की बहिन मृणालवती से इसका प्रेम हो गया। इस सम्बन्ध के कुछ दोहे इस प्रकार हैं—

बाह बिछोडवि जाहि तुहुं, हउँ ते वइं का दोसु।
हिअय ठिय जइनीसरहि, जागउँ मुंज सरोसु॥

अर्थ - जिस प्रकार तू मेरी बाँह छोड़कर जाता है मैं भी उसी प्रकार जाती हूँ। यदि तू मेरे हृदय से निकल जाए तो मैं मानूं कि मुञ्ज रुठा है।

एक और—

एउं जन्म नग्गुंह गिड मड़सिरि खग्गु न भग्गुं।
तिकवां तुरियां न माणियां, गोरी गली न लग्गु॥

अर्थ—यह जन्म व्यर्थ ही खोया। न सुभटो के सिर पर तलवार टूटी। न तेज घोड़ी को सुसज्जित किया। न गोरी या सुन्दरी को गले लगाया।

शार्ङ्गधर—ये अपने समय के बहुत प्रसिद्ध विद्वान थे। आयुर्वेद का प्रसिद्ध ग्रंथ 'शार्ङ्गधर' इन्हीं की कृति है। इनकी दूसरी रचना 'शार्ङ्गधर पद्धत्ति' एक सूक्तिसंग्रह है। इनका समय १४ वीं

शताब्दी का अन्तिम चरण माना जाता है। इनकी हिन्दी में अपभ्रंश की बड़ी छाप मिलती है। उदाहरण

ढोला मारिय ढिल्लि महँ मुच्छिउ मेच्छ-सरीर।
पुर जज्जला मंतिवर चलिअ वीर हम्मीर॥

विद्यापति— जैसा ऊपर कहा जा चुका है अपभ्रंश भाषा में रचना वीरगाथा काल के बाद तक होती रही थी। विद्यापति का समय संवत् १४५० के लगभग माना जाता है। इनकी अपभ्रंश भाषा की विशेषता यह है कि इसमें देशीभाषा हिन्दी का भी अच्छा पुट है तथा संस्कृत शब्दों को भी लिए हुए है। इसको हम पूर्वी अपभ्रंश कह सकते हैं।

पिङ्गल या प्राचीन हिन्दी या देशी भाषा साहित्य

इस साहित्य का इतिहास देने से पहले पाठकों का ध्यान एक दो बात की ओर दिलाना आवश्यक प्रतीत होता है जो इस प्रकार हैं। यह साहित्य वीररस सम्बन्धी है और इसी लिए इस युग को वीरगाथा युग कहते हैं अर्थात् हिन्दी साहित्य के आदि काल में राजनैतिक परिस्थिति के कारण मुख्य रूप से वीर रस की ही कविता लिखी गई। सम्भव है प्राचीन हिन्दी में और विषयों पर भी कविता हुई हो। परन्तु वह अभी तक हमें अज्ञात ही है। किंच जिन कवियों की कविता हम तक पहुँची है वे प्रायः सब के सब जाति के भाट थे जिन का उद्देश्य अपने आश्रयदाता राजाओं को प्रसन्न कर के उन से धन प्राप्त करना था। विद्वान प्रतिष्ठत लेखकों के समान उन्हें यह ध्यान न था कि उनकी कविता ऐतिहासिक तथ्य से दूर रहने के कारण भविष्य में अधिक आदर न पा सकेगी। जिस राजा की उन को प्रशंसा करनी होती थी उस के विषय में मिथ्या युद्धों की कल्पना करके उसकी वीरता का बखान कर डालते थे। इसलिए यह स्पष्ट है कि इस काल की कविता में ऐतिहासिक तथ्य की मात्रा बहुत कम है। पाठकों को यह

भी ध्यान रखना चाहिए कि उस समय हिन्दी छापाखाना न होने के कारण उस समय की लिखी हुई पुस्तकों में पीछे से परिवर्तन, परिवर्धन होना एक साधारण सी बात है। यह परिवर्तन आदि केवल कथानक में ही नहीं अपितु भाषा में भी हुआ तथा लेखकों के विषय में हमारा ज्ञान इतना थोड़ा है कि इतिहास द्वारा निस्संदिग्ध रूप से उनका उस समय में होना भी सिद्ध नहीं कर सकते। लिखने का तात्पर्य यह है कि आदि युग का प्राचीन हिन्दी साहित्य तथा उसके लेखक सब संदिग्ध है। यह निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता कि उस समय के कौन कौन ग्रन्थ हैं। उन में कितना अंश उस समय का है और कितना बाद का बढाया हुआ है। कहीं कहीं प्रक्षेप स्पष्ट है यह दूसरी बात है। अन्तिम बात जो इस समय के साहित्य के विषय में याद रखनी चाहिए वह यह है कि उपर्युक्त त्रुटियों के रहते हुये भी इस समय का साहित्य वीर रस का बड़ा सुन्दर उदाहरण और जिन्देपन को लिए हुए है। कारण स्पष्ट है। इस समय के कवि केवल कवि ही नहीं थे अपितु सामंत भी थे, राजमन्त्री भी थे और अपने आश्रयदाता राजाओं के सखा भी थे। उनके साथ में युद्धों में जाते थे। तलवार चला कर उनके शत्रुओं का नाश करते थे। और युद्ध की भीषणता अपनी आंखों से देखते थे। अतएव युद्धों का वर्णन करते समय उनकी लेखनी में सजीवता है, ओज है और नव-नमोन्मेष शालिनी प्रतिभा की द्योतिका है। युद्धस्थल से दूर बैठे हुए या सुने सुनाए युद्ध का वर्णन करने वाले कवि की अशक्त लेखनी में वह शक्ति कहाँ ?

इस समय की राजनैतिक परिस्थिति

देश में घोर अशान्ति फैली हुई थी। मुसलमानों के आक्रमण प्रारम्भ हो चुके थे। यद्यपि उन्हें कई बार हार मिल चुकी थी तथापि अपने धर्म प्रचार के लिए वे नई उमंग और नए उत्साह से भारत

की ओर खिंच रहे थे। भारत की अतुल सम्पत्ति पर भी चिरकाल से उनकी गृध्रदृष्टि लगी हुई थी। इधर भारतवर्ष अन्तः कलह और अन्तः द्वेष के कारण बलहीन हो रहा था। आपस की फूट तथा भारत का छोटे छोटे राज्यों में विभक्त होना भारत के दुर्भाग्य के कारण बन रहे थे। विदेशियों को रोकने के लिए दृढ़ और सामूहिक प्रयत्न का सर्वथा अभाव था। न देश में कोई ऐसा शक्तिशाली राजा था जिसकी छत्रछाया में एकत्रित होकर हिन्दू धर्मान्ध शत्रु का मुकाबला करते। फिर भी थोड़ी बहुत वीरता राजपूतों में ही दिखाई देती थी और उन्हीं की प्रशंसित में उनके भाटों ने प्रबन्ध काव्य और मुक्तक के रूप में अपने मालिक राजाओं की वीरता के गीत गाए।

देश की धार्मिक दशा भी बहुत बिगड़ चुकी थी। बाममार्गी बौद्धों का और नाथपंथी साधुओं का प्रभाव बढ़ रहा था। वेदादि शास्त्रों पर से जनता की श्रद्धा हट रही थी। अतः वीररस को छोड़कर और किसी विषय की कविता सामाजिक अवनति के कारण सम्भव ही न था।

किञ्च, विद्वान आचार्य और पंडितों ने अभी हिन्दी को अपनाया न था क्योंकि हिन्दी का जन्म हुए अभी थोड़ा समय हुआ था। अतएव वह अभी तक शिष्टों की लेख-भाषा भी नहीं बनी थी। कोमलकांत पदावली के अभाव में भी वीररस को छोड़ कर और रस की कविता नहीं हो सकती थी। इस काल के प्रसिद्ध ग्रन्थ—

खुम्मान रासो—यह एक प्रबन्ध काव्य है। आजकल इसकी जो प्रति मिलती है उसमें महाराणा प्रताप तक का वर्णन है। हिन्दी साहित्य के विद्वानों का कथन है कि इस पुस्तक के मूल रूप में चित्तौड़ के दूसरे खुम्मान (जिनका समय फ़ारसी के इतिहास के आधार पर संवत् ८७० से ९०० तक माना जाता है) के युद्धों का

वर्णन था। इसके लेखक दलपति विजय कहे जाते हैं। इस पुस्तक का वर्तमान रूप परिवर्धित रूप है। भाषा की दृष्टि से भी यही सिद्ध होता है कि प्राचीन सामग्री को मिलाकर वर्तमान रूप में एक नया खुम्मान रासो तैयार कर दिया गया है।

बीसलदेव रासो—यह एक छोटा सा ग्रन्थ है जो कि वीरगीत रूप में है। नरपति नाल्ह इसके लेखक बताए जाते हैं जो बीसलदेव के समकालीन अर्थात् सम्वत् १२२० के लगभग के ज्ञात होते हैं। यह १०० पृष्ठों का एक छोटा सा ग्रन्थ है और चार सर्गों में लिखा हुआ है। इसमें राजस्थानी का पुट अधिक है। इसलिए इसको डिंगल का ग्रंथ भी मानना अनुचित नहीं। इसकी भाषा में अर्बी, फ़ारसी और तुर्की के शब्द भी मिलते हैं। इन कारणों से तथा अन्य बातों के आधार पर हम इस पुस्तक के विषय में भी नहीं कह सकते कि यह हमें अपने मूल रूप में मिली है। इस ग्रंथ की भाषा का एक नमूना देखिए—

परणबा चाल्यो बीसलराय, चउरास्था सहु लिया बोलइ।
जान तणो साजति करउ, जीरह रंगावली पहर ज्यों रोय॥

पृथ्वीराज रासो—यह एक बहुत बड़ा प्रबन्ध काव्य है। पृथ्वीराज के सामंत एवं सखा चन्दबरदाई का लिखा हुआ बतलाया जाता है। इसमें राजपूतों के चार कुलों की अग्निकुण्ड से उत्पत्ति तथा पृथ्वीराज का आद्योपान्त वृतान्त मिलता है। इसमें ६९ समय हैं। इतने विस्तृत ग्रन्थ को महाकाव्य कहना कहाँ तक सम्भव है यह साहित्य मर्मज्ञ ही कह सकते हैं। भाषा की दृष्टि से तथा विषय की दृष्टि से ग्रन्थ एक खिचड़ी है। कहीं भाषा संस्कृत का ढग लिए है। कहीं प्राकृत और अपभ्रंश के अनुकरण पर है। कहीं साहित्यिक हिन्दी है तो कहीं ठेठ राजस्थानी है। एक ओर चौहान नरेश पृथ्वीराज का वर्णन है और दूसरी ओर महाराणा प्रताप तथा उनके पुत्र

अमरसिंह तक का इतिहास इसमें उपलब्ध होता है। यदि इतिहास की कसौटी पर इस ग्रन्थ को लाया जाता है तो इसमें अनेक घटनाएं ऐसी मिलती हैं जो इतिहास-विरुद्ध हैं। उदाहरण के लिए पद्मावती समय देखिए। यह कौन पद्मावती है यह कौन बताए? यदि इसमें दिये गए सम्वतों की पड़ताल की जाय तो वे ऐतिहासिक तिथियों से मेल नहीं खाते। यह अब तक किसी हिन्दी के विद्वान् ने नहीं माना कि यह ग्रन्थ अपने वर्तमान रूप में १२ वीं शताब्दी में लिखा गया।

यह सब कुछ होते हुए भी यह ग्रन्थ अपने गुण रखता है। भाषा का सौंदर्य, विषय की स्पष्टता तथा युद्धों के वर्णन में ओज इस ग्रन्थ में प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। इसका मनोहर पद-विन्यास इसका अर्थ गौरव और सदुक्तियां, इसमें छन्दों की अनेकरूपता तथा दोहे और चौपाइयों की छटा पढने वालों के दिल को मोहित करती हैं। इसकी कथावस्तु चाहे सुगठित न हो तो भी हिन्दी साहित्य के आदि युग का यह प्रथम वीर काव्य प्रशंसनीय है।

चन्दबरदाई—पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा का कथन है कि चन्दबरदाई नाम का कोई कवि पृथ्वीराज के दरबार में न था। उस समय का इतिहास तथा उस समय के लिखे हुये संस्कृत ग्रन्थ जैसे काश्मीरी पंडित जयानक का लिखा हुआ 'पृथ्वीराज विजय' नहीं बताते कि चन्द नाम का कोई कवि पृथ्वीराज के दरबार में था। यदि रासो में वर्णित घटनाओं को विचारें और उनमें की हुई अशुद्धियों को देखें तो वह निश्चय दृढ़ हो जाता है कि पृथ्वीराज के विषय में ऐसी अशुद्धियां पृथ्वीराज का समकालीन कवि नहीं कर सकता। ओझा जी का कथन है कि सम्भवतः चन्दबरदाई पृथ्वीराज के किसी वंशज का राजकवि हो जिसने पृथ्वीराज के विषय में अपने श्रुति ज्ञान के आधार पर पृथ्वीराज रासो लिखा जिसको वर्तमान रूप महाराणा प्रताप के

पुत्र अमरसिंह के काल में अर्थात् १७ वीं शताब्दी में मिला। इसके विरुद्ध पं० मोहनलाल विष्णुलाल मानते हैं कि चन्दबरदाई पृथ्वीराज का सामंत कवि था। इन्होंने रासो में आए हुए सम्वतों को भी सुसंगत कर देने का प्रयत्न किया है। इनका कथन है कि जन-श्रुति को अर्थात् चन्दबरदाई का जन्म उसी दिन हुआ जिस दिन पृथ्वीराज का हुआ अर्थात् पृथ्वीराज के पिता अजमेर नरेश सोमेश्वर का राज घराना चन्द के पूर्वजों का यजमान था। चन्दबरदाई गज़नी में पृथ्वीराज के साथ मरा। पृथ्वीराज रासो को बिना समाप्त किये ही उसकी समाप्ति वा भार अपने पुत्र जल्हन को देकर चन्दबरदाई गज़नी चले गए इत्यादि को सर्वथा मिथ्या मानना ठीक नहीं।

सत्य कुछ भी हो चन्दबरदाई नाम का पृथ्वीराज के दरबार में कोई कवि न था यह कहना सर्वथा विश्वसनीय प्रतीत नहीं होता। बहुत सम्भव है कि चन्दबरदाई ने अपने आश्रयदाता पृथ्वीराज का अनेक प्रकार के छन्दों में स्तवन किया हो जिसमें पीछे से मिलावट और परिवर्तन होने के कारण अब पुस्तक जाली सी बन गई। यह हम भी मानते हैं कि वर्तमान रासो के कुछ भाग संवत् १६०० या संवत् १७०० से पहिले के नहीं हो सकते परन्तु रासो की किसी अंश में भी प्राचीनता सिद्ध नहीं हो सकती यह भी नहीं माना जा सकता।

राणा अमरसिंह की आज्ञा से चन्द के लिखे अनेक छन्दों के साथ जो परम्परागत सम्पत्ति थी नई रचनाएं जोड़कर उसे वर्तमान रूप मिला यह मत युक्तिसंगत प्रतीत होता है। इस ग्रंथ की भाषा का नमूना—

पूरबदिस गढ़ गढ़नपति; समुदसिषर अति द्रुग्ग।
तहँ सु विजय सुर राजपति, जादूकुलह अभग्ग॥

आल्हा ऊदल चरित्र—यह वीर गीत है। यह भी अपने असली रूप में हम तक नहीं आया। यद्यपि इसका मूल रूप लुप्त

हो गया तथापि अपने बदले रूप में यह पुस्तक उत्तरीय भारत के ग्रामों में सर्वप्रिय बना हुआ है। वीर गीत होने के कारण इनकी भाषा में परिवर्तन तो अनिवार्य था ही। इसे आल्हाखण्ड भी कहते हैं। कहते हैं कि इसके मूल लेखक कवि जगनिक थे। आज भी बरसात के दिन जब गांव में किसान चौपाल में खाली बैठे हो और कोई आल्हा का गाने वाला ढोलकी पर आल्हा गा रहा हो तो युवक हृदय उछल पड़ते हैं। आजकल के आल्हाखण्ड की भाषा के नमूने नीचे दिये जाते हैं—

बारह बरसि लै कूकर जीएं, औ तेरह लै जिएं सियार।
बरिस अठारह छत्री जीएं, आगे जीवन के धिक्कार॥

× × ×

चलें बन्दूखैं बादलपुर जो नव्वे की एक विकाय।
मघा नखत सम गोली बरसै डोलि न छुहिया जाय उठाय।
को गति बरणों बन्दूखन की हमरे बूत कही न जाय।
सूंड लपेट हाथी भिड़िगै अंकुश भिड़े महौतन क्यार।
हौदा हौदा यक मिली ह्है दामिन खैंचि लई तलवार।
भाला बरछिन सों कोउ मारै कोऊ लेय ढाल की वार।
सूंडि लपेटे जंजीरन को हाथी रण में रहे घुमाय।

जगनिक—ये भी जाति के भाट थे और कालिंजर के राजा परिमल के राज कवि थे। वीर गीत आल्हाखण्ड इन्हीं महानुभाव की कृति बताई जाती है। सम्भव है आल्हाखण्ड अपने मूल रूप में परिमालरासो एक प्रबन्ध काव्य हो? जिसके अब केवल आल्हा और ऊदल की वीरता का बखान करने वाले गीत ही अवशिष्ट रह गए हों। वर्तमान आल्हाखण्ड से अनुमान किया जा सकता है कि जगनिक एक उच्चकोटि का कवि होगा और उसकी वर्णन शक्ति भी अद्भुत होगी!

खुसरो— इनका समय संवत् १३४० के लगभग माना जाता है। 'खालिक बारी' के लेखक यही महाशय थे। खुसरो की विशेषता यह है कि इन्होंने फ़ारसी और हिन्दी के बीच एकता और मेल का प्रशंसनीय प्रयत्न किया। इनकी रचनाओं में फ़ारसी और हिन्दी का सुन्दर मेल मिलता है। इन्होंने खड़ी बोली में कुछ पहेलियां लिखी थीं। उन में से कितनी हम तक आई हैं यह निश्चित रूप से नहीं कह सकते। ये खड़ी बोली के प्रथम कवि हैं। पहेली यदि काव्य की कोटि में आती है तो हम इन्हें मुक्तक काव्य कहेंगे। इन्हें फुटकर कविता भी कह सकते हैं। इनका हिन्दी से प्रेम प्रशंसनीय बात थी। इनकी दो पहेलियाँ (यदि ये इन्हीं की हैं) नीचे दी जाती हैं—

एक नार ने अचरज किया, सांप मार पिंजरे में दिया।
ज्यों ज्यों सांप ताल को खाए, सूखे ताल, सांप मर जाए॥
(दिये की बत्ती)

एक थाल मोती से भरा, सब के सिर पर औंधा धरा।
चारों ओर वह थाली फिरे, मोती उससे एक न गिरे॥
(आकाश)

★

दूसरा अध्याय

भक्ति-काल (संवत् १३७५ से संवत् १७०० तक)

सामान्य परिचय— हिन्दी साहित्य में भक्तिधारा यद्यपि समयानुकूल प्रवर्तित हुई तथापि मुख्य रूप से उसका आधार संस्कृत ग्रन्थों में वर्णित भक्ति पद्धति है। संस्कृत के धार्मिक ग्रन्थों में तथा सामान्य संस्कृत साहित्य में भक्तिवाद का प्रारम्भ कब हुआ यह यहां बताना प्रकृत पुस्तक को लम्बा करना है। परन्तु इतना लिखना अनुचित न होगा कि हिन्दी साहित्य के प्रारम्भ के बहुत पहिले इस देश के सभ्य समाज ने ज्ञान, कर्म और भक्ति के समन्वय का रहस्य भली भांति समझ लिया था। पुराणों को छोड़िये श्रीमद्भगवद् गीता जैसे प्रतिष्ठित ग्रन्थों में भक्ति का बड़ा महत्व दिखलाया गया है। गीता में तो यहां तक कहा है कि वह ज्ञान जो कर्म कलाप विधान द्वारा संपाद्य है उसकी परिपुष्टि तथा पूर्णता भक्ति के बिना हो ही नहीं सकती।

"भक्त्या मामभिजानाति यावान् यश्चास्मि तत्त्वतः।
ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम् ॥"

ईश्वर, जीव, प्रकृति तथा ब्रह्म का प्रतिपादन दर्शन-शास्त्रों में तथा अन्य संस्कृत ग्रन्थों में बड़ा गहन, मार्मिक तथा गवेषणापूर्ण समझा जाता है। वेदान्त आदि शास्त्रों में दो अवस्था बताई हैं—

१. सांसारिक अवस्था
२. पारमार्थिक सत्ता या पारमार्थिक अवस्था

पारमार्थिक अवस्था में दृश्यमान् अदृश्यमान् सब कुछ ब्रह्म ही है जिसका आधार—

"सर्वम् खल्विदम् ब्रह्म, नेह नानास्ति किञ्चनः।"

भगवती श्रुति है। यह ब्रह्म अनिर्वचनीय निगु'ण, निर्विकार तथा ज्ञान स्वरूप है। यह ब्रह्म रूप ज्ञान अनादि अनन्त स्वतः प्रकाश और चैतन्य है। समस्त जगत् न केवल उस से व्याप्त ही है अपितु उस का मायाजन्य एक रूप है। परन्तु समस्त जगत् ब्रह्मरूप होते हुये भी किसी आचार्य के मत से मिथ्या है तथा और दूसरों के मत के अनुसार ब्रह्म का एक तात्विक रूप है।

संसारावस्था में ब्रह्म के अतिरिक्त जीव, ईश्वर, प्रकृति आदि और पांच पदार्थ मानने पड़ते हैं जिनके मत में संसारावस्था मिथ्या है उनको भी मुक्ति से पहिले संसार को एक सत्य वस्तु माननी पड़ा है। संसार झूठा है यह ज्ञान मुक्ति प्राप्ति के अनन्तर ही हो सकता है, जैसे जागने पर ही मनुष्य अपनी स्वप्नावस्था को मिथ्या कहता है। इस भेद के रहते हुए भी संसार दोनों मतों के अनुसार एक स्वीकृत वस्तु सिद्ध हो जाती है और मुक्ति की प्राप्ति जो ब्रह्म के साथ ऐक्य है अथवा पक्षान्तर में गोलोक प्राप्ति है एक पृथक् विषय बन जाता है हां, उसकी प्राप्ति के साधन निस्संदेह दो बन जाते हैं। भगवान् शंकर जिन के मत के अनुसार जगत् मिथ्या है, ज्ञान ही एक वस्तु है जिससे ब्रह्म की प्राप्ति हो सकती है। जगत् अर्थात् ईश्वर, जीव, प्रकृति उनका सम्बन्ध तथा माया इत्यादि के मिथ्या होते हुए भी इनके ज्ञान द्वारा है ब्रह्म रूप सत्य पदार्थ की प्राप्ति हो सकती है। मिथ्या पदार्थ के ज्ञान से सत्य पदार्थ का ज्ञान होने के अनेक उदाहरण दुनिया में प्रसिद्ध हैं। जैसे—

यदि किसी को चन्द्रमा दिखलाना हो तो दिखलाने वाला सुविधा के लिए समीप खड़े हुये दूसरे को कह देता है कि पश्चिम में खड़े हुये

पीपल के वृक्ष के दो हाथ ऊपर देखिए चांद दीख जायगा। परन्तु यह मानना ही पड़ेगा कि इस मत के अनुसार ईश्वर और प्रकृति दोनों मिथ्या हैं भक्ति के लिए स्थान नहीं है शास्त्रों में प्रतिपादित अनेक कार्य कलाप केवल चित्त शुद्धि के साधन मात्र हैं। यदि चित्त शुद्धि पहिले ही से प्राप्त है तो कार्य कलाप का सर्वथा बहिष्कार इस मत में भली प्रकार सिद्ध हो जाता है। न उपासना और भक्ति के लिए कोई अवकाश ही रहता है क्योंकि दीवार होने पर ही उस पर चित्र आदि बनाए जा सकते हैं। उपास्य के अभाव में उपासना अथवा उपासक का क्या काम।

दूसरे पक्ष के अनुसार ब्रह्म निराकार और निर्गुण होते हुए भी उतना ही सगुण है जितना कि शंकर मत में सगुण होते हुए भी निर्गुण। साकार होते हुए भी निराकार। दोनों पक्षों के इस दृष्टिकोण को भली प्रकार समझ लेना चाहिए यही द्वैत और अद्वैत का भेद है। द्वैत पक्ष में संसार सत्य है और भगवान की लीला स्थली जिसका यथार्थ रूप में दर्शन दिव्य दृष्टि की प्राप्ति के अनन्तर हो सकता है। दिव्य दृष्टि की प्राप्ति ज्ञान द्वारा ही साध्य है परन्तु इस पक्ष में इस साधन रूप ज्ञान की भक्ति बड़ी भारी सहायिका है। बिना भक्ति के ज्ञान पंगु और कर्म अन्धा है। इस पक्ष में मुक्ति का रूप भी एक साकार वस्तु है। निराकार अवस्था होते हुए भी इस पक्ष में उपेक्षणीय है।

सारांश यह है कि भगवान शंकर के मत में ब्रह्म सत्य है और जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति रूप तीन प्रकार का जगत् उसमें अज्ञान के कारण इस प्रकार प्रतीत हो रहा है जिस प्रकार अंधकार के कारण मनुष्यों को रस्सी में सांप की प्रतीति हो जाती है अर्थात् शांकर मत में ईश्वर और उसका बनाया हुआ जगत् होते हुए भी नहीं है और रामानुज, मध्वाचार्य, निम्बार्काचार्य, रामानन्द तथा श्री वल्लभ जी जैसे अनेक आचार्यों के अनुसार विशिष्टाद्वैत, द्वैत और शुद्धाद्वैत मान लेने से

भक्ति को पूर्ण अवकाश मिल जाता है तथा ईश्वर एक पारलौकिक पदार्थ ही नहीं इस लोक का भी विषय बन जाता है।

हिन्दी साहित्य का भक्ति कालिक भाग पढ़ने से हमें स्पष्ट हो जाता है कि यद्यपि निर्गुणाश्रित ज्ञान धारा हिन्दी साहित्य में भी आई परन्तु सगुण पक्ष ने हिन्दी साहित्य को वह अनुपम सौंदर्य और विशिष्टता दी जिसका गीता या भागवत् आदि संस्कृत के ग्रंथ-रत्नों में उतना विशद् विस्तृत तथा सुन्दर दर्शन नहीं होता। भक्तों ने अपने भक्ति भाव के कारण इतने और इतने प्रकार से सुन्दर पद कहे जो भक्ति सम्प्रदाय की अतुल और मूल्यातीत संपत्ति बनी। उस भक्ति साहित्य पर आलोचको के कटु आक्षेप केवल उचोक्ति मात्र हैं। अवतारवाद संस्कृत साहित्य में माना जा चुका था –

"यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युथान······॥'

इत्यादि श्री गीता के वचन के अनुसार न केवल रघुकुल तिलक श्री रामचन्द्र और वृन्दावन विहारी श्री कृष्णचन्द्र अपितु कच्छप आदि अनेक भगवान के अवतार जगत् के कष्ट निवारण के लिए अधर्म और अन्याय को दबाने के लिए और धर्म के पुनरोद्धार के लिए संस्कृत के आचार्यों द्वारा स्वीकृत हो चुके थे। भगवान के अवतार कब कब हुए किस प्रकार हुए तथा भगवान का मित्र मण्डल (शुद्धात्माएं) भगवान के मनोविनोद् के लिए किस प्रकार उनके साथ भूमण्डल पर आता है और फिर अपनी सांसारिक माया का संवरण करके पुनः गोलोक या बैकुण्ठ लोक में पहुंच जाते हैं यह विषयान्तर है जिसको विस्तार देने की यहाँ आवश्यकता नहीं। परन्तु इतना कह देना आवश्यक प्रतीत होता है कि निगुर्ण, निर्विकार ब्रह्म जिसका वर्णन नेति नेति द्वारा उपनिषदों में मिलता है संसा पर कोई असाधारण आपत्ति आने पर इस पुण्यलोक भारत-

वर्ष में किसी भूतपूर्व तपस्वी के घर पैदा होते हैं और अपने अवतरण का प्रयोजन सिद्ध करते हैं। भक्तजन इन्हीं रूपों का ध्यान, उनके कृत्यों का वर्णन तथा लीला का रसपान करते रहते हैं। उनकी कल्पित मूर्तियों द्वारा पूजन और अर्चन के प्रकार का प्रासाद बना लेते हैं और उसके द्वारा सरलता से चित्त शुद्धि और मनः शुद्धि प्राप्त करके संसार सागर से मुक्ति प्राप्त करते हैं। हिन्दी साहित्य को इस अवतारवाद से बहुत सहारा मिला।

राम साहित्य और कृष्ण साहित्य जो हिन्दी साहित्य की अमूल्य संपत्ति है इसी का फलस्वरूप है। अवतारवाद स्वीकार करने से ईश्वर एक बैकुण्ठ या गोलोक की ही संपत्ति नहीं रहता अपितु साँसारिक वस्तु बन जाता है। जिसको हम यदि आपत्ति के समय पुकारें, बुलावें या स्मरण करें तो स्तम्भ फाड़कर हमारी आंखों के समक्ष उपस्थित हो सकता है जिसको हम पति मानकर अपनी भावधारा के उद्गार के द्वारा रिझा सकते हैं जिसको पुत्र मानकर अपना सर्वस्व दे सकते हैं, जिसको सखा मानकर अपने दिल के गिले और उपालम्भ दे सकते हैं।

संस्कृत साहित्य में तीर्थों का महत्व भी खूब पाया जाता है। जिन स्थानों का किसी न किसी भगवत् लीला से सम्बन्ध हो जाता है वे स्थान भक्तों के हृदय के आकर्षण का केन्द्र बन जाते हैं। भक्त समझते हैं कि ऐसे स्थानों पर निवास करने से भगवत् भक्ति सुलभ है और उसके द्वारा भगवत् साक्षात्कार तथा आत्मज्ञान सरलता से हो सकता है। समाज के तीर्थ विषयक विश्वास ने भी हिन्दी साहित्य को खूब सुन्दर और उन्नत बनाया। लिखने का तात्पर्य यह है कि मुसलमानों के आगमन से जब हिन्दुओं की वीरता समाप्त हुई जब उनका गौरव गाथा गान न हो सका तो राजनैतिक दुर्गति में पड़े हुए हिन्दू समाज का ध्यान सिवाय परमात्मा की ओर जाने के

और तरफ को जा नहीं सकता था। यह हिन्दू समाज का सौभाग्य था कि उस समय निगु`ण पंथी अनेक संत जो कवि भी थे देश में उत्पन्न हो गए जिन्हों ने अनीश्वरवाद और ईश्वरवाद के बीच में भटकते हुए समाज को सम्भाल लिया जिसकी भित्ति पर आगे सगुण भक्ति का वह सुन्दर समुज्जवल प्रासाद निर्मित हुआ जिसकी जोड़ संसार के किसी साहित्य में नहीं मिलती।

भक्तिकाल के लेखकों में कुछ मुसलमान महानुभाव भी मिलते हैं। उनके वचन भी बहुत मीठे और अनूठे हैं। इन मुसलमान लेखकों में कुछ सूफ़ी कवि भी सम्मिलित हैं जिनकी भक्ति पद्धति का अन्तर्भाव निगु`ण भक्ति में ही हो जाता है। हिन्दी के भक्ति साहित्य को हम नीचे लिखी हुई श्रेणियों में विभक्त कर सकते हैं।

हिन्दी का भक्ति का साहित्य

- निगु`ण
  - ज्ञान मार्ग
  - प्रेम मार्ग
- सगुण
  - राम भक्ति
  - कृष्ण भक्ति

भक्ति के निगु`ण और सगुण मार्गों में से किस मार्ग का प्रचार हिन्दी साहित्य में पहले हुआ यह बताना बहुत कठिन है। निर्गुण और सगुण दोनों पद्धतियाँ प्राचीन काल से प्रचलित थीं। मुसलमानों के आने के समय सगुण भक्ति की परम्परा कुछ दब सी गई थी। उसके अनेक कारण थे। यद्यपि संस्कृत के विद्वान आचार्य शास्त्रीय पद्धति से धर्म का निरूपण कर रहे थे परन्तु फिर भी नवीं शताब्दी से लेकर वीर गाथाकाल की समाप्ति तक वाममार्गी बौद्धों के कारण, नाथपंथी साधुओं के कारण, मुसलमानों के एकेश्वरवाद के कारण

सगुणोपासन, मूर्ति पूजा, तीर्थों का महत्व बहुत कम हो गया था। वस्तुत: धर्म के सनातन रूप में कुछ त्रुटि आ गई थी। धर्म जो अन्तरात्मा की भूख मिटाने का पदार्थ है बाह्याडम्बर तथा कपोलकल्पित बातों से इतना भर गया था कि समाज की श्रद्धा न याज्ञिक कर्मों के विधान में ही थी। न समाज ईश्वर के मानने में ही कोई तत्त्व देखता था। न समाज मन्दिरों में ही कोई विशेषता देख पाता था। हिन्दुओं के सामने मुसलमानों के द्वारा उनकी देव मूर्तियां भग्न की जा रही थीं। स्त्रियाँ अपमानिता होती थीं। सब प्रकार का अत्याचार अनाचार देश में फैल रहा था। तीर्थों की शुद्धता भ्रष्ट की जा रही थी। पर भगवान किसी ओर से आते दिखाई न देते थे। यह समय या तो अनीश्वरवाद के लिए उपयुक्त था या निर्गुण उपासना के लिए। हिन्दी साहित्य के इतिहासज्ञों ने निर्गुण भक्ति की ही पहिले चर्चा की है। इस पुस्तक में भी उसी मार्ग का अनुसरण किया गया है। बात भी ठीक है। बाबर जैसे समद्रष्टा बादशाहों के राज्यकाल में सगुण भक्ति के विकाश के लिए भी पर्याप्त अवकाश मिला। निर्गुण के अन्दर प्रेममार्गी शाखा भी जो सूफ़ी कवियों की देन है आती है। अब सब से पहले हिन्दी साहित्य में निर्गुण भक्ति जो संत कवियों की अपार कृपा का फल है और हिन्दू समाज पर संत कवियों का अपार ऋण है वर्णन किया जाता है। यह कहना कठिन है कि यदि इस समय संत कवियों का प्रादुर्भाव न होता तो धार्मिक क्षेत्र में हिन्दू समाज की क्या अवस्था होती। धर्म के मार्ग से हिन्दू समाज को विचलित करने वाली अनेक शक्तियां उस समय देश में काम कर रही थीं।

(क) निर्गुण भक्ति और उसके प्रतिनिधि कवि

भक्ति के सामान्य परिचय में यह स्पष्ट रूप से बताया जा चुका है कि निर्गुण भक्ति जो विशुद्ध ज्ञान मार्ग है उसका क्या तात्पर्य है।

हिन्दी साहित्य में इस धारा का प्रारम्भ हिन्दू और मुसलमान सन्त कवियों की सद्भावना के कारण हुआ देश में मुसलमानों का आधिपत्य हो जाने के कारण हिन्दुओं ने समझ लिया कि मुसलमान को यहां से भगाना असंभव है। उधर विजयशील धर्मान्ध मुसलमानों ने भी अपने दिल में समझ लिया कि यद्यपि तलवार के बल से भारतवर्ष पर विजय प्राप्त हुई परन्तु यहां पर मुसलमानी राज्य स्थापित करने के लिए धार्मिक कट्टरपन को कुछ कम करना ही होगा। दोनों पक्षों में छिपी हुई इस भावना की उपस्थिति के कारण प्राकृतिक नियम के अनुसार देश में संत महात्मा कवियों का जन्म हुआ। जिन्हों ने एक धर्म का, भक्ति का, उपासना का, परमेश्वर को याद करने का नया मार्ग चलाया जिसको निर्गुण शाखा का ज्ञान मार्ग कहते हैं।

(अ) इस मत की विशेषताएं

निर्गुण मत के सब से प्रसिद्ध प्रतिनिधि कवि महात्मा कबीर हैं जिनको 'बचनावली' पढने से इस मार्ग की विशेषताओं का भली भांति ज्ञान हो सकता है तथापि इस मत के समस्त प्रतिनिधि कवियों के वचनों में आई हुई सामान्य विशेषताओं का प्रतिपादन भी आवश्यक है। जिसका संक्षेप में निरूपण नीचे लिखी हुई पंक्तियों के द्वारा हो सकता है।

इनके मत में ईश्वर एक है जो निराकार निर्गुण होते हुए भी घट घट में विराजमान हैं। उसे खोजने के लिए न किसी मन्दिर में जाने की आवश्यकता है न किसी तीर्थ पर समाधि लगाना आवश्यक है और न ही उसको प्रसन्न करने के लिए उसकी मूर्ति बना कर उस पर फल फूल चढाने व भोग लगाने की आवश्यकता है। बनावटी आचार विचार से परमात्मा नहीं मिलता। यद्यपि ये लोग ईश्वर का निर्गुण रूप मानते थे परन्तु निर्गुण का तात्पर्य अभाव नहीं था। निर्गुण होते हुए भी वह सब जगह छाया हुआ है, सबको देखता है।

उसका कोई रूप नहीं परन्तु कोई रूपवान् उससे खाली भी नहीं। वह राम भी है कृष्ण भी है परन्तु उन से बहुत बड़ा भी है। वह समझ से बाहर है इसलिए निर्गुण है। वह अपार है इसलिए निर्गुण है। जड़ चेतन सब में उसकी छाया मौजूद है। सब जगह होते हुए और सब कुछ करते हुए भी वह निर्गुण निर्विकार है। निर्गुण कवियों ने ईश्वर को साकार नहीं माना उसका एक ही कारण प्रतीत होता है और वह यह है कि साकार कह कर उसको एक ही स्थान में नियमित करना है। जगन्नायक होते हुए भी उसे निर्विकार कहना उसके महत्व का प्रतिपादन है। जगत् का रचने वाला बताते हुए भी उसे निर्विकार कहना उसमें न्याय की पूर्णता दिखाना है। निर्गुण का तात्पर्य निर्गुण पंथी कवि गुणों से शून्य नहीं मानते थे।

नाथ पंथी साधुओं के ईश्वर के असमान निर्गुण मार्गी संत कवियों का ईश्वर करुणा आदि भावों से आप्लावित है। इसीलिए निर्गुणपंथ में प्रेम का समावेश है शंकर के उपाधि रहित ब्रह्म की उपासना तो सम्भव ही नहीं है। इन संत कवियों के ईश्वर, जीव, प्रकृति; वेदान्तियों के अभिमत पदार्थ ही हैं परन्तु उनकी वर्णन शैली भिन्न है। संत कवि हृदयाकाश में ईश्वर के साक्षात्कार के लिए मन के रागादिद्वेष के दूर करने को तथा चित्तशुद्धि और मनः शुद्धि को उसके दर्शन की प्राग् अवस्था मानते हैं और दर्शन के समय सब जगत् को ईश्वर रूप ही देखते हैं। उस अवस्था में माया का जो संसार स्थिति का हेतु है सर्वथा नाश और अभाव देखते हैं। मुक्ति की अवस्था यही अवस्था है जिसको संस्कृत के आचार्यों ने स्वीकार किया है। इनके अनुसार भी "एकमेक ह्वै मिलि रह्या" मुक्ति का रूप है अर्थात् परमात्मा की भक्ति से नटनी माया का नाश होता है और उसके अनन्तर परमात्मा जो सब जगह उपस्थित है परन्तु घट अर्थात् हृदय में जिसका अनुभव अर्थात्

ध्यान किया जाता है प्रकट हो जाता है और फिर साधक अपने आप को समस्त जगत् को जल थल सबको ईश्वर का रूप ही पाता है।

इन कवियों की कविताओं में सत्संग पर बहुत ज़ोर दिया गया है। सत्गुरु की खोज का बहुत आग्रह किया गया है। ईश्वर से मिलाने वाले सत्गुरु की महिमा का बड़ा बखान किया गया है। ये गुरु को भी गुरु कहते हैं और ईश्वर को भी गुरु मानते हैं अर्थात् इन दो अर्थों में गुरु शब्द का प्रयोग करते हैं।

ये जात पात का खंडन करते हैं। तीर्थों की विशेषता इन्हें स्वीकृत नहीं। मूर्तिपूजा के ये शत्रु थे। अवतारवाद और धर्म के बाह्याडम्बर का तिरस्कार करते थे धर्म का ऐसा निरूपण करते थे जिसको हिन्दू और मुसलमान दोनों स्वीकार कर सकें। इन का विचार था कि ध्यान और योग भी ईश्वर मिलन के साधन हैं।

समाज सेवा, चित्त शुद्धि इनके धर्म के अङ्ग थे। गोमुखी में हाथ डाल कर जप करना, मनः शुद्धि न करते हुए तीर्थों पर जाना, हृदय में कपट होते हुए माथे पर तिलक लगाना आदि का पूर्ण बल से खंडन करते थे।

यद्यपि संत कवियों का राम निराकार और सर्व व्यापी है तथापि उसकी प्राप्ति के लिए दाम्पत्य सम्बन्ध की अथवा सेव्य सेवक-भाव की कल्पना असम्बद्ध और अशुद्ध नहीं क्योंकि उपाधिविशिष्ट ब्रह्म के ज्ञान द्वारा ही उपाधिरहित ब्रह्म की प्राप्ति हो सकती है यह इनका विश्वास था। यदि ब्रह्म को समझने के लिए भी उपाधिविशिष्ट न मानें तो न उसका वर्णन हो सकता है और न उसका चिन्तन हो सकता है।

(आ) इसके प्रतिनिधि कवि

कबीर, धर्मदास, नानक, दादू, सुन्दरदास, मलूकदास तथा रैदास हैं।

यद्यपि इन महात्माओं के वचन सांप्रदायिक रंग में रंगे हुए हैं और मानव जीवन की पारिभाषिक समस्याओं के प्रतिपादन से दूर हैं तथापि यदि इन को हिन्दी साहित्य से निकाल दिया जाय तो हिन्दी साहित्य कंगला बन जाएगा। इसलिए उनका इतिहास लिखना भी उचित ही है।

(इ) कबीर

आज तक की गवेषणाओं के आधार पर कबीर का जन्म संवत् १४५६ और मृत्यु संवत् १५७५ ठहरता है। जनश्रुति है कि ये एक विधवा ब्राह्मणी के गर्भ से उत्पन्न हुए। उस ब्राह्मणी ने लोकापवाद के भय से इन्हें लहरतारा नामक तालाब के किनारे फैंक दिया जहां से कि नीरु-नीमा नामक जुलाहे दम्पति ने इनको उठा लिया और अपनी कोई संतान न होने के कारण पुत्रवत् इनका पालन किया। बड़े होकर कबीर भी जुलाहे का ही काम करने लगे।

रामानन्द जी उस समय के एक प्रसिद्ध महात्मा थे। उन्हीं को कबीर ने गुरु रूप में स्वीकार किया। कुछ लोगों का कहना है कि कबीर शेख तकी के शिष्य थे किन्तु यह ठीक नहीं जान पड़ता। कबीर की रचनाओं के पढने से तो ऐसा प्रतीत होता है कि स्वयं कबीर ही शेख तकी को उपदेश दे रहे हैं।

कबीर बिल्कुल अनपढ़ थे परन्तु थे बहुश्रुत। इन्होंने विद्यार्थी बन कर शास्त्रों का अध्ययन नहीं किया था अपितु संत महात्माओं के सत्सङ्ग से इन्होंने वेदान्त, उपनिषद् एवं पुराणों का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। नाथ साधुओं से मिलते जुलते रहने के कारण उन्हें योग का भी अच्छा ज्ञान हो गया था। इसीलिए कबीर जी की रचनाओं में इडा, पिंगला और षट्चक्र आदि शब्द अनेक स्थानों पर प्रयुक्त हुए हैं। यद्यपि कबीर ने स्थान स्थान पर ज्ञानियों एवं नाथपंथियों के पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया तथापि वे नाथपंथी साधुओं एवं कोरे ज्ञानियों

से पृथक् थे। उनके प्रतिकूल इन्होंने भक्ति मार्ग का भी आश्रय लिया था। कबीरदास एक उच्च कोटि के भक्त थे परन्तु अन्य भक्तों के असमान तिलक छापा आदि बाह्य आडम्बरों से घृणा करते थे। ये तो सरल जीवन के पक्षपाती थे।

कबीर का काव्य एक सच्चे हृदय के उद्गार हैं। चाहे उनकी भाषा सुन्दर न हो, चाहे उनके छन्द पिङ्गल शास्त्र के अनुसार ठीक न हो परन्तु इस बात से कोई इनकार नहीं कर सकता कि उनका काव्य एक सच्चे भक्त की वाणी है, एक निर्भीक मनुष्य का कथन है। हम यह मानते हैं कि उनकी तथाकथित 'सुधुक्कड़ी' भाषा में ब्रज, एवं अवधी के अतिरिक्त अरबी, फारसी तथा अन्यान्य भाषाओं के भी शब्द मिलते हैं। परन्तु यह इनकी कविता का भूषण है दूषण नहीं। वास्तव में अपने मौलिक एवं हृदय से उठे हुए भावों को व्यक्त करने के लिए कबीरदास ने शब्द विशेष के खोजने का प्रयत्न ही नहीं किया। यदि वे ऐसा करते तो शायद हमें इतनी प्रचुर मात्रा में तथा इतनी उच्चकोटि का काव्य न दे सकते। इनकी समस्त कविता मुक्तक है। निर्गुण काव्यधारा की सभी विशेषताएं इनकी कविता में मिलती हैं। इन्होंने उलट-बांसियों का बड़ा प्रयोग किया है। विद्वान इन उलट-बांसियों को उनके रहस्यवाद का अंग कहते हैं।

कबीर की रचनाओं का अध्ययन करने पर बहुत से स्थल ऐसे आते हैं जो कि अस्पष्ट प्रतीत होते हैं। इनका कारण है उनका रहस्यवाद। रहस्यवाद जीवात्मा के उस प्रयत्न के प्रकाशन का नाम है जब कि वह सत्पुरुष से चिरसम्बन्ध स्थापित करने के लिए उत्सुक होती है। इतना ही नहीं बल्कि जब वह उसके निकट पहुंच जाती है। दोनों में कोई अन्तर अथवा व्यवधान नहीं रहता अर्थात् दोनों एकाकार हो जाते हैं। इस मिलन का स्पष्ट वर्णन नहीं हो सकता। कबीरजी कहते हैं—

अकथ कहानी प्रेम की कछु कही न जाय।
गूंगा केरी सरकरा बैठा ही मुस्काय॥

कबीर के रहस्यवाद में प्रेम की प्रधानता है। परमात्मा के प्रति उनका प्रेम पति-पत्नि के रूप में ही अपनी पूर्णता को पहुंचता है। कबीर जी ने अपने को 'राम की बहुरिया' मानकर ईश्वर से प्रेम सम्बन्ध स्थापित किया है। इस प्रकार के प्रेम की एक विशेषता है कि जब तक जीवात्मा रूप पत्नी परमात्मा रूप पति को प्राप्त नहीं करती तब तक वह उसके वियोग में तड़पती रहती है। कबीर कहते हैं

वै दिन कब आवेंगे माई।
जा कारण हम देह धरी है, मिलबौ अंग लगाई॥

परन्तु यह प्रेम मार्ग कोई सरल, सुगम कार्य नहीं है—

यह तो मारग प्रेम का खाला का घर नाहिं।
सीस उतारै भुइँ धरै तब आवै इति माहि।

जायसी ने भी एक स्थान पर इस प्रेम मार्ग की कठिनता का वर्णन किया है—

जौं लगि आप हेरान न कोई। तौं लगि हेरत पाव न सोई॥

इस मार्ग पर अग्रसर होने वाले व्यक्ति के लिए कबीर ने गुरु के महत्व को भी भली भांति माना है। बिना गुरु के तो उस अनन्त सत्ता का आभास पाना भी दुष्कर है। कबीर कहते हैं—

वस्तु कहीं ढूंढे कहीं केहि विधि आवे हाथ।
कह कबीर तब पाइये जब भेदी लीजै साथ॥

कबीर के धर्म सिद्धान्तों का संक्षेप में निरूपण करते हुए यहां इतना ही लिखा जा सकता है कि इनकी कविता में माया, ब्रह्म, जीव सब का वर्णन मिलता है उस पर वेदान्त की छाप होते हुए भी वैष्णव मत का प्रभाव अधिक लक्षित होता है। हिन्दी साहित्य के निर्गुण कवियों में कबीर का स्थान बहुत ऊंचा है। ऊपर कहा जा

चुका है कि अद्वैत वादियों का ब्रह्म उपाधि शून्य तथा अनन्त ज्ञान स्वरूप है। जो ज्ञान नित्य तथा चैतन्य रूप है और उसमें उपास्थ-उपासक भाव सम्बन्ध की कल्पना असम्भव है परन्तु कबीर ने अपने धर्म सिद्धान्तों में निर्गुण ब्रह्म मानते हुए भी उसमें गुणों की कल्पना और आरोप किया है। उस ब्रह्म को अद्वैतवादियों के समान कहीं निर्विकार निरञ्जन तथा उपाधि शून्य माना और कहीं उसमें गुण का सम्बंध कर दिया। अपना धर्म-निरूपण करते हुए कहीं उसमें योग की छाया ले आए। इस कबीर मत को हम अद्वैतवाद, द्वैतवाद, हठयोग तथा प्रेम मार्ग की खिचड़ी तो नहीं कहते परन्तु इतना मानने में संकोच भी नहीं होता कि महात्मा कबीर समन्वय की भावना लेकर चले थे और धर्म के क्षेत्र में जहां तक धर्म का सम्बंध हो सका वह उन्हों ने किया। समयानुकूल तथा इष्ट धर्म मार्ग यही था। महात्मा कबीर शुद्ध हृदय के सरल स्वभाव के संत थे। हिन्दू मुसलमानों का मेल उनके जीवन का लक्ष्य था। उनके लिखने का मार्ग कुछ उद्दण्डता को लिये हुये अवश्य है। परन्तु संत हृदय झूठे भेदभाव से चिढ़ रहा था और उनकी कविता में जो फटकार और धिक्कार मिलती हैं वह उसी का फल है।

इनकी वाणी में दृढ़ता और सत्यता दोनों मिलती हैं और हिन्दू-मुस्लिम दोनों धर्मों के बाह्य अनिष्ट रूप की निन्दा और चित्त शुद्धि, सद्भावना की ओर झुकाव साफ़ दिखाई देता है। इनके बचन साखी, रमैनी और शब्द इन तीन रूपों मे मिलते हैं जिनका विभाजन और उदाहरण अधोलिखित हैं—

कबीर ने चार सौ से अधिक साखियां लिखो हैं। देखने में तो साखो छोटी सी है पर है ज्ञान का भण्डार—

माला तो कर में फिरै, जीभ फिरै मुख माहिं।
मनुवाँ तो दहुँ दिस फिरै, यह तो सुमिरन' नाहिं॥

'रमैनी' कबीर के सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने वाली छोटी छोटी कविता का नाम है, जैसे—

मुआ अहै मरि जाहुगे मुये की बाजी ढोल।
स्वप्न सनेही जग भया सहिदानी रहिगा बोल॥

'शब्द' भी रमैनियों की भांति कबीर के सिद्धान्तों की व्याख्या करते हैं परन्तु उनका छन्द भिन्न है—

रहना नहिं देस बिराना है।
यह संसार कागद की पुड़िया, बूंद पड़े घुल जाना है।
यह संसार कांट की बाड़ी, उलझ पुलझ मर जाना है॥
यह संसार झाड़ और झांखर, आग लगे बरि जाना है।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, सतगुरु नाम ठिकाना है॥

धर्मदास

ये कबीर के समसामयिक थे। मूर्तिपूजा और तीर्थाटन के पक्षपाती भी थे। इतिहासज्ञों का कथन है कि महात्मा कबीर के उपदेश सुनकर इन्होंने निर्गुण पंथ स्वीकार किया। महात्मा कबीर के देहावसान के अनन्तर ये उनकी गद्दी पर बैठे। ये जाति के बनिये थे और सत्संग से इनको भी बहुत प्रेम था। कबीर का शिष्य होने के अनन्तर अपनी सारी सम्पत्ति बांट दी थी। कबीर के समान ये खंडन मण्डन में नहीं पड़े और सत्संग द्वारा जो ज्ञान इन्हें प्राप्त हुआ था वह बड़ी सरल भाषा में प्रकट किया हुआ मिलता है। इनका एक पद देखिए—

झरि लागै महलिया, गगन घहराय।
खन गरजै खन बिजुली चमकै, लहर उठै शोभा बरनि न जाय॥
सुन्न महल से अमृत बरसै, प्रेम आनन्द ह्वै साधु नहाय॥
खुली किवरिया मिटी अंधियरिया, धन सतगुरु जिन दिया लखाय॥
धरमदास बिनवैकर जोरी, सतगुरु चरन में रहत समाय॥

गुरु नानक

सिख सम्प्रदाय के प्रवर्तक गुरु नानक देव का जन्म संवत् १५२६ में ज़िला लाहौर तिलवण्डी ग्राम में हुआ। ये जाति के खत्री थे। संवत् १५४५ में सुलक्षणी देवी से इनका विवाह हुआ जिससे इनको दो पुत्र रत्न प्राप्त हुए श्रीचन्द और लक्ष्मीचन्द। (श्रीचन्द उदासी सम्प्रदाय के स्थापक माने जाते हैं।) सांसारिक जीवन से खिन्न होकर इन्हो ने घर छोड़ दिया। ये भी एकेश्वरवाद के मानने वाले थे। इन पर भी कबीर मत का बहुत प्रभाव पड़ा और इसी धर्म का प्रचार गुरु नानक ने पंजाब में प्रारम्भ कर दिया। कबीर के समान इनके पास भी अधिक पुस्तक विद्या न थी। जो कुछ इन्होंने लिखा वह सत्संग और अनुभव का परिणाम है। इनके भजन पंजाबी और हिन्दी दो भाषाओं में मिलते हैं। हिन्दी के भी दो रूप हैं। कहीं ब्रज और कहीं पंजाबी मिली खड़ी बोली। कबीर के समान इनकी कविता में रूपक नहीं है। सुनने वाले के हृदय पर तुरन्त प्रभाव डालने वाले भाव सीधी सादी भाषा में मिलते हैं। उदाहरण स्वरूप इनका एक पद देखिए—

साधो मन का मान त्यागो।
काम क्रोध संगति दुर्जन की ताते अहनिस भागो॥
सुख दुख दोनों समकरि जानै और मान अपमाना।
हर्ष शोक ते रहे अतीता तिन जग तत्त्व पिछाना॥
अस्तुति निंदा दोऊ त्यागै खोजै पद निखाना।
जन 'नानक' यह खेल कठिन है किनहूँ गुरमुख जाना॥

दादू

इनका जन्म संवत् १६०१ में गुजरात जिले के अहमदाबाद गांव में हुआ। मूलरूप से दादू के धर्म सिद्धान्तों का आधार कबीर के सिद्धान्त ही थे फिर भी इनका पंथ निगुर्ण शाखा के अन्दर दादूपंथ नाम से प्रसिद्ध है। कोई इतिहासज्ञ इनको ब्राह्मण कहता है और कोई

इनको मोची या धुनिया मानता है। अनुमान ऐसा है कि ये नीची जाति के महानुभावों में से थे। जयपुर से २०-२५ कोस की दूरी पर भराने की पहाड़ी पर इन्होंने संवत् १६६० में शरीर छोड़ा। इनके अनुयायी तिलक और कंठी में विश्वास नहीं करते। माला हाथ में अवश्य रखते हैं और सत्यराम कहकर एक दूसरे को सम्बोधित करते हैं। इनके बचन दोहों के रूप में और गीतों के रूप में मिलते हैं। इनकी हिन्दी में राजधानी का और कुछ कुछ गुजराती और पंजाबी का मेल भी मिलता है। ईश्वर की व्यापकता, जात-पात का खंडन, संसार की नश्वरता इनकी कविता में मिलती है। उदाहरण—

दादू देख दयाल को सकल रहा भरपूर।
रोम रोम में रमि रह्या, तू जनि जानै दूर॥
केते पारखि पचि मुए कीमति कही न जाइ।
दादू सब हैरान हैं गूंगे का गुड़ खाई॥
जब मन लागे राम सों तब अनत काहे को जाइ।
दादू पाणी लूण ज्यों ऐसै रहैं समाई॥

सुन्दरदास

निर्गुण पंथ के कवियों में सुन्दरदास जी ही एक संस्कृत के बड़े विशिष्ट पंडित थे। इनका जन्म रियासत जयपुर में दौसा नगर में संवत् १६५३ में हुआ। कहते हैं एक बार दादू दौसा गए। उस समय सुन्दर दास की आयु छः वर्ष की थी। उसी समय से ये दादू के शिष्य बन गए थे। जैसा इनके नाम से प्रतीत होता है ये बड़े सुन्दर पुरुष थे। कविता भी बड़ी सुन्दर किया करते थे। ३० वर्ष की अवस्था तक काशी में रहकर संस्कृत साहित्य और वेदान्त का खूब अध्ययन किया जिसका प्रभाव इनकी कविता में दिखाई देता है। ये फ़ारसी के भी पंडित थे। इनके ग्रंथों में सुन्दर विलास बहुत प्रसिद्ध है। जिसमें अनुप्रास, यमकादि सभी शब्दालंकार मिलते हैं। काशी से आने के

बाद रियासत जयपुर में शेखावाटिका में रहने लगे थे। इनकी कविता का एक नमूना देखिए—

देषौ भाई आज भलौ दिन लागत।
वरिषा रितु को आगम आयौ बैठि मलारहि रागत॥
राम नाम के बादल उनमें घोरि घोरि रस पागत।
तन मन माहिं भई शीतलता गये विकार जुदागत॥
जा कारन हम फिरत वियोगी निश दिन उठि उठि जागत।
सुन्दरदास दयाल प्रभु सोइ दियौ जोइ मांगत॥

मलूकदास

इनका जन्म संवत् १६३० में और मृत्यु संवत् १७३० के लगभग मानते हैं। ये इलाहाबाद जिले के निवासी थे तथा औरङ्गज़ेब के समसामयिक थे। ये भी संस्कृत के बड़े अच्छे पंडित थे। छन्दः शास्त्र में निपुण थे और बड़ी प्राञ्जल भाषा लिखते थे। इनके उपदेश भी जो पुस्तकों के रूप में मिलते हैं बड़े वैराग्य पूर्ण हैं। 'अजगर करै न चाकरी पंछी करै न काम' यह दोहा इन्हीं का बताया जाता है। इनकी रचना का एक उदाहरण देखिए—

अब तो अजपा जपु मन मोरे।
सुर नर असुर टहलुवा जाके मुनि गंध्रव हैं जाके चेरे।
दस औतार देखि मत भूलौ, ऐसे रूप घनेरे॥
अलख पुरुष के हाथ बिकाने जब तैं नैननि हेरे।
कह मलूक तू चेत अचेता काल न आवै नेरे॥

रैदास

इतिहासज्ञों का मत है कि रामानन्द जी के बारह शिष्यों में से एक रैदास थे। इन्होंने अपने वचनों में अपने आपको चमार बताया है। यदि कबीर भी रामानन्द के शिष्य थे तो रैदास रामानन्द के

पिछले शिष्यों में से थे। इनके बचनों से यह भी सिद्ध होता है कि ये काशी के रहने वाले थे इनका नाम मीराबाई और धन्ना ने बड़े आदर से लिया है। इनका ईश्वर भी कबीर के ब्रह्म के समान निर्गुण-सगुण दोनों हैं। फ़रोखाबाद और मिर्ज़ापुर में साधो सम्प्रदाय रैदास का पंथ ही माना जाता है। जिसकी स्थापना रैदास के शिष्य उदयदास ने की। रैदास के फुटकल बचन संत वाणी सिरीज़ में मिलते हैं। उदाहरण स्वरूप हम रैदास का बनाया हुआ एक पद यहाँ पर उद्धृत करते हैं—

राम मैं पूजा कहां चढ़ाऊँ। फल अरु मूल अनूप न पाऊँ॥
थनहर दूध जो बछरु जुठारी। पुहुप भँवर जल मीन बिगारी॥
मलयागिर बेधियो भुअंगा। विष अमृत दोउ एकै संगा॥
मन ही पूजा मन ही धूप। मन ही सेउँ सहज सरूप॥
पूजा अरचा न जानूँ तेरी। कह रैदास कवन गति मेरी॥

इनका एक दोहा भी देखिऐ—

हरि सा हीरा छाँड़ि कै, करै आन की आस।
ते नर जमपुर जाहिंगे, सत भाषै रैदास॥

इनके अतिरिक्त और भी बहुत से निर्गुण पंथी संत कवियों के नाम मिलते हैं, जैसे—भीख, पलटू अक्षर अनन्य आदि। इनके बचन पढ़ कर हृदय में शांति आती है और संतोष उत्पन्न होता है। यहां यह समझ लेना अत्यावश्यक है कि हिन्दी की निर्गुण धारा को इतना ही कहकर समाप्त नहीं कर देना चाहिए। इन संत कवियों की परम्परा कभी समाप्त नहीं होती वह अब भी चल रही है। १७ वीं शताब्दी से लेकर आज तक का उनका इतिहास अलग ही चीज़ है और भविष्य में भी इस धारा का विकास चलता रहेगा। अन्त में यहां यह बताना भी युक्तिसंगत प्रतीत होता है कि यद्यपि कबीर पंथ, दादू पंथ, सिख पंथ, निर्गुण पंथ की उपशाखाएं हैं जिसके प्रारम्भिक इतिहास में न अवतारवाद पाया जाता है न मूर्तिपूजा पाई जाती है, न बाह्याड-

श्वर की इच्छा दिखाई देती है। यह आश्चर्य की बात है कि इन उपशाखाओं के आदि महानुभावों की मृत्यु के अनन्तर प्रत्येक में उपर्युक्त सभी भावनाएं आ गईं। इसका कारण यही हो सकता है कि निर्गुण पंथ अपने शुष्क और शुद्ध रूप में साधारण जनता को ग्राह्य नहीं। वह तो संस्कृत के धुरंधर पंडित वीतराग संन्यासियों के ही समझने का विषय है। इसीलिए संस्कृत में अद्वैत और द्वैत की खिचड़ी कहीं नहीं मिलती। उपर्युक्त पंथों के मानने वाले सभी उन महानुभावों को जिन के नाम पर पंथ चल रहे हैं ईश्वर के तुल्य मानते हैं। स्पष्ट शब्दों में उनको अवतार नहीं कहते।

(ख) प्रेममार्गी शाखा

यद्यपि निर्गुण शाखा के वर्णन के अनन्तर भक्ति की सगुण शाखा का वर्णन करना चाहिए परन्तु प्रेममार्ग ज्ञान मार्ग की ही एक शाखा है और निर्गुण मार्ग भी ज्ञान मार्ग की उपशाखा है। अतः निर्गुण शाखा के वर्णन के बाद प्रेममार्गी शाखा का ही वर्णन युक्तिसंगत प्रतीत होता है। क्योंकि निर्गुण और प्रेममार्ग का मौलिक सिद्धान्त एक ही है।

प्रेममार्गी शाखा के सभी लेखक मुसलमान हैं और सूफी सम्प्रदाय से सम्बन्ध रखने वाले हैं। यद्यपि सूफी कवियों का इतिहास, इतिहास का एक अलग ही विषय है परन्तु उनका हिन्दी साहित्य से भी सम्बन्ध होने के कारण हिन्दी साहित्य का इतिहास लिखते समय उनको छोड़ा नहीं जा सकता। इस शाखा के सभी कवियों ने राजकुमार और राजकुमारी की कहानी के द्वारा परमात्मा से जीवात्मा के मिलाने के साधन रूप प्रेम का वर्णन किया है। लौकिक कथानक साधन मात्र है। उनकी दृष्टि से वह यथार्थ भी कल्पित है और कल्पित तो कल्पित है ही। प्रेमिका अर्थात् राजकुमारी के सौंदर्य में वे ईश्वर का सौंदर्य देखते हैं और फ़ारस की पद्धति के अनुसार वे समझाने के लिए प्रेमिका को

ईश्वर का स्थानापन्न मानते हैं। जिस प्रकार एक सौभाग्ययुक्त साधक गुरु से 'तत्त्वमसि' इत्यादि महावाक्य सुनकर आत्मदर्शन अर्थात् परमात्म सम्मिलन के लिए लालायित हो जाता है और उसकी प्राप्ति के लिए कटिबद्ध होकर अष्ट योगाङ्गों का अनुष्ठान करते हुए सब प्रकार का त्याग दिखाते हुए अनेक प्रकार का कष्ट सहन करके आत्मबोध की ओर अग्रसर होता है और आत्मबोध होने पर सर्वत् सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्म ही को पाकर धन्य धन्य और कृतार्थ हो जाता है उसी प्रकार सूफ़ी मत के अनुसार साधक अपनी ईश्वररूप प्रेमिका से वियोग की पीर का अनुभव करके उससे मिलना चाहता है उसके प्रेम की भावना उसके हृदय में इतनी प्रबल होती है कि उसके दिये हुए कष्ट को भी वह सुख समझता है। ज़र्रे ज़र्रे में उसकी सत्ता का अनुभव करके संसार के प्रत्येक पदार्थ के साथ प्रेम करता है प्रत्येक पर अपना स्वार्थ निछावर करता है और उसके प्रेम का इतना जादू उसपर सवार होता है कि वह अपना तन मन धन 'ख़्वाहिशात' और सर्वस्व उसी को अर्पण कर देता है।

सूफ़ीमत अरब में हज़रत मुहम्मद की मृत्यु के लगभग दो सौ वर्ष बाद उत्पन्न हुआ। आरम्भ में यह मत मुस्लिम मत से इतना ही भिन्न था कि इस मत के मानने वाले सादा जीवन पसन्द करते थे। सफ़ेद ऊन के कपड़े पहनने से इन्हें सूफ़ी कहते थे। संसार को ख़ुदा का बनाया हुआ मानकर ख़ुदा को उस में रमा हुआ मानते थे जो इस्लाम के अनुसार 'कुफ़र' है। ज़िन्दगी को ख़ुदा से जुदाई और मौत को ख़ुदा से मिलन मानते थे। अपने 'अक़ीदे' पर मर मिटने का इसी लिए स्वागत करते थे। मन्शूर को जब उसके अक़ीदे के अनुसार फाँसी की सज़ा मिली तो ख़ुशी मनाता हुआ फांसी के तख़्ते पर जा चढ़ा। फांसी के तख़्ते पर चढ़ना मंशूर जैसे पहुँचे हुए सन्तों के लिए ऐसा ही था जैसे प्रियामिलन के लिए 'घुड़चढ़ी' के समय नौशे का

घोड़ी पर चढ़ना। जिस प्रकार वेदान्ती 'अनेक जन्म संसिद्धिस्ततो यातिपरां गतिम्' कहकर ईश्वर का साक्षात्कार अनेक जन्मकृत परिश्रमों का फलस्वरूप मानते हैं उसी प्रकार सूफ़ी भी तीन चार अवस्था प्राप्त कर के जिसको सिद्ध हो अनेक जन्मों द्वारा प्राप्त कर सकते थे आखिरी अवस्था वह मानते हैं जिसमें परमात्मा के साथ एकाकार है। एकेश्वरवाद के साथ प्रेमतत्त्व और उसके द्वारा कई सिद्ध अवस्थाओं को प्राप्त करके ईश्वर के साथ एकता रूप अन्तिम अवस्था को पहुंचना सूफ़ियों पर भारत के अद्वैतवाद का प्रभाव है, इस्लाम मत यह नहीं मानता। शब्दान्तर में हम यह कह सकते हैं कि सूफ़ी मत इस्लामी मत के विरुद्ध बग़ावत का परिणाम है।

सूफ़ी कवियों के कथानक भारतवर्ष की परिचित कहानियां हैं जो कि सूफ़ी कवियों का मत पुष्ट करने के लिए उपयुक्त साधन हैं और उनके वर्णन में सूफ़ियों द्वारा किया हुआ मनमाना जोड़ तोड़ उनके सौंदर्य का पोषक है न कि अपकर्षक। प्रसिद्ध सूफ़ी कवि और उनका संक्षिप्त वृत्तान्त नीचे दिया जाता है।

कुतबन

इनका जन्म सोलहवीं शताब्दी का मध्यभाग माना जाता है। ये शेरशाह के पिता हुसैनशाह के आश्रित थे और चिश्तीवंश के शेख बुरहान के शिष्य थे। इनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'मृगावती' दोहे चौपाइयों में लिखी हुई है। इस कहानी के द्वारा लेखक ने साधक के भगवत् प्रेम का स्वरूप दिखाया है। 'मृगावती' की कहानी का सार इस प्रकार है:—

चन्द्रगिरि का राजकुमार कञ्चननगर की राजकुमारी मृगावती पर मुग्ध हुआ। राजकुमारी उड़ने की विद्या जानती थी। जब राजकुमार अनेक कष्ट सहने पर उसके निकट पहुंचा तो वह उसको धोखा देकर उड़ गई। तब राजकुमार योगी होकर उसकी खोज में प्रवृत्त हुआ। इसी

बीच में उसने रुक्मणी नामक सुन्दरी को एक राक्षस से बचाकर अपनी प्रेमिका बना लिया। अन्त में उसे मृगावती भी मिल गई। इस प्रकार दोनों उसकी रानियां हुईं। इसके पश्चात् राजकुमार बहुत दिनों तक सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने के पश्चात् एक दिन हाथी से गिर कर मर गया और उसकी दोनों रानियां उसके साथ सती हो गईं। कुतबन की यह कथा काल्पनिक है।

मंझन

इनका जन्म भी सोलहवीं शताब्दी के मध्य भाग में माना जाता है। इनकी लिखी 'मधुमालती' नामक पुस्तक की एक खंडित प्रति मिली है। इस पुस्तक में भी मृगावती की भांति एक प्रेम कथा का ही वर्णन है। परन्तु इसकी कथा मृगावती की अपेक्षा अधिक हृदय-ग्राही है और वर्णन अधिक विशद है। इसमें प्राकृतिक दृश्यों का सुन्दर वर्णन हुआ है। इनकी रचना का एक नमूना देखिए—

रतन कि सागर सागरहि' गज-मोती गज कोई।
चन्दन कि बन-बन उपजै, बिरह कि तन-तन होइ॥

जायसी

प्रेम मार्गी सूफ़ी कवियों में मलिक मुहम्मद जायसी सर्व श्रेष्ठ एवं सर्वप्रधान कवि हैं। ये शेरशाह के समकालीन थे। इनका रचना काल सोलहवीं शताब्दी का अन्तिम काल माना जाता है। इन्हों ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ पद्मावत की रचना संवत् १५९६ में समाप्त की और उसके पांच साल पश्चात् अर्थात् संवत् १६०१ में उनकी मृत्यु हो गई। जायसी ने पद्मावत् अखरावट और आखिरी कलाम ये तीन ग्रंथ लिखे हैं।

जायसीकृत 'अखरावट' एक छोटी सी पुस्तक है। इसमें अक्षरक्रम से ईश्वर, जीव और प्रेम आदि से सम्बन्धित विचारों का निरूपण हुआ है।

पद्मावत जायसी की सर्वोत्कृष्ट एवं प्रसिद्ध कृति है। इसी के कारण जायसी को हिन्दी साहित्य में इतना उच्च स्थान प्राप्त हुआ है। यह एक आध्यात्मिक प्रेमाख्यानक है। इसकी कथा प्रेम की अत्यन्त व्यापक भावना से समन्वित है। इसमें कल्पना एवं इतिहास का सुन्दर समन्वय हुआ है। पद्मावत का पूर्वार्द्ध कल्पित और उत्तरार्द्ध ऐतिहासिक है। यह कथानक जायसी ने उर्दू लिपि में लिखा था परन्तु इसकी कथा भारतवर्ष की ही है। पद्मावत की कथा इस प्रकार है:—

सिंहल के राजा गंधर्वसेन की पुत्री पद्मावती द्वारा पालित एक तोता चित्तौड के राजा रत्नसेन ने एक ब्राह्मण से एक लाख रुपया दे कर क्रय किया। उस तोते द्वारा पद्मावती के रूप--गुण की प्रशंसा सुनकर रत्नसेन मूर्च्छित हो गया। होश आने पर वह उसे ढूँढने के लिए निकला। रत्नसेन ने तोते को अपना पथ-प्रदर्शक बनाया तथा सोलह सहस्र राजकुमार अपने साथ लेकर पद्मावती को प्राप्त करने के लिए चल दिया। सिंहल पहुंच कर ये लोग शिव मंदिर में योग साधना करने लगे। उस शुक ने यह तमाम वृत्तान्त पद्मावती को बताया और वह भी विरहिणी बन बैठी। अन्त में इन योगियों को शिव की सहायता प्राप्त हुई और पद्मावती एवं रत्नसेन का विवाह हो गया और फिर कुछ दिन के पश्चात् वे देश लौट आए।

रत्नसेन ने अपने दरबारी पंडित राघव चेतन को उसके दोष के कारण दरबार से निकाल दिया। उसने प्रतिहिंसा के विचार से अलाउद्दीन के सामने पद्मावती की प्रशंसा की। अलाउद्दीन ने चित्तौड को आ घेरा और धोखे से रत्नसेन को पकड़ लिया। परन्तु गोरा-बादल ने षड्यन्त्र रचकर रत्नसेन को छुड़ा लिया। चित्तौड़ आने पर रत्नसेन ने राजा देवपाल पर चढाई कर दी जिसने कि पद्मावती को फुसलाने के लिए दूती भेजी थी। वहां से वापिस आते हुये रत्नसेन मर गया और उसकी दोनों रानियां उसके साथ ही सती हो गईं। अलाउद्दीन जब फिर चित्तौड़ पहुंचा तो उसको राख का ढेर ही मिला।

कबीर की भांति जायसी भी रहस्यवादी कवि हैं। उन्हों ने इस कथानक में रत्नसेन और पद्मावती के मिलन द्वारा जीवात्मा और परमात्मा का परस्पर मिलन दिखाया है। जायसी के रहस्यवाद में इतनी विशेषता है कि उसने प्रेम की पीर दोनों तरफ़ एकसी दिखाई है। जब कि कबीर ने प्रेम की पीर एक ही ओर से वरन् जीवात्मा की ओर से दिखाई है। जायसी में पद्मावती भी मिलन के लिए उतनी ही उत्सुक है जितना की रत्नसेन। परमात्मा भी साधक से मिलना चाहता है। रत्नसेन की भांति साधक ही सोता रहता है और अवसर चूक जाता है। जायसी ने भी इस साधना मार्ग के लिए गुरु की महत्ता स्वीकार की है—

गुरु विरह चिंगी उर मेला।
जो सुलगाई लेइ सो चेला॥

सूफी काव्य में विरह का अत्यधिक मार्मिक वर्णन हुआ है। जायसीकृत पद्मावत तो विरह की पीर से भरा हुआ ही है। जायसी ने भी अन्य कवियों की भांति विरह वर्णन में ऊहात्मक प्रणाली से काम लिया है, जैसे—

जेहि पंखी के नियर हो कहे विरह की बात।
सोई पंखी जाए जरि तरिवर होइ निपात॥

परन्तु ऐसा बहुत कम स्थानों पर मिलता है और इस प्रकार ऊहात्मक शैली से वर्णन होने पर भी वह कहीं रीति कालीन कवियों की भांति हास्यास्पद नहीं हुआ है। पद्मावत में जायसी ने विरह की अक्षुण्ण धारा प्रवाहित की है जो कोमलता, जो सरसता, जो वेदना और गंभीरता इसमें मिलती है वह अन्यत्र दुर्लभ है। विरह के विचित्र अङ्गों और उसकी प्रत्येक दशा की बड़ी मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है।

नागमती का विरह वर्णन अत्यंत मार्मिक है। वह प्रियवियोग में

रात रात भर उपवनों में रोती फिरती है और उसके विलाप से घोंसलों में बैठे हुए पक्षियों को नींद तक नहीं आती—

फिर फिर रोव कोई नहीं डोला। आधी रात विहंगम बोला।
तू फिर फिर दाहै सब पांखी। केहि दुख रैनि न लावसि आंखी॥

विरह की दशा में निरवलम्बता की अनुभूति होती है। इस भाव की व्यंजना कवि ने इन शब्दों में की है—

पुष्य नखत सिर ऊपर आवा। हौं बिनु नाह मंदिर को छावा॥

संयोग के समय जो वस्तुएं सुख देने वाली होती हैं वियोग में वे ही दुख प्रद प्रमाणित हैं—

दाहै चन्द और चन्दन चीरु। दग्ध करै तन विरह गंभीरु॥

नागमती के विरह वर्णन के अन्तर्गत ही जायसी का प्रसिद्ध बारह मासा है। इस में वर्ष के बारह महीनों का वर्णन वियोग शृंगार के उद्दीपन की दृष्टि से किया गया है—

भा भादों दूभर अति भारी। कैसे भरै रैन अंधियारी॥
मन्दिर सून पिउ अन्तः बसा। सेज नागनी फिरि फिरि डसा॥

वियोग की दशा में प्रेमी सदा अपने प्रिय की दशा जानने के लिए उत्सुक रहता है इस लिए वियोग काव्य में संदेश भेजने की परम्परा सदा से चली आती है। नागमती के द्वारा रत्नसेन को जो संदेश भेजा गया वह अत्यंत करुण है—

पिउ सों कहेहु संदेसड़ा हे भौंरा हे काग।
सो धनि विरहा जरि मुइ तेहि क धुआं हम लाग॥

जायसी के विरह वर्णन की एक विशेषता है कि उसमें रहस्यवाद की झलक दिखाई देती है। उसकी उक्तियां जहां एक ओर लौकिक कथा का ध्यान दिलाती हैं वहां दूसरी ओर उसमें आध्यात्मिक पक्ष भी दिखाई देता है—

कंत कहा लागौं तेहि हियरे। पंत अपार सूझ नहीं नियरे॥

इस प्रकार हम देखते हैं कि अतिशयोक्ति का प्रयोग होने पर भी जायसी का विरह वर्णन समान्यतः अत्यन्त सुन्दर और हृदय स्पर्शी हुआ है।

जायसी उच्च कोटि के प्रबन्ध काव्यकार हैं। 'पद्मावत' एक उत्कृष्ट प्रबन्धकाव्य है। प्रबन्धकाव्यत्व की दृष्टि से गोस्वामी तुलसीदास को छोड़कर हिन्दी का कोई भी कवि जायसी की टक्कर में नहीं ठहर सकता। इन्हीं कारणों से जायसी को हिन्दी साहित्य-संसार में इतना उच्च स्थान प्राप्त हुआ है।

'पद्मावत' से तो कुछ पंक्तियां हम ऊपर विरह वर्णन के प्रसंग में उद्धृत कर चुके हैं अब 'अखरावट' का भी नमूना देखिए—

पानी महँ जस बुल्ला, तस मह जग उतराइ।
एकहि आवत देखिये, एकहि जात बिलाइ॥

उसमान

ये जहांगीर के समय में वर्तमान थे। संवत् १६७० में इन्होंने 'चित्रावली' नामक पुस्तक लिखी। 'चित्रावली' की रचना जायसी की 'पद्मावत' के ढंग पर की है। कवि ने अपनी पुस्तक में एक स्थान पर अंग्रेज़ों के देश का भी उल्लेख किया है। जिससे पता चलता है कि उस समय देश में अंग्रेज आ चुके थे और उसमान को इस बात का ज्ञान था। चित्रावली की कहानी सर्वथा काल्पनिक है और इसमें ईश्वर-प्राप्ति की साधना की ओर संकेत किया गया है। उदाहरण स्वरूप इनकी कुछ पंक्तियां यहां उद्धृत की जाती हैं—

बल दीप देखा अंगरेजा, तहां जाइ जेहि कठिन करेजा॥
ऊंच-नीच-धन-संपति हेरा, मद बराह भोजन जिन्ह केरा॥

उसमान के उपरान्त शेख नबी, कासिम शाह नूर मुहम्मद, फ़ाजिलशाह आदि कई कवि हुए परन्तु इनकी रचनाएँ प्रेममार्गी

साहित्य में कोई अधिक महत्त्व नहीं रखती। तो भी नूर मुहम्मद की 'इन्द्रावती' नामक पुस्तक उल्लेखनीय है। जिसका रचनाकाल संवत् १८०१ है। इन्होने अपनी रचना में चौपाइयो के बीच में दोहे न रखकर बरवै रखे हैं।

सगुण भक्ति

हिन्दी युग से बहुत पहिले ही भारतीय हिन्दू समाज बहु देवतावाद, अवतारवाद, तीर्थ गौरव, मूर्तिपूजा तथा देवालयों की आवश्यकता स्वीकार कर चुका था। ब्रह्मा विष्णु तथा शिव की पूजा मन्दिरों में खूब होती थी। जगत् के रचने वाले परम पिता परमेश्वर के अनेक रूपो की कल्पना करके और उन्हे मूर्त रूप देकर उनका स्तवन और पूजन समाज मे प्रचलित था। भगवान् विष्णु के अनेक अवतारों की पूजा भी किसी न किसी रूप में हो रही थी। भगवान् राम तथा भगवान् कृष्ण भी शताब्दियों पहिले से जनता के उपास्य देव बन चुके थे और जनता के इस विश्वास के आधार पर ही इनको दिव्य प्रकृति मानकर एक विशाल संस्कृत साहित्य की रचना भी हो चुकी थी।

मुस्लिम युग के आरम्भ मे उनके धार्मिक कट्टरपन के कारण हिन्दू समाज के धार्मिक जीवन को कुछ ठेस अवश्य पहुंची, परन्तु वह बिल्कुल दबा नहीं। कारण स्पष्ट है:— हिन्दू समाज ने अपनी सभ्यता के विकास में कभी राजकीय शक्ति का सहारा नहीं लिया। उसका पथ-प्रदर्शन प्राचीनकाल में जंगल में बसे हुए ऋषि-मुनिजनो के कुटीरों से और मध्याकाल में आचार्यों तथा गुरुजनों के मठो से होता रहा है। वह क्रम कभी टूटा नहीं। अतएव घोर राजनैतिक परिवर्तनों के समय भी हिन्दू समाज का धार्मिक जीवन अविच्छिन्न गति से चलता रहा।

समय बीतने पर मुसलमानों का आंधी के समान उमड़ता हुआ वेग कम हुआ, जब उनके हृदयों में अपने विजित पड़ोसियों के लिए सहानुभूति उत्पन्न हुई, जब उन्होने विचार तथा सहनशीलता से काम

लेना प्रारम्भ किया तथा जब बाबर और अकबर जैसे उदार बादशाह देहली के सिंहासन पर बैठे और हिन्दू समाज ने धार्मिक क्षेत्र में अधिक स्वातन्त्र्य अनुभव किया तो सगुणोपासना के लिए जनता की दबी हुई अभिलाषा पुनः विशिष्ट मनोबल से सचेत हो उठी। सगुणोपासना की चाह तो किसी न किसी रूप में प्रत्येक व्यक्ति को होती है परन्तु साधारण जन जिन्हें दार्शनिक विचार दुर्बोध होते हैं, सगुण भक्ति के लिए सर्वदा लालायित रहते हैं।

इस काल के सगुण भक्ति के प्रतिनिधि कवियों का यह श्रेय है कि उन्होंने परात् पर, परब्रह्म परमेश्वर का प्रतिबिम्ब अयोध्या नरेश मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र में तथा नन्दनन्दन चाणूरमर्दन भगवान् श्री कृष्णचन्द्र में देखा। भारत जनता ने—

यदा यदा हि धर्मस्य, ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानम् सृजाम्यहम्॥

इत्यादि गीता वचन को तथा—

इत्थं यदा यदा बाधा दानवोत्था भविष्यति।
तदा तदावतीर्याहं करिष्याम्यरिसंक्षयम्॥

इत्यादि दुर्गा सप्तशती के वाक्य को यथार्थ रूप में माना।

समय समय पर धर्म तथा मर्यादा की रक्षा के लिए भगवान् विष्णु के यद्यपि अनेक अवतार हुए, परन्तु उनके लोकनायक रूप ने जिसके प्रतीक भगवान् रामचन्द्र थे तथा लोकरञ्जक रूप ने जिसकी दृश्यमान मूर्ति ब्रजबिहारी श्री कृष्णचन्द्र थे, इस कालकी जनता को अपनी ओर अधिक आकृष्ट किया। दोनों दिव्य गुण सम्पन्न महापुरुषों का आश्रय लेकर सगुणोपासना तथा तदाश्रित हिन्दी साहित्य एक अनोखी छटा के साथ जनता के समक्ष आए। सगुण शाखा के कवि श्री राम और श्री कृष्ण को अनन्त कोटि ब्रह्माण्डनायक श्री विष्णु का पूर्ण अवतार ही नहीं मानते हैं अपितु शरीरधारी होते हुए भी

निगु'ण, निर्विकार, निर्लेप, अमूर्त्त तथा माया से परे भी मानते हैं। संक्षेप में अद्वैत व द्वैत के ब्रह्म भी ये थे। गोलोकवासी राधारमण भी ये थे और रावणान्तक कौशल्यानन्दन भी ये थे इत्यादि इत्यादि। वे भी उपास्य, उनका कुल भी उपास्य तथा उनका जन्मस्थान भी उपास्य। सगुणोपासक जितनी श्रद्धा श्री राम तथा कृष्ण के लिए रखते हैं उतनी ही उनको मूर्ति तथा नाम के लिए रखते हैं।

सगुण भक्ति की दो उपशाखाएं हुई

(१) रामभक्ति शाखा (२) कृष्णभक्ति शाखा

(क) रामभक्ति शाखा

हिन्दी में रामभक्ति शाखा का आविर्भाव १५ वीं शताब्दी में महात्मा रामानन्द द्वारा हुआ। रामोपसना यद्यपि पहिले भी थी किन्तु रामानन्द जी ने इसे नया रूप देकर अधिक लोकप्रिय बनाया तथा इसकी परिधि भी विस्तृत की। उन्हों ने अपनी भक्ति का प्रचार संस्कृत और हिंदी दोनों भाषाओं द्वारा किया और इस प्रकार साधारण जनता को भी इस ओर आकृष्ट किया। महात्मा रामानन्द श्री रामानुजाचार्य के श्री सम्प्रदाय के अनुयायी थे परन्तु उनका झुकाव कृष्णोपासना की ओर न होकर रामोपासना की ओर अधिक हुआ। रामानुजाचार्य तो विशिष्टाद्वैत उपासना को प्राधान्य देते थे, वे विष्णु और नारायण के भक्त थे किन्तु रामानन्द ने श्री राम को अपना इष्ट देव माना। श्री राम की उपासना उन्होने परब्रह्म मानकर की। यद्यपि श्री रामानन्द वर्ण व्यवस्था में विश्वास रखते थे तथापि भक्ति के क्षेत्र में वें जाति पांति का भेद नहीं मानते थे। उपासना के लिए वे ब्राह्मण व शूद्र, मुसलमान व हिन्दू और स्त्री तथा पुरुष सबका समान अधिकार स्वीकार करते थे। इसी कारण साम्प्रदायिक लोग उन्हें वैष्णव सम्प्रदाय का नहीं मानते।

भक्तमाल में इनके १२ शिष्य गिनाए गए हैं किंतु कबीर और तुलसीदास ही इनके सर्वश्रेष्ठ शिष्य हुए हैं जिन्होंने कि अपने साथ साथ अपने गुरु को भी अमर बना दिया।

महात्मा रामानन्द के सक्रिय प्रयत्नों से शीघ्र ही समस्त उत्तरी भारत में रामभक्ति का विकास हुआ। तुलसीदास तथा अन्य रामभक्त कवियों ने जिस रामकाव्य का प्रणयन किया उसमें सेव्य-सेवक भाव से राम की भक्ति तथा ज्ञान और कर्म पर भक्ति की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया गया है।

रामभक्ति शाखा के प्रतिनिधि कवि

गोस्वामी तुलसीदास

हिंदी तथा संस्कृत के अन्य उत्कृष्ट कवियों की भांति तुलसीदास के जन्म स्थान और जन्मतिथि आदि के सम्बन्ध मे विद्वानों में पर्याप्त मत भेद है क्योंकि इनका प्रामाणिक जीवन चरित्र अभी तक हमारे सामने नहीं आया।

अब तक की गवेषणाओं के आधार पर इनका जन्म बांदा जिले के राजापुर ग्राम में सं० १५५४ में हुआ। कुछ लोग ऐटा ज़िले के सोरों नामक ग्राम को तुलसी का जन्म स्थान सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं किन्तु विद्वानो को यह मान्य नहीं है। इनके पिता का नाम आत्माराम और माता का नाम हुलसी था। जनश्रुति के आधार पर कहा जाता है कि अभुक्तमूल नक्षत्र मे उत्पन्न होने के कारण इनके माता पिता ने इनको त्याग दिया था। इनके दीक्षागुरु बाबा नरहरि थे और ऐसा अनुमान है कि इनके साथ रहते हुए इन्होने शेष सनातन जी से शास्त्रों का अध्ययन किया। कहते हैं १५ वर्ष निरन्तर विद्याध्ययन के बाद युवावस्था में स्मार्त वैष्णवों के सम्प्रदाय के अनुसार दीक्षित हो कर ये घर लौटे।

बाबा नरहरि के पास पहुंचने से पूर्व इनकी बड़ी दीन हीन अवस्था थी जैसा कि "जायो कुल मंगन" (कवितावली) आदि से स्पष्ट ही है। इनका वैवाहिक जीवन अधिक दिन न चल सका। तुलसी दास अपनी स्त्री रत्नावली में अत्याधिक अनुरक्त थे। प्रसिद्ध किंवदन्ती है कि इनकी अनुपस्थिति में एक दिन इन की धर्मपत्नी अपने पिता के घर जो गंगा के दूसरे पार पास ही था चली गई। जब ये लौटे और इन्हें यह मालूम हुआ, तो अर्द्धरात्रि के समय ही गंगा पार कर वहीं जा पहुंचे। यह देखकर स्त्री को बहुत लज्जा आई और उसने कहा:—

लाज न लागत आपु को, दौरे आयहु साथ।
धिक धिक ऐसे प्रेम को, कहा कहौं मैं नाथ॥
अस्थि चर्ममय देह मम, तामें जैसी प्रीति।
तैसी जो श्रीराम महं, होति न तौ भव भीति॥

स्त्री की यह फटकार सुनते ही इनको वैराग्य हो गया और वहां से तीर्थाटन के लिए चल दिये। कौन जानता था कि एक छोटी सी बात से तुलसीदास का जीवन प्रवाह इस प्रकार परिवर्तित हो जायगा।

तुलसीदास ने कुल मिलाकर लगभग तीस ग्रन्थ लिखे। इनमें से निम्नलिखित ग्रन्थ प्राप्य एवं प्रसिद्ध हैं:—

१—रामचरितमानस, २—विनय पत्रिका, ३—कवितावली, ४—गीतावली, ५—रामज्ञा, ६—कवित्त रामायण, ७—बरवै रामायण, ८—रामलला नहछू, ९—वैराग्य संदीपनी, १०—कृष्णगीतावली, ११—पार्वती मङ्गल, १२—राम सतसई, १३—हनुमद्बाहुक, १४—जानकी मङ्गल।

इनमें रामचरितमानस तो आज हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य माना जाता है और भारतीय जनता के गले का हार बना हुआ है।

हिन्दी का यह ग्रन्थ तो ऐसा सर्व प्रिय हुआ कि निर्धन की झोंपड़ी से लेकर राजा के महल तक इस की पहुंच है।

रामचरितमानस तुलसी दास की सर्वोत्कृष्ट रचना है। इसकी कथा सात काण्डों में विभक्त है। दोहा, चौपाई इस ग्रंथ के प्रधान छन्द हैं। इनके अतिरिक्त अन्य छन्दों का प्रयोग भी यत्र तत्र मिलता है। इसमें हिन्दू समाज के आदर्शों, मान-मर्यादाओं का वर्णन बड़ी कुशलता से किया गया है। पारिवारिक जीवन के चित्रण में तो 'मानस' अद्वितीय है, अतएव प्रत्येक घर में इस की एक प्रति का होना आवश्यक है।

साहित्यिक दृष्टि से 'मानस' में नव रस का चित्रण मिलता है। कथा सुगठित एवं व्यवस्थित है। चरित्र-चित्रण भी कलापूर्ण है। इसके अतिरिक्त यथा स्थान भाषा एवं छन्दों का समुचित प्रयोग हुआ है। इस प्रकार यह ग्रंथ सर्वांग सुन्दर है।

विनय पत्रिका भी तुलसीदास की बहुत प्रसिद्ध रचना है। यह कलिकाल के विरुद्ध श्री रामचन्द्र की सेवा में भेजा गया प्रार्थना-पत्र है। इस पुस्तक का विद्वानों में बहुत मान है यद्यपि प्रचार की दृष्टि से 'मानस' ही सर्वश्रेष्ठ है।

गोस्वामी तुलसीदास का भाषा पर पूर्ण अधिकार था। इनकी संस्कृत मिश्रित अवधी, शुद्ध अवधी, कोमलकांतसंस्कृतपदावली संवलित ब्रजभाषा अपना अनुपम सौंदर्य रखती है। इनकी वर्णन शक्ति, इनकी काव्य कला अतुलनीय हैं। साहित्य शास्त्र स्वीकृत नव रसों पर जो अधिकार गुसाईं जी का था, वह संस्कृत साहित्य तथा हिन्दी साहित्य में किसी कवि का देखने में नहीं आता। इनकी काव्य रचना का उद्देश्य किसी सांसारिक लाभेच्छा पर आश्रित न था। 'स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा' इनकी पतितपावनी कविता जाह्नवीका उद्गम स्थल था।

तुलसीदास प्रसिद्ध सगुणभक्त थे। इनके इष्ट देव हैं राम और भगवत्साक्षात्कार तथा आत्मसमर्पण इनकी भक्ति के आधार हैं। नीचे तुलसीदास की कविता के कुछ उदाहरण दिये जाते हैं:--

(१) रामचरितमानस से कुछ ऐसे दोहे और चौपाइयां जिनको कि लोग साधारण बोल चाल में प्रमाण स्वरूप प्रयोग करते हैं।

बिनु संतोष न काम नसाहीं। काम अछत सुख सपनेहु नाहीं॥
राम भजन बिन मिटहिं कि कामा। थल बिहीन तरु कबहुं कि जामा॥
बिनु विज्ञान कि समता आवइ। कोउ अवकास कि नभ बिन पावइ॥
श्रद्धा बिना धर्म नहिं होई। बिनु महि गंध कि पावइ कोई॥
बिनु तप तेज कि कर बिस्तारा। जल बिनु रस कि होइ संसारा॥
सील की मिल बिनुबुध सेवकाई। जिमि बिनुतेज न रूप गोसाईं॥
निज सुख बिनु मन होइ कि थीरा। परस कि होइ विहीन समीरा॥
कवनिउँ सिद्धि कि बिन बिस्वासा। बिनु हरिभजन कि भवभय नासा॥

बिन बिस्वास भक्ति नहिं, तेहि बिन द्रवहिं न राम।
राम कृपा बिन सपनेहुं, जीव न लह विश्राम॥

नहिं कोउ अस जन्मा जग माहीं। प्रभुता पाइ जाहि मद नाहीं॥
जेहि के जेहि पर सत्य सनेहू। सो तेहि मिलत न कछु संदेहू॥
तृषित बारि बिन जो तनुत्यागा। मुये करै का सुधा तड़ागा॥
का वर्षा जब कृषी सुखाने। समय चूकि पुनि का पछताने॥
दुइ कि होइ इक संग भुवाला। हँसब ठठाइ फुलाउब गाला॥
जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृप अवसि नरक अधिकारी॥
कर्म प्रधान विश्व करिराखा। जो जस करहि सो तस फल चाखा॥
आरत कहहिं विचारि न कोऊ। सूझ जुआरिहिं आपन दाऊ॥

जल पय सरस बिकाइ, देखहु प्रीति की रीति भल।
विलग होइ रस जाइ, कपट खटाई परत ही॥

(२) विनय पत्रिका का एक पद देखिए जो कि संस्कृतगर्भित शैली का एक उत्कृष्ट उदाहरण है और जिसको अर्थ न समझने पर भी गेय होने के कारण साधारण जनता ने कण्ठस्थ कर लिया है—

श्री रामचन्द्र कृपालु भजु मन हरन भव भय दारुनं।
नव कंज लोचन कंज मुख कर कंज पद कंजारुनं॥
कंदर्प अगनित अमित छवि नव नील नीरज सुन्दरं।
पटपीत मानहु तड़ित रुचि सुचि नौमि जनक सुतावरं॥
भजु दीन बन्धु दिनेस दानव दैत्यवंस निकंदनं।
रघुनन्द आनँदकन्द कौसलचन्द दसरथ—नन्दनं॥
शिर मुकुट कुण्डल तिलक चारू उदार अङ्ग विभूषनं।
आजानु भुज शर चाप धर संग्राम जित खर दूषनं॥
इमि बदत "तुलसीदास" शंकर शेष मुनि मन रंजनं।
मम हृदय-कंज निवास करु कामादि खलदल-गंजनं॥

(३) तुलसीदास को ब्रज पर पूर्ण अधिकार था। इनके ब्रजभाषा-काव्य को देखकर कहीं कहीं तो सूरदास का भ्रम होने लगता है:—

छाँड़ो मेरे ललित ललन लरिकाई।
ऐहैं देखु कालि तेरे वै ब्याह की बात चलाई॥
डरिहैं सासु ससुर चोरी सुनि हँसि है नई दुलहिआ सुहाई॥
उबटि नहाहु गुहों चोटिया बलि देखि भलो बर करहिं बड़ाई॥
मातु कह्यो करि कहत बोलिदे भइ बड़िबार कालि तो न आई॥
जब सोइबो तात यों हाँ कहि नयन मीचि रहे पौढ़ि कन्हाई॥
उठि कह्यो भोर भयो झंगुली दै मुदित महर लखि आतुरताई॥
बिहँसि ग्वालि जान "तुलसी" प्रभु सकुचि लगे जननी उर धाई॥

—कृष्ण-गीतावली

(४) कवितावली से भी एक-दो सुंदर पद्य देखिए:—

अवधेश के द्वारे सकारे गई सुत गोद कै भूपति लै निकसे।
अवलोकि हौं सोच विमोचन को ठगि सी रही जे न ठगे धिक से॥

तुलसी मनरंजन रंजित अंजन नैन सुखंजन जातक से।
सजनी ससि में समसील उभै नवनील सरोरुह से विकसे ॥
पुरते निकसी रघुवीर वधू धरि धीर दये मग में डग द्वै।
झलकी भरि भाल कनी जल की पटु सूखि गए मधुराधर वै ॥
फिर बूझति हैं चलनो ऽब कितो पिय पर्नकुटी करही कित ह्वै।
तिय की लखि आतुरता पिय की अँखियाँ अतिचारु चलीं जल च्वै ॥

स्वामी अग्रदास

इनका आविर्भाव काल संवत् १६३२ के लगभग माना जाता है। भक्तमाल के प्रसिद्ध लेखक नाभादास इनके शिष्य थे। इनकी लिखी हुई चार पांच पुस्तकें बताई जाती हैं जिन में से 'हितोपदेश उपाख्यान बावनी' एवं 'ध्यान मंजरी' प्रसिद्ध हैं। हितोपदेश उपाख्यान बावनी में कुण्डलिया छन्द का प्रयोग हुआ है अतः यह पुस्तक कुण्डलिया अथवा कुण्डलिया रामायण के नाम से प्रसिद्ध है, यद्यपि इसमें रामचरित की चर्चा नहीं है। ध्यान मंजरी में श्री रामचन्द्र तथा उनके भाइयों का सौंदर्य चित्रण हुआ है। साथ ही अयोध्या एवं सरयू का ध्यान भी है। यद्यपि स्वामी अग्रदास के गुरु अष्टछाप के प्रसिद्ध कवि कृष्णदास पयहारी थे तथापि इनकी प्रवृत्ति कृष्णोपासना की ओर न होकर राम-भक्ति की ओर ही थी।

नाभादास

ये स्वामी अग्रदास के प्रिय शिष्यों में से थे। इनका जीवन काल संवत् १६०० से १६८० तक माना जाता है। ये प्रसिद्ध रामभक्त कवि हैं। इन्होंने रामभक्ति के बहुत से पद लिखे किंतु इनकी प्रसिद्धि का कारण ये पद नहीं हैं अपितु इनका लिखा हुआ ग्रन्थ भक्तमाल ही इनकी इतनी ख्याति का कारण है। इस ग्रन्थ में २०० भक्तों का विवरण छप्पय छन्द में मिलता है। भक्तमाल में भक्तों के तिथि—संवत् आदि

न देकर उनके चरित्र और उनसे सम्बद्ध घटनाओं का उल्लेख हुआ है। सम्भवतः इस ग्रन्थ द्वारा नाभादास भक्तों और भक्त कवियों का यश प्रचार करना चाहते थे। ब्रजभाषा में ये अच्छी कविता करते थे।

तुलसीदास के सम्बन्ध में लिखा हुआ इनका एक छप्पय देखिए:—

त्रेता काव्य निबंध करी सत कोटि रमायन।
एक अच्छर उच्चरे ब्रह्महत्यादि परायन॥
अब भक्तन सुखदैन बहुरि लीला बिस्तारी।
रामचरन रसमत्त रहत अहनिशि व्रतधारी॥
संसार-अपार के पार को सुगम रूप नौका लियो।
कलि कुटिल जीव निस्तार हित बालमीकि तुलसी भयो॥

प्राणचन्द चौहान

इनका समय संवत् १६६७ माना गया है। इन्हों ने रामायन महानाटक नामक रामचरित सम्बन्धी एक नाटक लिखा है। इसमें साहित्यिकता तो बहुत कम है केवल संवादात्मक रूप में होने से इसे नाटक कह दिया जाता है। इनकी रचना का उदाहरण निम्नलिखित है:—

कातिक मास पच्छ उजियारा। तीरथ पुन्य सोम कर वारा॥
ता दिन कथा कीन्ह अनुमाना। शाह सलेम दिलीपति थाना॥
संवत् सोरह सै सत साठा। पुन्य प्रकास पाय भय नाठा॥
जो सारद माता करु दाया। बरनौं आदि पुरुष की माया॥
जेहि माया कह मुनि जगमूला। ब्रह्मा रहे कमल के फूला॥
निकसि न सक माया कर बांधा। देषहु कमलनाल के राँधा॥
इत्यादि

हृदयराम

इन्हों ने संवत् १६८० में हिन्दी हनुमन्नाटक की रचना की। यह नाटक इसी नाम के संस्कृत नाटक के आधार पर लिखा गया है। इस

नाटक के संवाद बहुत सुन्दर हैं और कवित्त-सवैया छन्दों का प्रयोग हुआ है। इनकी कविता का उदाहरण देखिए:—

जानकी को मुख न विलोक्यो ताते कुंडल,
न जानत हौं, वीर पायँ छुवै रघुराइ के।
हाथ निहारे नैन फूटियो हमारे,
ताते कंकन न देखे, बोल कह्यो सत भाइ के॥
पायँन के परिवे को जात दास लछमन,
यातें पहिचानत है भूषन जे पायँ के।
विछुआ हैं एई, अरु झांझ हैं एई जुग,
नूपुर हैं तेई राम जानत जराइ के॥

रामभक्ति का एक अंग रामभक्त की उपासना भी है। भक्ति के लिए किसी पहुँचे हुए भक्त से प्रसाद-प्राप्ति की आवश्यकता हुआ करती है। स्वामी रामानन्द ने हनुमान जी की स्तुति लिखी थी। तुलसीदास ने भी हनुमान बाहुक का प्रणयन किया था। इसके अतिरिक्त रायमल पांडे ने भी १६६६ में हनुमान चरित्र की रचना की थी। राम-चरित्र से सम्बद्ध भी अनेकों ग्रंथ लिखे गए किंतु तुलसीकृत रामचरित मानस के समक्ष कोई भी प्रसिद्धि प्राप्त न कर सका।

रामभक्ति काव्य की एक विशेषता यह है कि उसमें काव्य निर्माण कई शैलियों में हुआ। कृष्णभक्त कवियों के समान उन्होंने केवल मुक्तकों की रचना नहीं की है अपितु सभी प्रचलित प्रणालियों द्वारा उन्होंने सुधारस प्रवाहित किया।

दूसरे रामभक्त कवियों की रचनाओं में नैतिक मर्यादा का विशेष ध्यान रक्खा गया है। उन्होंने शृंगार का भी चित्रण किया है किन्तु संयमित। अतएव आज भी सीता और राम की युगल मूर्ति भक्ति भाव से देखी जाती है। इस दम्पति का नाम उच्चारण करते ही श्रद्धा से मस्तक झुक जाता है। इस का श्रेय इन रामभक्त कवियों

को ही मिलना चाहिए। यदि कृष्णभक्त कवियों के समान ये भी नैतिक सीमाओं का उल्लंघन करने से न चूकते तो शायद राम एवं सीता भी रीतिकालीन कृष्ण तथा राधा के समान साधारण नायक नायिका के स्तर पर आजाते। इस संयमित और मर्यादित भक्तिप्रवाह के लिए हिन्दू समाज एवं हिन्दी साहित्य इन रामभक्त कवियों का चिर ऋणी रहेगा।

(ख) कृष्ण भक्ति शाखा

यद्यपि महाभारत के प्रारम्भिक काल में श्रीकृष्ण भी महापुरुष ही हैं परन्तु ऋषि पाणिनि के काल तक कृष्ण भक्ति का प्रचार हो चुका था देखो—वासुदेवाजु र्नभ्यांवुन्। भगवत् गीता ने तो—

> परित्राणाय साधुनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
> धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥

स्वयं श्रीमुख से कहलाकर कृष्णस्तु भगवान् स्वयं की घोषणा करादी। इतना ही नहीं जब १८ वें अध्याय में भगवान्, अर्जुन का उत्साह बढ़ाते हुए 'सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज' अन्तिम वाक्य कह देते हैं, तो भक्ति की पराकाष्ठा हो चुकती है। कृष्णभक्ति की यह परम्परा भागवतादि धर्म शास्त्रों में दृढ़ से दृढ़तर होती गई और अन्त में इसके आधार पर अनेक सम्प्रदायों का आविर्भाव हुआ जिनमें कृष्णोपासना के विविध रूप और प्रकार दृष्टिगोचर होते हैं।

जैसे रामानुजाचार्य के शिष्य रामानन्द ने रामभक्ति का प्रचार किया वैसे निम्बार्क, मध्वाचार्य और विष्णु स्वामी ने कृष्ण भक्ति का प्रचार किया। और इस भक्ति का आधार था भागवत पुराण। इसमें आत्मचिंतन के स्थान पर आत्मसमर्पण और ज्ञान की अपेक्षा भक्ति को अधिक महत्त्व दिया गया है।

इन आचार्यों ने ब्रज को अपने इष्टदेव श्रीकृष्ण का लीलाधाम

समझकर अपने प्रचारकार्य का केंद्र ब्रजप्रान्त को ही बनाया और ब्रजभाषा को ही काव्य के उपयुक्त समझा। कृष्णभक्ति के अग्रगण्य प्रचारक श्री निम्बार्क स्वामी और वात्सल्यमयी कृष्णोपासना का प्रचार करने वाले श्री वल्लभ ब्रज में ही आ बसे थे।

उत्तर भारत में कृष्णभक्ति के सब से महान् प्रचारक थे वल्लभाचार्य। इन्हीं के उदार प्रोत्साहन से इन्हीं के शिष्यों द्वारा हिन्दी साहित्य के कृष्णकाव्य का विकास हुआ। आपने एक नवीन सम्प्रदाय की स्थापना की जो कि वल्लभीय सम्प्रदाय कहलाता है। वल्लभीय सम्प्रदाय से सम्बन्ध रखने वाले कृष्णभक्तों का वर्णन चौरासी वैष्णवों की वार्ता और दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता नामक गद्य ग्रन्थों में मिलता है। वल्लभाचार्य ने श्रीकृष्ण के बालरूप एवं नायकरूप का प्राधान्य स्वीकार किया है। अतएव इनकी भक्ति पद्धति में वात्सल्य तथा शृंगार भावना का प्राधान्य है। सूरदास आदि कवियों ने इसमें सख्य भाव का भी समावेश कर दिया। इस पद्धति का दार्शनिक रूप शुद्धाद्वैत कहलाता है। इन्होंने सत्, चित् और आनन्द ब्रह्म के ये तीन गुण माने हैं। ब्रह्म अपनी इच्छा से कभी इनका आविर्भाव करता है तो कभी तिरोभाव। इन्हीं में से एक या दो तत्त्वों के आविर्भाव और शेष के तिरोभाव से जड अथवा चैतन्य जगत् की सृष्टि होती है। इसके अतिरिक्त मायामय जगत् भी ब्रह्ममय है क्योंकि माया उस ब्रह्म की ही एक शक्ति है। किसी प्राणी में जब इन तीनों गुणों का आविर्भाव और माया का तिरोभाव हो जाता है तब वह अपने प्रकृत रूप ब्रह्म की स्थिति में आ जाता है।

"प्रेम-साधना में वल्लभ ने लोक मर्यादा और वेद मर्यादा दोनों का त्याग विधेय ठहराया। इस प्रेमलक्षणा भक्ति की ओर जीव की प्रवृत्ति तभी होती है जब भगवान् का अनुग्रह होता है जिसे 'पोषण' या 'पुष्टि' कहते हैं। इसी से वल्लभाचार्य ने अपने मार्ग का नाम 'पुष्टिमार्ग' रखा है।"

—आचार्य शुक्ल

कृष्ण भक्ति शाखा के प्रतिनिधि कवि

महात्मा सूरदास

सूरसागर के रचियता, पुष्टि मार्ग के सुप्रसिद्ध कवि महात्मा सूरदास के जन्म स्थान, जन्मतिथि और जाति के सम्बन्ध में भी विद्वानों के भिन्न भिन्न मत हैं किन्हीं के अनुसार उनका जन्म सम्वत् १५२६ है तो किन्हीं के अनुसार उनका जन्म संवत् १५४० माना जाता है। इसी प्रकार कुछ विद्वान् उनका जन्म स्थान सीही ग्राम (देहली के पास) मानते हैं तो कुछ के विचार में उनका जन्म स्थान रुनकता गाँव (रेणुका क्षेत्र, आगरा और मथुरा के बीच) है। ये किसी के मत से सारस्वत ब्राह्मण थे तथा अन्य विद्वानों की सम्मति में चंदबरदाई के वंशज स्वीकार किये जाते हैं।

जनश्रुति के अनुसार सूरदास जन्मान्ध थे। किन्तु इस पर सहसा विश्वास नहीं किया जा सकता क्योंकि सूरदास की कविता में विविध रंगों, भाव भंगिमाओं और भिन्न विभिन्न प्राकृतिक वस्तुओं एवं दृश्यों का जैसा सफल चित्रण हुआ है वैसा एक चक्षुविहीन व्यक्ति के लिए कठिन ही नहीं अपितु असम्भव है!

प्रसिद्ध किंवदंती हैं कि सूरदास गऊघाट पर भगवत् भजन करते थे। वहीं पर इनकी वल्लभाचार्य से भेंट हुई। इस समय सूरदास दास्य भाव से भगवत् यश गाया करते थे। किन्तु वल्लभाचार्य से दीक्षित होने के पश्चात् इन्होंने सख्य भाव से भगवान् कृष्ण की भक्ति प्रारम्भ की क्योंकि वल्लभाचार्य दास्य भाव की भक्ति को ठीक नहीं समझते थे। अतएव हमें सूरदास की रचनाओं में दोनों प्रकार की भक्ति के उदाहरण मिलते हैं।

सूरसागर इनकी प्रसिद्ध रचना है। वल्लभाचार्य की आज्ञानुसार इन्होंने श्रीमद्भागवत् के दशम स्कंध को गीतों में गाया है। उन्हीं का

संकलन सूरसागर है। श्रीमद्भागवत् के समान सूरसागर में भी १२ अध्याय हैं। किंतु यह श्रीमद्भागवत् का अविकल अनुवाद नहीं है। यद्यपि सूरसागर बृहदाकार ग्रंथ है किंतु है मुक्तक ही। सूर की स्वयं भी ऐसी ही इच्छा प्रतीत होती है अर्थात् वे सूरसागर को एक प्रबन्ध काव्य की अपेक्षा मुक्तक के रूप में देखना पसंद करते थे। इस बृहद्-ग्रंथ में सूर कृष्ण का चरित्र नहीं लिख रहे हैं अपितु उनकी भक्ति में लीन होकर उनके चरणों पर अपने स्नेह संवलित भक्ति भाव अर्पित कर रहे हैं।

सूरसारावली और साहित्य लहरी सूरदास की दो और रचनाएं हैं। सूरसारावली तो सूरसागर की सूची मात्र समझिए। साहित्य लहरी में सूरदास के दृष्टि कूट पद संकलित हैं।

गोसाईं विट्ठलनाथ द्वारा प्रतिष्ठित अष्टछाप के कवियों में सूरदास सर्वश्रेष्ठ हैं। अष्टछाप के अन्य कवियों के नाम जिनका कि विवरण आगे दिया गया है, इस प्रकार हैं—कुंभनदास, परमानंददास, कृष्णदास, छीतस्वामी, गोविन्द स्वामी, चतुर्भुजदास और नंददास।

सूरदास ने पुष्टि मार्ग में दीक्षित होने के पश्चात् माधुर्य एवं सख्य भाव की भक्ति को अपनाया और श्रीकृष्ण एवं उनकी शक्ति राधा की प्रेममयी मूर्ति को अपना कर अपने समस्त हार्दिक अनुराग के साथ उनके रूप, सौंदर्य, तिरछी चितवन एवं विविध भाव-भंगिमाओं तथा क्रिया कलाप का वर्णन किया है। तुलसी ने जहां अपने इष्टदेव राम के लोकरञ्जक एवं लोकरक्षक दोनों रूपों का वर्णन किया है वहां सूरदास ने श्रीकृष्ण के केवल लोकरञ्जक रूप का ही चित्रण किया है। तुलसी ने जहां राम के समस्त जीवन का वर्णन किया है वहां सूर ने कृष्ण की केवल बाल एवं तरुण अवस्थाओं के अंकन में ही अपने को सीमित रखा है। तुलसी ने जीवन की समस्त दशाओं एवं परिस्थितियों को अपनी प्रतिभा के स्पर्श से काव्यमय बना दिया। सूर ने सर्वांगीण

जीवन को न लेकर मानव जीवन के केवल दो क्षेत्रों को ही चुना है—पहला श्रृंगार और दूसरा वात्सल्य।

श्रृंगार और वात्सल्य के चित्रण में सूर अद्वितीय हैं। यद्यपि जीवन के अन्य क्षेत्रों को उन्होंने अछूता ही छोड़ दिया है किन्तु अपने चुने हुए क्षेत्र के सम्राट् हैं। श्रृंगार और वात्सल्य का तो सूर कोना-कोना झांक आये हैं और परवर्ती कवियों के लिए इस क्षेत्र में कुछ छोड़ा ही नहीं। केवल परम्परागत भाव-भावनाओं का ही वर्णन सूरदास ने नहीं किया अपितु नवीन कल्पनाओं एवं दशाओं परिस्थितियों तथा क्रीड़ाओं की नूतन उद्भावना भी की है। बालकों की भिन्न भिन्न चेष्टाओं, उनकी शिशुसुलभ क्रीडाओं एवं उनके मन में उत्पन्न होने वाली विविध इच्छाओं का जैसा मर्मभेदी चित्रण सूर ने किया है वह अन्यत्र दुर्लभ ही है। इसी प्रकार श्रृंगार —विशेषतया वियोग श्रृंगार के अंकन में सूर ने गोपियों के मूक मानसिक व्यापारों को मुखरित किया है। सूरदास का विरह वर्णन तो हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि है।

गीति-तत्त्व की दृष्टि से भी सूर काव्य श्रेष्ठ है। इनके पदों की भाषा सहज, स्वाभाविक एवं सरल है। प्रायः पद छोटे हैं जिससे भाव की एकता बनी रहती है। कोमल कान्त पदावली एवं भाव की एकता के साथ साथ निजी रागात्मकता का भी इनमें अभाव नहीं है। इस प्रकार इनके पदों में समस्त गीति तत्त्वों का समावेश है। कदाचित् इसी कारण सूरदास इतने लोकप्रिय भी हुए हैं। सूरदास के दो-चार पद तो प्रत्येक व्यक्ति को स्मरण होंगे। इन सब बातों से ही प्रभावित होकर किसी ने कहा था—

'सूर सूर तुलसी ससी, उडगन केशवदास।'

नीचे सूर की कविता से कुछ उदाहरण दिये जाते हैं।

(१) शिशु की स्वाभाविक चेष्टाओं का चित्रण देखिए:—

सोभित कर नव नीत लिये।

घुटुरुवन चलत रेनु तन मंडित मुख में लेप किये॥

चारु कपोल लोल लोचन छवि गोरोचन को तिलक दिये ।
लर लटकन मानो मत्त मधुपगन माधुरी मधुर पिये ॥
कठुला कंठ वज्र केहरि नख राजत है सखि रुचिर हिये ।
धन्य सूर एकौ पल यह सुख कहा भयो सत कल्प जिये ॥

(२) देखिए किस सहज भाव से ग्वाल-बालों की शिकायत की जा रही है:—

मैया मैं न चरैहौं गाइ ।
सिगरे ग्वाल घिरावत मोसों मेरे पाइं पिराइ ।
जो न पत्याहि पूछ बलदाउहि अपनी सौंह दिवाइ ॥
मैं पठवति अपने लरिका कूँ आवै मन बहराइ ।
"सूर" श्याम मेरो अति बालक मारत ताहि रिंगाइ ॥

(३) कृष्ण के वियोग में गोपिश्रां समस्त काले व्यक्तियों पर ही फबती कसती हैं:—

सखीरी श्याम सबै इक सार ।
मीठे बचन सुहाये बोलत अन्तर जारन हार ॥
भँवर कुरङ्ग काम अरु कोकिल कपटिन की चटसार ।
सुनहु सखीरी दोष न काहू जो विधि लिखो लिलार ॥
उमड़ी घटा नाखि आवे पावस प्रेम की प्रीति अपार ।
'सूरदास' सरिता सर पोखत चातक करत पुकार ॥

(४) देखिए शिशु सुलभ स्पर्द्धाभाव किस स्वाभाविकता से व्यंजित हुआ है:—

मैया कबहिं बढ़ैगी चोटी ?
किती बार मोहिं दूध पियत भई, यह अजहूं है छोटी ।
तू जो कहति 'बल' की बेनी ज्यों ह्वै है लांबी मोटी ॥

अष्टछाप के अन्य कवियों का विवरण

नन्ददास

इनका जन्म सम्वत् १५९० और मृत्यु सम्वत् १६३५ माना जाता है। इनकी कविता बड़ी सरस और मधुर है। इन्होंने अनुप्रास युक्त संस्कृत मिश्रित ब्रजभाषा का प्रयोग किया है अतः प्रसिद्ध है, सब कवि घड़िया, नन्ददास जड़िया।' ये सूरदास के समकालीन थे और काव्य की दृष्टि से अष्टछाप के कवियों में सूरदास के बाद इनका नाम आता है। इन्होंने निम्नलिखित ग्रंथों का प्रणयन किया है :—

भंवरगीत, रासपंचाध्यायी, अनेकार्थ नाम माला, रुक्मिणी मङ्गल, हितोपदेश, दशमस्कन्ध भागवत, दान लीला, मान लीला, ज्ञानमञ्जरी, अनेकार्थ मञ्जरी, रूप मञ्जरी, नाम मञ्जरी, नाम चिन्तामणि आदि।

नन्ददास की प्रसिद्धि हुई केवल भंवरगीत और रास पञ्चाध्यायी के कारण। इन दोनों पुस्तकों से नीचे एक-दो पद उद्धृत किये जाते हैं :—

नंदभवन को भूषण माई।
यसुदा को लाल वीर हलधर को, राधारमण परम सुखदाई ॥
शिव को धन संतन को सरबस, महिमा वेद पुरानन गाई।
इन्द्र को इन्द्र देव देवन को, ब्रह्म को ब्रह्म अधिक अधिकाई ॥
काल को काल ईश ईशन को, अतिहि अतुल तोल्यो नहिं जाई।
नंददास को जीवन गिरधर, गोकुल गाँव को कुँवर कन्हाई ॥

रास पञ्चाध्यायी

सुनत श्याम को नाम, ग्राम गृह की सुधि भूली।
भरि आनन्द रस हृदय, प्रेम बेली द्रुम फूली ॥
पुलकि रोम सब अँग भये, भरि आये जल नैन।
कण्ठ घुटे गद्गद गिरा, बोले जात न बैन ॥
व्यवस्था प्रेम की ॥ —भंवरगीत

कृष्णदास

इनका जन्म गुजरात में अहमदाबाद के पास सं० १५५४ के लगभग हुआ। ये जाति से शूद्र थे परन्तु श्री वल्लभ की कृपा से मन्दिर के प्रधान थे। बीरबल ने इनको कारागार में भेज दिया परन्तु आचार्य के अनुरोध से इन्हें मुक्ति मिली और फिर मन्दिर के प्रधान बना दिये गए। इन्होंने राधा-कृष्ण विषयक शृंगारी विषयों की रचना की है। पदावली, रासलीला, भ्रमरगीत और जुगलमान चरित्र आदि इनकी प्रसिद्ध रचनाएं हैं। इनकी कविता साधारण सी प्रतीत होती हैं, उदाहरणस्वरूप निम्नलिखित पद देखिए:—

मो मन गिरिधर छवि पै अटक्यौ।
ललित त्रिभंग चाल पै चलि कै, चिबुक चारु गड़ि ढरक्यौ॥
सजल स्याम-घन-बरन लीन ह्वै, फिरि चित अनत न भटक्यौ।
कृष्णदास किये प्रान निछावर, यह तन जग-सिर पटक्यौ॥

किंवदंती है कि इसी पद को गाकर कृष्णदास ने शरीर त्याग किया था।

परमानन्ददास

ये कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। सं० १५५० में कन्नौज में इनका जन्म हुआ। ये बड़ी मधुर कविता करते थे। सुनते हैं एक बार इनका एक पद्य सुनकर श्री वल्लभ जी कई दिवस तक अपने शरीर की सुध भूले रहे। इनके मुक्तक पदों का संग्रह परमानन्द सागर में मिलता है। इनकी कविता का उदाहरण देखिए:—

कहा करौ बैकुण्ठहि जाय ?
जहँ नहिं नन्द, जहाँ न जसोदा, नहिं जहँ गोपी ग्वाल न गाय।
जहँ नहिं जल जमुना को निर्मल और नहीं कदमन की छाँय।
परमानन्द प्रभु चतुर ग्वालिनी, ब्रज रज तजि मेरी जाय बलाय॥

कुम्भनदास

ये जाति के क्षत्रिय थे और गोवर्धन के पास के ही एक ग्राम के निवासी थे। इनका जन्म संवत् १५२५ में हुआ। अष्टछाप के प्रसिद्ध कवि चतुर्भुजदास इनके पुत्र थे। ये कृषि का अपना स्वतन्त्र व्यवसाय करते थे और प्रतिग्रह के विरोधी थे। दानलीला और पदावली दो ग्रंथ इनके प्रसिद्ध हैं। ये दोनों पुस्तकें गीति काव्य हैं। एक बार अकबर बादशाह के बुलाने पर इनको फतेहपुर सीकरी जाना पड़ा परन्तु इस बात का उन्हें बहुत दुःख था जैसा कि निम्नलिखित पद से प्रकट है:—

संतन को कहा सीकरी सों काम ?
आवत जात पनहियाँ टूटीं, बिसरी गयो हरि नाम ॥
जिनको मुख देखत दुख उपजत, तिनको करिबे परी सलाम।
कुंभनदास लाल गिरिधर बिनु और सबै बेकाम ॥

चतुर्भुजदास

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है ये कुम्भनदास जी के पुत्र थे। इनका जन्म सं० १५९७ में हुआ। इनकी भाषा बड़ी सुंदर एवं सुव्यवस्थित है। दानलीला, भक्ति प्रताप आदि ६ पुस्तकें इन्होंने लिखी थी। वे सब गीतिकाव्य हैं। उदाहरण स्वरूप इनका एक पद देखिए:—

जसोदा ! कहा कहौं हौं बात ?
तुम्हरे सुत के करतब मोपै कहत कहे नहि जात ॥
भाजन फोरि, ढारि सब गोरस, लै माखन दधि खात।
जौ बरजौं तौ आंखि दिखावै, रंचहिं नाहिं सकात।
और अटपटी कहँ लौं बरनौं, छुवत पानि सों गात।
दास चतुर्भुज गिरिधर गुन हौं कहति कहति सकुचात ॥

छीतस्वामी

ये चतुर्वेदी (चौबे) ब्राह्मण थे। सं० १५७२ में मथुरा में इनका जन्म हुआ। बिट्ठल नाथ जी से दीक्षा लेने से पहले इन्हें अशिष्ट पुरुषों की संगति थी। दानलीला, कुञ्जलीला और बधाई इनकी प्रसिद्ध पुस्तकें हैं, ये सब गेय हैं। अष्टछाप के अन्य कवियों के समान शृंगार के अतिरिक्त इनके पदों में ब्रजभूमि के प्रति प्रेम भी व्यक्त हुआ है। "हे विधना तो सों अँचरा पसारि माँगौं जनम जनम दीजो यही ब्रज बसिबो" पद इन्हीं का लिखा हुआ है।

गोविन्दस्वामी

इनका जन्म भरतपुर राज्य में सं० १५६२ में हुआ। ये स्थायी रूप से महावन में रहते थे। १५९२ में इन्होंने स्वामी बिट्ठलनाथ से दीक्षा ली। गोवर्धन पर्वत पर इनकी लगाई हुई 'कदंबखंडी' अभी तक प्रसिद्ध है। ये बड़े अच्छे गायक थे। जनश्रुति है कि प्रसिद्ध गायक तानसेन इनका गाना सुनने आया करते थे।

अष्टछाप के अतिरिक्त कृष्ण भक्त कवि

विद्यापति ठाकुर

इनका समय संवत् १४६० के लगभग माना जाता है। ये मैथिल ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम गणपति ठाकुर और पितामह का जयदत्त ठाकुर था। ये संस्कृत के प्रगाढ़ पंडित थे। प्राचीन हिन्दी पर भी इनका अधिकार था। बङ्गाली यद्यपि इन्हें बंगाल का कवि मानते हैं परन्तु अब यह सिद्ध हो चुका है कि ये बिहारी कवि थे। इनको मैथिल कोकिल की पदवी मिली हुई थी, इसी से इनके काव्यसौष्ठव एवं लोकप्रियता का अनुमान लगाया जा सकता है। तिरहुत के राजा शिवसिंह के यहां इनका बड़ा मान था। जनश्रुति है कि इन्हें एक गांव भी पुरस्कार के रूप में मिला था।

इन्होंने राधा और कृष्ण की भक्ति में अनेक पद रचे जिन्हें सुन्दर ग्राम वधूटी विवाह आदि शुभ अवसरों पर इनके जीवन काल में ही गाने लगी थीं और आज भी गाती हैं। विद्यापति के पद्यों का संग्रह इनकी "पदावली" में प्रकाशित हो चुका है। इसमें कितने पद संगृहीत हुए और कितने छूट गए यह कहना कठिन है। इनके पूर्ववर्ती बंगाल भूषण कविवर 'जयदेव' के "गीतगोविन्द" में जो भक्ति का स्रोत मिलता है वह ही पदावली में भी पाया जाता है. अतएव विद्यापति को "अभिनव जयदेव" भी कहते हैं। इनकी भक्ति में श्रृंगार का पुट है, यह मानना ही पड़ेगा। वस्तुतः इन पर माधुर्य भक्ति पद्धति का प्रभाव है।

इनकी कविता बड़ी श्रुतिमधुर और भावपूर्ण है। महाप्रभु चैतन्य इनकी कविता पढ़कर आत्मविभोर हो जाते थे। विद्यापति ने भावों का अंकन करने में बड़ी सूक्ष्मदर्शिता का परिचय दिया है। इन्होंने संयोग वियोग के अनेक व्यापारों को दिखाने में अत्यधिक लाघव का प्रदर्शन किया है गीति-काव्य की दृष्टि से तो विद्यापति के पद बहुत ही उत्कृष्ट हैं। इनकी कविता का नमूना देखिए:—

नन्दक नन्दन कदम्बेरि तरु तरे धिरे धिरे मुरलि बजाव।
समय सँकेत निकेतन बार बार बोलि पठाव॥
सामरी तोरा लागि अनुखने विकल मुरारी।
जमुना का तिर उपवन उद्वेगल फिरि-फिरि ततहि निहार।
गोरस बिके अबइते जाइते जनि जनि पुछ बनमारि॥
तो हे मतिमान सुमति मधु सूदन बचन सुनहु किछु मोरा।
भनइ विद्यापति सुन बर जौवति बंदह नंद किशोरा॥

हितहरिवंश

इनका जन्म संवत् १५५६ में मथुरा के ४ मील दक्षिण बादगाँव में हुआ था। इनकी माता का नाम तारावती और पिता का नाम

केशवदास मिश्र था। इन्हों ने राधावल्लभ सम्प्रदाय की स्थापना की। इनके अनुसार राधा रानी हैं और कृष्ण उनके दास हैं अर्थात् राधा की उपासना, आराधना और प्रसन्नता से ही श्री कृष्ण का प्रसाद प्राप्त हो सकता है। आपने हिंदी में केवल एक ही ग्रंथ लिखा जिसका नाम है "चौरासी जी" इसमें केवल ८४ पद हैं जो साहित्य शास्त्र की दृष्टि से उस काल के सर्व श्रेष्ठ पद कहे जा सकते हैं। संस्कृत में आपका लिखा 'राधासुधानिधि' नामक ग्रंथ बहुत प्रसिद्ध है। इनका लिखा एक छप्पय देखिएः—

ना जानौं छिनु अंत कवन बुधि घटहिं प्रकासित ।
छुटि चेतन जु अचेत तेउ मुनिभय विष वासित ॥
पारासर सुर इन्द्र कलप कामिनि मय फंद ।
पर्यो देह दुख द्वंद कौन क्रम काल निकंदा ॥
इहि डर डरपहिं 'हरिबंसहित,' जिन विभ्रम गुन सलिल पर ।
जिहि नामनि मंगल लोक तिहुँ, हरि पदु भजु, न विलंब कर ॥

गदाधर भट्ट

ये दक्षिणी ब्राह्मण थे। किंवदंती है कि ये महाप्रभु चैतन्य को भागवत् सुनाया करते थे। गदाधर भट्ट संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् थे अतएव इनकी भाषा बड़ी सुन्दर एवं सुव्यवस्थित है। इनके जन्म संवत् आदि के सम्बन्ध निश्चित रूप से अभी कुछ नहीं कहा जा सकता।

मीराबाई

ये जोधपुर राज्यस्थ मेवाड़ के राठौर रत्नसिंह की पुत्री और रावदूदा जी की पौत्री थी। इनका जन्म सं० १५५५ के लगभग हुआ। विवाह उदयपुर के ज्येष्ठ राजकुमार श्री भोजराज के साथ हुआ। इनको बाल्यकाल से ही पूर्ण कृष्ण भक्ति प्राप्त हो चुकी थी। विवाह के थोड़े दिन बाद ही इनके पतिदेव की मृत्यु होगई। फिर तो इन्होंने

श्री गिरिधर गोपाल के चरणों पर पूर्ण आत्म समर्पण कर दिया। कृष्णभक्ति में लीन होकर इन्होंने बहुत सुन्दर पद लिखे जो कि गीतिकाव्य के उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

मीरा की भक्ति माधुर्य भाव की थी। इन्होंने कृष्ण को अपना पति मानकर उनकी भक्ति की है। जन श्रुति है कि ये श्री कृष्ण की मूर्ति के समक्ष घंटों नृत्यगान आदि में तल्लीन रहती थीं। इनके इस राजकुल विरुद्ध आचरण से स्वजन इनसे रुष्ट थे। इन्हें कई बार विष तक दिया गया किंतु ईश्वर की अनुकम्पा से इन पर विष का कोई प्रभाव नहीं पड़ सका। अंत में परिजनों से तंग आकर ये वृन्दावन चली गईं।

इनके कुछ पदों में तो राजस्थानी की पुट है और कुछ शुद्ध साहित्यिक ब्रजभाषा में हैं। दोनों प्रकार का एक-एक पद नीचे दिया जाता है :—

बसो मेरे नैनन में नंदलाल।
मोहनि मूरति साँवरि सूरति नैना बने बिसाल॥
अधर सुधारस मुरली राजति उर बैजन्ती माल।
छुद्रघंटिका कटि तट सोभित नूपुर शब्द रसाल॥
मीरा प्रभु संतन सुखदाई भक्त वछल गोपाल॥

घड़ी एक नहिं आवड़े, तुम दरसण बिन मोय।
तुम हो मेरे प्राण जी, कासूँ जीवण होय॥
धान न भावै नींद न आवै, विरह सतावै मोय।
घाय सी घूमत फिरूँ रे, मेरा दरद न जाणे कोय॥

इत्यादि।

स्वामी हरिदास

ये एक नए सम्प्रदाय (टट्टी सम्प्रदाय) के प्रवर्तक हैं। गान विद्या के पारंगत विद्वान थे। तानसेन और बैजूबावरा इन के शिष्य बतलाए जाते हैं। जन श्रुति है कि सम्राट अकबर भी वेष बदल कर एक बार

इनका गाना सुनने आए। इनके जन्म मरण का ठीक समय विदित नहीं है। इनका एक पद नीचे उद्धृत किया जाता है:—

हरि को ऐसोई सब खेल।
मृगतृस्ना जग व्याप रही है कहूँ बिजोरो न बेल ॥
धनमद, जोबनमद और राजमद ज्यों पंछिन में डेल।
कहि 'हरिदास' यहै जिय जानौ तीरथ को सो मेल ॥

रसखान

ये दिल्ली के पठान थे। इन्हों ने अपने को बादशाही ख़ानदान का लिखा है। इनका समय संवत् १६४० से १६८५ तक माना जाता है। यद्यपि रसखान जाति के मुसलमान थे तथापि गोस्वामी बिट्ठल नाथ जी ने इन्हें दीक्षा दी थी और ये उनके २५२ प्रधान शिष्यों में से गिने जाते थे। दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता में रसखान का भी चरित्र लिखा है।

विधर्मी होते हुए भी इनकी कृष्ण में अपार भक्ति थी। इनका हृदय कृष्ण प्रेम से आप्लावित था। इनके कवित्त-सवैये इसी प्रेम रस से परिपूर्ण हैं। ब्रजभाषा का जो सुन्दर, सुव्यवस्थित और चलता रूप रसखान की भाषा में मिलता है वह घनानन्द को छोड़कर अन्यत्र दुर्लभ है। अभी तक इनकी केवल दो पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं—प्रेम-वाटिका और सुजान-रसखान।

अपने इष्टदेव श्री कृष्ण की लीला भूमि ब्रज में भी इनकी अपार श्रद्धा थी, देखिए—

मानुष हों तो वही रसखान बसौं संग गोकुल गांव के ग्वारन।
जो पसु हौं तो कहा बसु मेरो चरौं नित नंद की धेनु मंझारन ॥
पाहन हों तो वही गिरि को जो कियो हरि छत्र पुरंदर धारन।
जो खग हों तो बसेरो करौं मिलि कालिंदि कूल कदंब की डारन ॥

उपरिलिखित कवियों के अतिरिक्त इस काल में सूरदास, मदनमोहन, श्रीभट्ट, व्यासजी और ध्रुवदास जी आदि अनेक कृष्ण-भक्त कवि हुए हैं तथा भक्ति काल के अनन्तर भी यह परम्परा अविकल रूप से चलती रही। किंतु इस काल में इन भक्त कवियों की जैसी प्रचुरता थी वैसी आगे चलकर कभी न हुई। इन्होंने प्रेम की जो धारा बहाई वह सदा हमारे हृदयों एवं हमारे साहित्य को रस से आप्लावित रखेगी।

भक्ति काल की फुटकर रचनाएं

पूर्वोक्त साम्प्रदायिक रचनाओं के अतिरिक्त और जो कुछ काव्य-प्रणयन हुआ यहां पर उसका उल्लेख किया जाएगा। भक्तिकाल में भक्ति साहित्य ने तो पर्याप्त उन्नति की ही, परन्तु अन्य विषयों पर भी लिखने वालों की कमी न थी। एक ओर शृंगार और वीर तथा नीति कविता के विषय बने हुए थे दूसरी ओर कविता को ही कविता का विषय बनाया हुआ था। पहले वर्ग से सम्बन्ध रखने वाले रहीम, गंग नरहरि एवं सेनापति हैं और दूसरी कोटि से सम्बन्ध रखने वाले अन्य रीतिकालिक कवि जिनमें केशव का स्थान सर्वप्रथम है। कई कवि जो वस्तुतः भक्तिकाल में थे रीतिकाल के कवियों के साथ परिगणित होते हैं।

कृपाराम

इन्होंने संवत् १५९८ में रस-रीति पर हिततरङ्गिणी नामक पुस्तक लिखी है। यह सम्पूर्ण ग्रन्थ दोहों में लिखा गया है और इनके दोहे बिहारी के दोहों से मिलते-जुलते हैं। हिततरंगिणी के दोहों की भाषा बहुत ही परिमार्जित है। एक दोहा देखिए :—

लोचन चपल कटाच्छ सर अनियारे विषपूरि।
मन-मृग बेधे मुनिन के जगजन सहत विसूरि॥

महापात्र नरहरि बन्दीजन

इनका जन्म संवत् १५६२ में फ़तेहपुर ज़िले के असनी ग्राम में हुआ। ये १०५ वर्ष तक जीवित रहे। महापात्र की उपाधि इन्हें अकबर के दरबार से मिली थी। 'रुक्मिणी मंगल' और 'छप्पय नीति' परम्परा से उनकी दो पुस्तकें प्रसिद्ध हैं। उनके छप्पय का नमूना इस प्रकार है:—

बैर धनी निरधनी, बैर कायर अरु सूरहिं।
घृत मधु माखी बैर, बैर निम्मूहिं कपूरहिं॥
मूसे सर्पहिं बैर, बैर पावक अरु पानी।
जरा जोबन बैर, बैर मूरख अरु ज्ञानी॥
बड़ बैर मोर जिमि चन्दमन, बिरहिन बैर बसन्त सों।
नरहरि सुकवि कवित्त किय, मङ्गन बैर अदत्त सों॥

नरोत्तम दास

ये क़स्बा वाड़ी ज़िला सीतापुर के रहने वाले ब्राह्मण थे। शिवसिंह सरोज में इनका संवत् १६०२ में जीवित होना लिखा है। सुदामा-चरित्र इनकी प्रसिद्ध प्रबन्ध काव्य रचना है। इनकी पदावली बड़ी सुन्दर और कोमल है। उसमें घर की दरिद्रता का बहुत सुन्दर वर्णन है। सुदामा-चरित्र से इनकी कविता का नमूना देखिए:—

शीश पगा न झगा तन में प्रभु जाने को आहि बसै किहि ग्रामा।
धोती फटी सी फटी दुपटी अरु पाँय उपानह की नहिं सामा॥
द्वार खड़ो द्विज दुर्बल देखि रह्यो चकि सो बसुधा अभिरामा।
दीन दयालु को पूछत नाम बतावत आपनो नाम सुदामा॥

आलम

ये अकबर के समय के मुसलमान कवि थे। इन्होंने 'माधवानल काम-कंदला' नामक प्रेम कहानी दोहा चौपाई में लिखी थी। इनका समय संवत् १६४० के आस पास माना जाता है।

महाराज टोडरमल

ये अकबर के समय भूमिकर विभाग के मंत्री थे। इससे शेरशाह सूरी यहाँ भी उच्च पद पर आसीन थे। इनकी कोई पुस्तक प्राप्य नहीं है। इनके लिखे हुए नीति के कुछ दोहे मिले हैं जो बहुत उच्चकोटि के हैं। इनका जन्म संवत् १५८० में और मृत्यु संवत् १६४६ में हुई।

महाराज बीरबल

ये बादशाह अकबर के बड़े मनचढ़े प्रधान मंत्री, मित्र तथा कवि थे। अकबर और बीरबल की वाग्विनोद से सम्बन्ध रखने वाली कथाएं इस समय प्रचलित हैं जिनसे ज्ञात होता है कि बीरबल बड़े प्रतिभासम्पन्न और सरस्वती के वरद पुत्र थे। बीरबल योग्य कवियों का बड़ा सम्मान करते थे और एक-एक दोहे पर अतुल धन पुरस्कार स्वरूप दे देते थे। इनकी कविता बड़ी सुन्दर, सरस और भावों से परिपूर्ण हैं किन्तु इनकी लिखी कोई पुस्तक इस समय प्राप्य नहीं है। इनका जन्म संवत् १५८५ है और ये तिकवांपुर ज़िला सहारनपुर के रहने वाले थे।

गंग

ये बड़े प्रतिभाशाली और अकबर के दरबारी कवि थे। अब्दुर्रहीम खानखाना इन्हें बहुत मानते थे। इनके जन्म संवत् एवं जाति आदि के सम्बन्ध में कुछ ठीक ठीक ज्ञान नहीं। किंवदन्ती है कि इन्हें किसी राजा या नवाब की आज्ञा से हाथी से चिरवा दिया गया था।

ये बड़े धुरन्धर कवि थे। यद्यपि इनकी पुस्तक नहीं मिलती तथापि इधर उधर संग्रहों में इनके जो फुटकर छन्द मिलते हैं वे इनकी उत्कृष्ट कवि प्रतिभा के सुन्दर निदर्शन हैं। कहा जाता है कि रहीम ने इनके एक छन्द से प्रसन्न होकर छत्तीस लाख रुपये पुरस्कारस्वरूप दिये थे। नमूने के लिए इनका एक छन्द देखिए:—

फूट गए हीरा की बिकानी कनी हाट हाट
काहू घाट मोल काहू बाढ़ मोल के लयो।

टूट गई लङ्का फूट मिल्यो जो विभीषन है
रावन समेत बंस आसमान को गयो ॥
कहैं कवि 'गङ्ग' दुरजोधन से छत्रधारी
तनक में फूटें तें गुमान वाको नै गयो ॥
फूटि ते नरद उठि जात बाजी चौरस की
आपुस के फूटे कहु कौन को भयो ॥

रहीम

इनका पूरा नाम अब्दुर्रहीम खानखाना था। इनका जन्म संवत् १६१० और मृत्यु संवत् १६८३ है। अभिभावक बैरमखां इनके पिता थे। रहीम, अकबर के प्रधान सेनापति मन्त्री और दरबार के नवरत्न में से एक थे। ये उर्दू, हिन्दी, फारसी और संस्कृत के अच्छे विद्वान् तथा हिन्दी के मर्मज्ञ कवि थे।

ये बड़े सहृदय और दानी थे। इनकी दानशीलता के सम्बन्ध में कई किंवदन्तियां प्रसिद्ध हैं। इन्होंने मुग़ल साम्राज्य के लिए कई प्रदेशों पर विजय प्राप्त की थीं अतएव इन्हें बादशाह की ओर से बड़ी बड़ी जागीरें मिली हुई थीं।

रहीम को संसार का बहुत गहरा तथा मार्मिक अनुभव था अतएव इनके दोहों में जीवन की परिस्थितियों तथा व्यवहारों की मार्मिक व्यंजना है। जनता में इनके दोहों का बहुत आदर है। दोहों के अतिरिक्त इन्होंने बरवै, कवित्त, सवैया, सोरठा, पद आदि में भी रचना की है।

तुलसी के समान इनका भी भाषा पर पूर्ण अधिकार था इन्होंने ब्रज और अवधी—दोनों में बड़ी कलापूर्ण रचना की है। रहीम दोहावली या सतसई, बरवै नायिका भेद, श्रृंगार सोरठ एवं रास पंचाध्यायी आदि इनकी प्रसिद्ध रचनाएं हैं। हिन्दी के अतिरिक्त इन्हों

ने फारसी में भी एक दीवान लिखा है। नीचे इनकी कविता के कुछ उदाहरण दिये जाते हैं—

तरुवर फल नहीं खात हैं, सरवर पियहिं न पान ।
कहि रहीम परकाज हित, सम्पति सुचहिं सुजान ॥
जिहि रहीम चित आपनों, कीन्हों चतुर चकोर ।
निशि वासर लागो रहै, कृष्णचन्द्र की ओर ॥

—रहीम सतसई

लहरत लहर लहरिया, लहर बहार ॥
मोतिन जरी किनरिया, बिथुरे बार ॥

—बरवै नायिका भेद

पलटि चली मुसकाय, दुति रहीम उजियात अति ।
बाती सी उसकाय, मानो दीनी दीप की ॥

—शृंगार सोरठ

केशवदास और सेनापति

ये दोनों कवि काल क्रम की दृष्टि से भक्ति काल में ही आते हैं किन्तु भाव, भावनाओं एवं रचना शैली की दृष्टि से ये दोनों रीतिकालीन ठहरते हैं अतः इनका विशेष विवरण रीतिकाल में ही दिया गया है।

उपरोक्त कवियों के अतिरिक्त छीहल, लालचदास, मनोहर कवि, बलभ मिश्र, जमाल, होलराय, कादिर, मुबारक, पुहकर कवि, लालचन्द, सुन्दर और बनारसीदास आदि इस काल में होने वाले अनेक कवि हैं जिनके द्वारा कि हिन्दी साहित्य की श्री वृद्धि हुई।

★

तीसरा अध्याय

रीति काल (संवत् १७०० से १९०० तक)

रीति काल की परिस्थितियां

राजनीतिक स्थिति

रीतिकाल का समय सं० १७०० से सं० १९०० तक माना जाता है। इस काल की सम्पूर्ण परिस्थितियों का विवेचन करने से यह स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि उस समय देश की राजनीतिक सामाजिक और धार्मिक स्थितियाँ बड़ी शोचनीय अवस्था में थीं। सम्पूर्ण देश में आतंक और विभीषिका का जो साम्राज्य छाया हुआ था वह अब अपेक्षाकृत कम हो गया था। मुगलों का शासन पूर्णतः भारत में स्थापित होने के कारण आक्रमणों की बाढ़ रुक चुकी थी और अब जनता शान्ति और आनन्द प्रिय होने लगी थी। इस समय बादशाह शाहजहाँ भारत के सिंहासन पर आसीन था। उत्कर्ष के चरम विन्दु के उपरान्त यहीं से निगति का आरम्भ हो गया। पुनः समस्त देश विप्लवों और युद्धों के काले काले मेघों से आच्छादित हो गया। शाहजहाँ के बीमार पड़ने पर उसके पुत्रों में उत्तराधिकार के लिये कलह मच गई और केन्द्रीय शासन निर्बल हो गया। मुग़ल साम्राज्य की विराट गरिमा के नष्ट हो जाने से राजनीति पतन के गर्त में जा पड़ी। अत्याचारी औरङ्गज़ेब भी छल से अपने भाइयों को मारकर भारत के सिंहासन पर आसीन तो अवश्य हुआ परन्तु वह भी एक सफल राजनीतिज्ञ नहीं था। सारा साम्राज्य औरङ्गज़ेब के अत्याचारों को विस्फारित नेत्रों से

देख रहा था। उधर जयपुर पर अधिकार कर लेने पर मारवाड़ और मेवाड़ मुग़लों के विरुद्ध हो गए थे। परन्तु अभी तक औरङ्गज़ेब का हठी व्यक्तित्व धुरी के समान समस्त साम्राज्य को सम्हाले हुए था। इधर १७६४ में औरङ्ग़ज़ेब की मृत्यु हो गई। मृत्यु के पश्चात् समस्त राज्य छिन्न भिन्न हो गया। औरङ्ग़ज़ेब के अहंवाद के कारण उसके पुत्रों का व्यक्तित्व निर्जीव सा हो गया था। उसके सभी उत्तराधिकारी कर्मचारियों के हाथ की कठपुतली थे। बस इसी समय भयंकर बाह्य आक्रमणों से देश में हाहाकार मच गया नादिरशाह और अहमदशाह अब्दाली के आक्रमणों ने मुग़ल साम्राज्य की गिरती दीवारों को क्षण भर में धराशायी कर दिया। उधर पानीपत की पराजय से देश का शेष नैतिक बल भी नष्ट हो गया। इस प्रकार केन्द्रीय शासन के दुर्बल हो जाने पर भिन्न २ प्रान्तों के अधिपति स्वतंत्र होने लग गये थे और पारस्परिक देशों में ईर्ष्या द्वेष का ताण्डव नर्तन हो रहा था। राज्य के उत्तराधिकारियों के विलासप्रिय होने के कारण शासन-विधान की बागडोर बिलकुल ढीली पड़ती जा रही थी। हिन्दू मुसलमानों के धार्मिक विधि-विधानों में औरङ्ग़ज़ेब में भेद-भाव, ईर्ष्या-द्वेष की पूर्ण तह तक पहुँच चुका था। फलतः हिन्दु मुसलमानों में भेद-भाव की तीखी चेतना जागृत हो गई थी। दोनों पक्ष निर्बल पड़ते जा रहे थे। हिन्दू पददलित थे और मुसलमान विलासिता में आपाद चूड़ मग्न।

सामाजिक परिस्थिति

इस समय सामाजिक स्थिति भी दयनीय थी। उस समय सारा समाज आर्थिक और राजनीतिक दृष्टि से दो भागों में बँटा हुआ था—एक उत्पादकवर्ग और दूसरा भोक्तावर्ग। उत्पादक वर्ग में कृषक समुदाय और श्रमजीवी थे जो शासन तथा युद्ध संबंधी कार्यों से सर्वथा पृथक् रहते थे और सरकार को कर देते थे। भोक्ता वर्ग में सम्राट के परिवार और

दरबार से लेकर उनके दास, नौकर-चाकर आदि सभी इसी में आते हैं। विशेषतः इनकी सामाजिक स्थिति श्रेष्ठतर थी इनमें शासक-शोसित और शोषक-शोषित का सम्बन्ध था। तीसरा वर्ग उन विद्वानों का था जो राजाओं के आश्रय में रहकर जीवन-यापन करते थे। कवि और विशिष्ट कलाकार इसी वर्ग में आते हैं। शाहजहाँ के पश्चात् यह राजकीय आश्रय भी बंद हो गया था और इससे इनकी सामाजिक स्थिति बहुत कुछ गिर गई थी। उस समय मुग़ल परिवार और दरबार अखण्ड वैभव और ऐश्वर्य से जगमग था। सम्पूर्ण मुग़ल परिवार रत्नों और मणियों में क्रीड़ा कर रहा था तथा नगर रमणीक सरोवरों, सुवासित उद्यानों से सुशोभित था। वैभव के अति पर पहुँचने पर विलासित का सागर उमड़ना स्वाभाविक ही था। सुरा और अन्य मादक वस्तुओं का प्रयोग उस समय भयंकर व्यसन था। राजाओं के महलों में शृंगारिकता का नग्न नृत्य होता था। सैनिक शिविरों में वेश्यओं का जमाव था और सेनापति का कार्य कामदेव के हाथ में था पद्माकर का यह छंद उस समय की एक झांकी दिखाता हैः—

गुलगुली गिल में गलीचा है गुणीजन हैं चांदनी हैं
चिक है चिराग़न की माला है।
कहै पद्माकर त्यों गजक गिजा हैं सजी सेज हैं
सुराही हैं, सुरा है और प्याला है।

इसके बिलकुल विपरीत ही श्रमिक वर्ग की अवस्था थी। बेचारे चीत्कार करते हुए, आधे पेट भोजन खाये हुए सहायता के लिये पुकारते थे परन्तु शायद ईश्वर ही उनके कष्टों को सुन सकता था। इस समय के प्रासाद उनकी हड्डियों पर खड़े हुए थे और उनके आंसू और रक्त की बूंदें ही जमकर अमीरों के मोती और ललाट का रूप धारण कर लेती थीं। इस वर्ग में अधिकतर किसान लोग ही थे जो त्राहि त्राहि कर उठे थे। राजनीतिक पतन के कारण जातीय संगठन

का हिन्दू मुसलमानों में छिन्न भिन्न होना स्वाभाविक था। उनमें धार्मिक दम्भ, ईर्ष्या, भेद-भाव अग्नि की लपटों के समान तीव्र होता जा रहा था इस प्रकार राजनीतिक और सामाजिक पतन के फलस्वरूप नैतिक अधोगति भी स्वाभाविक थी। विलासिता से जर्जर होकर मुसलमान नैतिक बल खो चुके थे और हिन्दू युग युग से पदाक्रान्त थे।

धार्मिक परिस्थिति

राजनीतिक, सामाजिक और नैतिक पतन तो हो ही चुका था परन्तु उनसे भी दयनीय अवस्था धर्म की थी। उस समय हिन्दू और मुसलिम धर्म के अनुयायियों में तीन वर्ग हो गये थे। पहला वर्ग वह था जिसमें विद्वान् और पण्डित लोग शास्त्र-विहित धर्म का अध्ययन और अनुसरण करते थे। ये लोग अपने धर्म ग्रन्थों की आज्ञाओं का पालन अक्षरशः करते थे और उनकी वाणी को देव-वाणी मानते थे। हिन्दू सम्प्रदायों में इस समय मुख्यतः वैष्णव धर्म की शाखा उपशाखाओं का प्रचार था और उनमें भी कृष्ण भक्ति शाखा जो कि युग की प्रवृत्ति के अनुकूल थी विशेष रूप से प्रचलित थी। इस शाखा के अनेक सम्प्रदायों ने जनता में जाकर धर्म का प्रचार नहीं किया और राजसी ठाठ-बाट के वातावरण में रहकर उनकी साधना तत्त्व चिन्तन सभी अवरुद्ध हो गया है। दूसरा वर्ग अशिक्षित जनसमुदाय का वर्ग था। ये अन्धविश्वासी होकर भक्ति के बाह्याङ्गों तीर्थ पर्व स्थान आदि तक सीमित रहते थे। फिर भी ये लोग रामकीर्तन, प्रति वर्ष रामलीला और रासलीला नियमित रूप से मनाते थे। सूर मीरा के पदों का गान होता था। परन्तु इससे क्या भगवत् दर्शन होते हैं? तीसरा वर्ग उदार वर्ग था और जिसका उद्देश्य हिन्दू और मुसलमान के भेद भाव को हटाकर एक आधार पर संयुक्त करना था। ये लोग निर्गुण संतों की परम्परा के अनुयायी थे। ये मूर्तिपूजा, पर्व, रोज़ा नमाज़ व्रत आदि की अवहेलना कर आत्मशुद्धि को ही मुक्ति का साधन मानते थे। इन्होंने

प्रेम मार्ग को पार करने के लिये गुरु को पथ-प्रदर्शक के रूप में स्वीकार किया है। संतों ने हिन्दुओं के योग और सूफ़ियों के प्रेम की भावना ग्रहण कर एक सामान्य मार्ग चलाया है। इनका प्रभाव विशेषतः उपेक्षित जनता पर था। परन्तु पीछे इनमें भी विलास-वैभव की पिपासा जागृत हो गई। इस समय तक मानव का बौद्धिक विकास भी नष्टप्राय हो चुका था। व्यक्तित्व के विकास के लिये इनके पास कोई साधन न था। दासता की बेड़ियों ने उनके नैतिक पतन के साथ २ बौद्धिक प्रतिभा का भी ह्रास कर दिया था मुग़ल वैभव के युग में कलाओं की समृद्धि भी पूर्ण रूप से थी। ललित और उपयोगी दोनों प्रकार की कलाओं की उन्नति थी स्थापत्य कला, चित्रकला और संगीत कला अपने चरम उत्कर्ष पर पहुँची हुई थीं। उस समय की अभूत-पूर्व स्थापत्य कला ताजमहल और दीवाने ख़ास हैं जो वास्तव में कलात्मक समृद्धि अपरिमेय है। ताजमहल मूर्ति कला की कृति और दीवानेख़ास चित्रण कला की कृति अनुपम है। औरङ्गज़ेब ललित कलाओं को जीवन का पतन समझता था। इसी कारण से उसने धार्मिक जोश में आकर कई स्थापत्य कला के अभूतपूर्ण मन्दिरों आदि को धराशायी करा दिया। इस बादशाह के पश्चात् मुग़लों के पास इतना धन ही न था कि वे इस कला की उन्नति कर सकते।

जहाँगीर का युग चित्रकला का स्वर्ण युग था। मुग़ल चित्रकला में स्वाभाविकता, गति और सजीवता का सुन्दर समावेश था। पर्सी ब्राउन ने तो कहा है कि मुग़ल चित्रकारी की आत्मा जहाँगीर के साथ ही मर गई। इस सम्राट के रंगीन व्यक्तित्व का माध्यम वास्तव में चित्र ही था। पुष्पों पल्लवों पक्षियों आदि से समन्वित सुन्दर चित्रकारी दी गई है। अठारहवीं शताब्दी में आकर इस कला का ह्रास होने लगा। उन चित्रों में सजीवता के स्थान पर कृत्रिमता आने लगी। औरङ्गजेब के काल से ही इस कला में भी अधःपतन होना प्रारम्भ हो गया था।

अन्य कलाओं की भाँति संगीत कला भी मौलिक रूप में नहीं मिलती। शाहजहाँ के समय में संगीत की अच्छी श्रीवृद्धि हुई और तानसेन जैसे संगीतज्ञ भी हुए। परन्तु औरङ्गज़ेब के युग में संगीत भी अत्याचार की शृङ्खलाओं में जकड़ा गया। औरङ्गज़ेब ने इस कला का सर्वथा बहिष्कार करा दिया, जिससे उसका पूर्णतः विकेन्द्रीकरण हो गया।

रीतिकाव्य की मुख्य प्रवृत्तियाँ

हिन्दी-साहित्य में रीति का प्रयोग लक्षण-ग्रन्थों के लिये किया जाता है। जिन ग्रन्थों में काव्य के विभिन्न अंगों का विश्लेषण होता है उन्हें रीति-ग्रन्थ और जिस विधान के अनुसार होता है उन्हें रीति शास्त्र कहते हैं। जब काव्य की रचना इन विधानों व नियमों से आबद्ध हो तब वह रीतिकाव्य होती है।

(रीति काव्य का विकास प्रायः राजाओं और रईसों के आश्रय में हुआ है। अतः उसकी अन्तः प्रेरणा और स्वरूप का आश्रयदाताओं और कवियों से घनिष्ठ संबंध है। इस समय सम्पूर्ण देश का वातावरण विलासपूर्ण था और रामलीलाओं में डुबकियाँ लगा रहा था।) राजाओं और रईसों को चिन्ता और संघर्ष कम और अवकाश एवं विकास कहीं अधिक था। सुबाला सुराही और प्याला साथ साथ कविता की तानतुक इन लोगों की विनोद की रसाला ही नहीं वरन बौद्धिक विकास भी था। अपनी संस्कृति को समृद्धि शाली बनाने के लिये काव्य का रसास्वादन परमावश्यक समझा जाता था। उनके व्यक्तित्व में कलात्मक वृत्ति और संस्कृति का विकास ये सभी गुण समाविष्ट हो जाते थे।

रीतिकाल के कवियों की प्रवृत्ति साहित्य के सृजन और परिशोधन में लगी रहती थी। मानो उन्हें यह अभिरुचि पैतृक परम्परा के रूप में प्राप्त हुई हो। कवि लोग साधारण समाज से सम्बन्धित होते हुए भी काव्य कला के बल पर बड़े बड़े राजाओं से सम्मानित होते थे। वस्तुतः बात

यह है कि रीति काव्य में कवि की आत्मा उसके काव्य में बोलती हुई दिखाई नहीं देती उसमें वस्तु तत्व कम है और कला अधिक है। इस प्रकार रीतिकाव्य सर्वथा स्वतंत्र था और राजनीतिक, सामाजिक एवं नैतिक सुधार की भावना कहीं लक्षित नहीं होती थी । इस काल में मुख्यतः दो प्रवृत्तियाँ संचरण करती हुई दिखाई देती है :—आचार्यत्व अथवा रीति निरूपण और शृंगारिकता।

हिन्दी कवि रीति-विवेचन का उचित स्पष्टीकरण करने में असमर्थ हुए हैं। इस विफलता में अवश्य ही कुछ कारण स्पष्टतः लक्षित होते हैं। एक तो यह कि संस्कृत शास्त्र की जिस परिपाटी का वे अनुकरण कर रहे थे, स्वयं उसमें ही सूक्ष्म विवेचन और खंडन मंडन की प्रणाली शेष नहीं रही थी। इन ग्रन्थों की रचना पण्डित वर्ग के लिये नहीं वरन् रसिक समुदाय के लिये हो रही थी जो केवल काव्याङ्ग-परिचय ही अपेक्षित समझते थे। तीसरा कारण यह था कि गद्य की विवेचन-शैली का सर्वथा अभाव था। और चौथा मुख्य कारण यह था कि इनमें से अनेक कवियों ने शास्त्र-ज्ञान का समीचीन और उत्कृष्ट अनुशीलन नहीं किया था। इन कवियों का काव्य-रचना करने का मुख्य उद्देश्य राजाओं, रईसों और रसिक नागरिकों को काव्याङ्गों का सामान्य ज्ञान कराना तथा किसी किसी का उद्देश्य पाण्डित्य प्रदर्शन भी था।

रीतिकाल के रीति-ग्रन्थों में निरूपण शैली तीन प्रकार से प्रयुक्त हुई है। (१) काव्य-प्रकाश की निरूपण शैली, जिसमें काव्याङ्गों का कुछ विवेचन किया गया है (२) शृंगार-तिलक, रस-मंजरी आदि की शृंगार रसमयी नायिका-भेद वाली शैली जिसमें केवल शृंगार के विभिन्न अंगों विशेषकर नायिका के भेद का ही निरूपण किया गया है (३) चंद्र लोक की संक्षिप्त अलंकार निरूपण शैली जिसमें अलंकारों के ही संक्षिप्त लक्षण और उदाहरण दिए गए हैं

इतने विस्तृत रीतियुग में यदि आचार्यत्व के अधिकारी कुछ कवि हुए हैं तो सेनापति चिंतामणि, कुलपति-मिश्र, देवदास, कुमारमणि भट्ट, प्रतापसाहि आदि हैं। प्रथम शैली के रीति-विवेचन में इन्हीं कवियों की गणना है। इन्होंने रीति-विवेचन को अपेक्षित समझकर उसका सर्वाङ्ग वर्णन किया है। काव्य-लक्षण, काव्य-प्रयोजन, रस-भाव, ध्वनि, नायिका, गुण, दोष, पिंगल आदि सभी का यथा-सम्भव वर्णन किया है। इन का ध्यान विशेषतः लक्ष्य की अपेक्षा लक्षण की ओर ही अधिक रहा है। परंतु इन कवियों का रीति-ज्ञान अभी पूर्णतः परिपक्व नहीं हुआ था और इनके साथ ही इनको तर्कोपयोगी गद्य का माध्यम अभी अप्राप्य था। अतएव जटिलताओं को स्पष्ट करने में इन कवियों को कुछ विफलता हुई है। इनमें से एकाध के अतिरिक्त सभी रीति-कालीन आचार्य हिन्दी से पूर्णतः परिचित नये अतएव दास और श्रीपति ने ही हिंदी के उदाहरण देकर अपनी काव्य प्रतिभा का प्रदर्शन किया है। निष्कर्ष यह कि ये कवि अपने रीति-निरूपण के उद्देश्य को मान कर ही चले थे, भले ही मौलिक सिद्धान्त का प्रतिपादन न किया हो।

द्वितीय श्रेणी में वे ग्रंथ आते हैं जिनका वर्ण्य-विषय शृंगार ही है। केशव की रसिक-प्रिया, मतिराम का रसराज, देव के भाव-विलास भवानी-विलास, सुजान-विनोद आदि, पद्माकर का जगत्विनोद, बेनी प्रवीन का नव-रस-तरंग शृंगारिक प्रवृत्ति के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। इस परम्परा का आदि रूप रुद्रभट के शृंगारतिलक, और भानुदत्त की रसतरंगिणी और रसमंजरी में मिलता है। इन ग्रन्थों में शृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का उत्कृष्ट वर्णन हुआ है। संयोग वर्णन में नायक नायिका, सखी दूती षट्ऋतु, विभाव अभाव और सात्विक भाव आदि का बड़े मनोनिवेश के साथ वर्णन किया है। इसी प्रकार वियोग पक्ष की सूक्ष्मतर भावनाओं, दशाओं और प्रवृत्तियों का

वर्णन किया है। शृंगार वर्णन में नायिका भेद की उद्भावना बड़ी प्रबल है। वास्तव में रीतिकालीन इस वातावरण का सच्चा प्रतिबिंब इन कवियों की ही रचनाएँ हैं। तत्कालीन प्रवृत्तियों का पूर्ण प्रतिनिधित्व न्हीं कवियों को मिलता है।

तीसरी शैली चन्द्रलोक और कुवलयानन्द के अनुकरण पर अलंकार निरूपण शैली है। अत्यन्त प्रतिष्ठि और आदि ग्रन्थ महाराज जसवन्त सिंह का भाषा-भूषण है। इसमें सर्वप्रथम अलंकार का लक्षण और दूसरे में उदाहरण दिया गया है। इसी के अनुकरण पर हिन्दी में अनेक उपयोगी ग्रंथों का निर्माण हुआ है। सुरति मिश्र का अलंकारमाला, भूपति का कंठाभूषण, ऋषिनाथ का अलंकार-मणी मंजरी आदि रीतिकाल के उत्कृष्ट ग्रन्थ हैं। हिन्दी अलंकार ग्रन्थों में शब्दालङ्कारों का महत्त्व अर्थालङ्कारों की अपेक्षा कम है। पद्माकर आदि अनुप्रास प्रिय कवियों की दृष्टि भी इस अलंकार पर नहीं रमी। इसका तात्पर्य यह नहीं कि इनका झुकाव अर्थ-गम्भीर्य की ओर ही अधिक है। वास्तव में इन अलंकार ग्रन्थों का उद्गम चन्द्रालोक से हुआ था जिसमें अनुप्रास आदि शब्दालंकारों की अवहेलना की गई है। परन्तु हिन्दी की चमत्कार प्रियता की सीमा कहां तक पहुंच चुकी थी इसका अनुमान लीलापुरुषोत्तम के क्रीड़ारसिक, सूरदास की साहित्य लहरी से हो सकता है।

नैतिक आदर्शों की दृष्टि से रीति काल में काम-वासनाओं की प्रवृत्ति बल पाकर आगे बढ़ रही थी। इस काल में प्रेम को अतीन्द्रिय का साधन बनाकर उसे उज्ज्वलता से सर्वथा विहीन कर दिया है। इसी से रीतिकाल में प्रेम एकोन्मुखी और भावना प्रधान है तथा काम-क्रीड़ा अथवा विलास उपभोग-प्रधान और उपभोग की वस्तु है। इस विषय के और काल के प्रमुख कवि मतिराम, बिहारी, पद्माकर आदि सब रसिक शिरोमणी तो थे परन्तु प्रेमी कवि नहीं। इस प्रेम में कहीं भी

आध्यात्मिकता का आरोप नहीं है। इस प्रेम का स्वरूप सर्वत्र गार्हस्थिक है। क्योंकि यह रीति-काव्य भारतीय शृंगार-परम्परा का ही विकसित रूप है। इस प्रेम में एक ओर वेश्या की विलासिता का अभाव है और दूसरी ओर उसमें बलिदान की भावना का भी अभाव है। उसमें तरलता एवं छटा अधिक है पर आत्मा की पुकार और प्रेम की सच्ची अनुभूति की एक टीस का अभाव है।

होत रहै नभ यो मतिराम, कहूँ बन जाय बड़ौ तप कीजै ।
ह्वै बनमाल हिए लगिए अरु, ह्वै मुरली अधरारस पीजै ॥

× × ×

पैरें जहाँ ही जहाँ वह बाल तहाँ तहाँ ताल में होत त्रिबैनी

इस प्रकार शृंगारिकता के अविरल और तीव्र प्रवाह से रीतिकाल में आकर धर्म की धर्माभास मात्र रह गया था। इन्द्रिय-सुख और भोग में आपादचूड़ मग्न होते हुए भी इन कवियों के हृदय में राधा-कृष्ण की तन द्युति पर अनुराग था।

तजि तीरथ हरि राधिका, तन-द्युति करि अनुराग ।
जिहिं ब्रज-केलि निकुंज मग पग पग होत प्रयास ॥

यह भक्ति उनकी शृंगारिकता का एक अंग बन गई थी । जीवन के अतिशय राग में मग्न होकर जब ये लोग थककर चूर हो जाते थे तो राधा-कृष्ण का अनुराग इनके धर्म-भीरु मन को आश्वासन देता था। भक्ति एक ओर सामाजिक और दूसरी ओर मानसिक शरण-भूमि के रूप में रहा करती थी।

इस प्रकार रीतिकालीन सामाजिक और काव्य जीवन में भक्ति का आभास आवश्यकतानुसार किया गया है और नायक नायिका को 'हरि' 'राधिका' के नाम से पुकारा है।

आचार्य केशवदास

आप का जन्म सं० १६१२ और स्वर्गवास सं० १६७४ के लगभग माना जाता है। ये सनाढ्य ब्राह्मण कृष्णदत्त के पौत्र थे। और ओरछा-नरेश महाराज रामसिंह के भाई इन्द्रजीतसिंह के आश्रय में रहते थे। ओरछा-दरबार में केशव का बड़ा मान था।

केशव की प्रसिद्धि रामचन्द्रिका, कविप्रिया और रसिकप्रिया इन तीन ग्रन्थों के कारण है। इनके 'रतन-बावनी', 'जहाँगीर जस चन्द्रिका' आदि कुछ अन्य ग्रन्थ भी हैं जिनका साहित्यिक स्तर ऊंचा नहीं है।

केशव ने संस्कृत साहित्य का विस्तृत अध्ययन किया था किन्तु उन पर प्रभाव पड़ा था अन्तिम काल के संस्कृत साहित्य का। वह चमत्कारवाद का युग था और इसी ओर केशव की चित्तवृत्ति अधिक रमती थी। उनके साहित्य में शाब्दिक कलाबाज़ी है, भाव-गाम्भीर्य नहीं। रामचन्द्रिका मे अनेक स्थलों पर केशव ने इसी कारण अपनी प्रतिभा का दुरुपयोग किया है।

केशव अपनी चमत्कार प्रियता और शाब्दिक कलाबाज़ी के चक्कर में पडकर बाह्य चित्रण मे भी अधिक सफल नहीं हो सके। एक-आध चरित्र अवश्य ऐसे बन पड़े हैं जो हमारे हृदय पर अमिट छाप छोड़ जाते हैं — जैसे परशुराम का — 'कुश मुद्रिका समिधै श्रवा कुशऔ कमण्डल कौ लिए ····' चित्र बड़ा सजीव और और आकर्षक है।

मानव-मन की विविध अवस्थाओं का ज्ञान तो केशव को था ही नहीं, प्रकृति के बीच भी वे मानों आंखें मूंद कर ही जाते हैं। प्रकृति के प्रति उनके हृदय मे कोई अनुराग नहीं दिखाई देता।

कथा-सूत्र का भी केशव सम्यक् निर्वाह नहीं कर सके। कहीं-कहीं वह झटके से टूट जाता है। मुख्य घटनाओं पर वह इस तरह ध्यान केन्द्रित कर देते हैं कि बीच की घटनाओं को भूल तक जाते हैं।

एक ही क्षेत्र ऐसा है जहाँ केशव का काव्य साधारण धरातल से

बहुत ऊंचा उठ गया है और वह है कथोपकथन । इस दिशा में वे तुलसीदास से भी बाज़ी मार ले गए हैं। उनके संवादों में उनकी नीतिक प्रवृत्ति और दरबारी वाग्वैदग्ध्य की अच्छी झांकी मिलती है । रावण-अंगद और राम-परसराम के संवाद बहुत सजीव हैं। इस स्थलों पर उनकी भाषा में भी भावानुरूप ओजगुण का प्राधान्य है । निम्नलिखित सोरठे में उन्होंने राम की नम्रता, दूरदर्शिता, शांति-प्रियता और तपस्वी ब्राह्मण के प्रति सम्मान का मनोहर चित्रण किया—

लियौ धनुष जब हाथ-तीनिहुँ भैयन रोष करि,
बरज्यौ श्री रघुनाथ तुम बालक जान कहा ।

केशव ने बुंदेलखण्डी मिश्रित बृज-भाषा का प्रयोग किया है लेकिन उसे तोड़ने-मरोड़ने की प्रवृत्ति के कारण दुरुह बना दिया है । प्रसाद और माधुर्य गुण का इसमें सर्वथा अभाव है। उचितस्थलों पर ओजगुण अवश्य आ गया है ।

इतना तो कहना ही होगा कि केशव में सूक्ष्म और प्रतीभा थी और अगर वह अपनी चमत्कारी प्रवृत्ति पर सहृदयता का अंकुश रख सके होते तो हमें केशव नाम का एक कहीं ऊची कोटि का कवि मनन करने को मिलता ।

उदाहरण—

अंगद

सिन्धु तरयौ उन को बनरा; तुम पै धनु-रेख गयी न तरी ।
बानर बांधत, सो न बध्यो; उन वारिधि बाँधि कै बाट करी ॥
श्री रघुनाथ-प्रताप की बात तुम्हें, दसकंठ, न जानि परी ?
तेलहु-तूलहु पूंछ जरी न जरी, जरी लंक जराइ-जरी ॥

रावण

छांडि दियौ हम ही बनरा वह, पूंछ की आगिन लंक जरी ॥
भीर मैं अच्छ मरयौ चपि बालक, बादिहि-धाइ प्रसस्ति करी ॥

ताल बिंधे अरु सिंधु बँध्यौ यह, चेटक, विक्रम कौन कियौ ।
बानर को नर को बपुरा, पल मैं सुरनायक बाँधि लियौ ॥

अंगद

चेटक सों धनु भंग कियौ, तन रावण के अति ही बलु हौ ।
बान समेत रहे पचिकै तहं जा संग, पै न तज्यौ थलु हौ ॥
बान सो कौन ? बली बलि कौ सुत; वै बलि बामन बांधि लियो ।
बेई सु तो जिन की चिर चेरिन नाचनयाइकैं छांड़ि दियो ॥

रावण

नील सुखेन हनू उन के, अरु और सबै कपिपुंज, तिहारे ।
आठहुं आठ दिसा बलि दै, अपनो पदु लै, पितु जा लगि मारे ॥
तो सो सपूतहि जाइकै बालि सपूतन की पदवी पगु धारे ।
अंगद संग लै मेरो सबै दल आजुहिं क्यों न हतै बपुमारै ? ॥

कविवर सेनापति

आपका समय भक्तिकाल ही है किन्तु उन की रचना शैली और विषय वस्तु रीतिकालिन परम्परा की है अत: उन्हें सन्धि काल का कवि कहा जा सकता है। सेनापति की जन्मतिथि का ठीक ठीक निर्णय नहीं हो सका है किन्तु अनुमान से सम्वत् १६४६ के आस पास इनकी जन्म तिथि मानी जाती है। इनकी रचनाओं के आधार पर इनका जन्म स्थान तथा निवास स्थान अनूप शहर (उत्तर प्रदेश) ठहरता है।

सेनापति की प्रमुख रचना 'कवित्त रत्नाकर' है। इसमें शृङ्गार रस की प्रधानता के साथ प्रकृति की छुटा का रीतिकाव्य की शैली से बड़ा मनोरम वर्णन हुआ है। 'काव्य कल्पद्रुम' नाम से एक अन्य रचना भी आपकी कही जाती है किन्तु अभी तक वह उपलब्ध नहीं हुई है। सेनापति ने रीतिकालीन परिपाटी का पूरी तरह अनुसरण

नहीं किया, अर्थात् भाव, विभाव, अनुभाव आदि के लक्षणों तथा उदाहरणों का क्रम से वर्णन नहीं किया । 'कवित्त रत्नाकर' के प्रारम्भ में सेनापति ने कहा है कि हमारे काव्य में अनुपम रस ध्वनि (असंलक्ष्यक्रय ध्वनि) वर्तमान हैं। सेनापति के कथन से यह प्रतीत होता है कि आप शुद्ध चमत्कार वादी अलंकार कवि न होकर ध्वनि सम्प्रदाय के अनुयायी थे किन्तु उनका काव्य इस बात की साक्षी नहीं देता। काव्य से तो अलंकार प्रियता ही सिद्ध होती है । 'श्लेष वर्णन' नाम से जो कवित्र आपने रत्नाकर में लिखे हैं उनसे प्रतीत होता है कि कवि को अलंकारो के प्रति विशेष आग्रह था । प्रकृति वर्णन में सेनापति को अच्छी सफलता मिली है । केवल उद्दीपनार्थ प्रकृति वर्णन करने वाले रीतिकालीन कवियो की अपेक्षा सेनापति की कविता में प्रकृति को आलम्बन स्वीकार किया गया है जो कवि की विशेषता है। पुष्ट और व्यंजक ब्रजभाषा लिखने मे भी सेनापति को अच्छी सफलता मिली है। कवित्त छन्द को तो आपने जैसे सिद्ध कर लिया था।

उदाहरण—

काल ते कराल कालकूठ कंठ माँझ बसै
 ब्याल उरमाल, आगि माल सब ही समैं।
ब्याधि के अरंग ऐसे ब्याधि रह्यौ आधौ अंग,
 रह्यौ आधौं अंग सो सिवा की बकसीस मैं।
ऐसे उपचार तैं न लागती विलस वार।
 पैयती न बाकी तिल एकौ कहूं ईस मैं ।
सेनापति जिय जानी सुधा तैं सहस बानी,
 जै पै गंगा रानी कौं न पानी हो तो सीस मैं ॥

चिंतामणि

आचार्य राम चन्द्र शुक्ल चिन्ता मणि को ही रीति काल का प्रवर्त्तक मानते हैं अथवा ऐसे कहा जाता है कि रीति काल का सूत्र पात करने का श्रेय चिन्तामणि को ही है क्योंकि रीति ग्रन्थों की अखंड अविरल धारा इन्हीं के समय से प्रवाहित हुई । अतः रीति काल का आरम्भ इन्हीं से मानना चाहिए। इन्होंने सं० १७०० के लगभग "काव्य-विवेक" "कवि कुलकल्पतरु" और "काव्य प्रकाश" ये तीन ग्रन्थ लिख कर काव्य के सब अंगों का पूरा निरूपण किया और छन्द शास्त्र पर भी एक पुस्तक लिखी। उसके उपरान्त लक्षण ग्रन्थों की भरमार सी होने लगी। हिन्दी साहित्य में यह एक अनूठा दृश्य था।

चिंता मणि त्रिपाठी, तिकवांपुर (जिला कानपुर) के निवासी चार भाई थे। चिन्ता मणि, भूषण, मतिराम और जटाशंकर। चारों कवि थे। जिसमें प्रथम तीन हिन्दी साहित्य में अति यशस्वी हुए। इनके पिता का नाम रत्ना कर त्रिपाठी था। चिन्ता मणि का जन्म सं० १६६६ के लगभग माना जाता है और कविता काल सं० १७०० के लग भग। ये बहुत दिन तक नागपुर में सूर्य वंशी भोंसला मकरंद शाह के आश्रय में रहे और उन्हीं के नाम पर छन्द विचार नामक एक पिंगल का ग्रन्थ बनाया। इन्होने "कवि कुल कल्प तरु" की रचना १७०७ में की। इनकी बनाई रामायण नाना कवित्त और छन्दों में बहुत प्रसिद्ध है। शाहजहाँ बादशाह आदि ने इन्हें बहुत सा दान दिया। इन्होंने कहीं २ अपना नाम मणि माल भी रक्खा है। इनकी भाषा परिमार्जित, ललित, सुन्दर और सानुप्रास होती है। इनकी ब्रजभाषा विशुद्ध दिखाई देती है। विषय वर्णन की प्रणाली भी मनोहर है। ये उत्कृष्ट कवि थे। इनकी रचना का निम्नलिखित

उदाहरण देखिये—

येई उधारत हैं तिन्हैं जे परे मोह-महोदधि के जल-फेरे ।
जे इनको पल ध्यान धरैं मन, ते न परैं कबहूँ जम-घेरे ॥
राजै रमा-रमनी-उपधान अभै बरदान रहै जन नेरे ।
हैं बलभार उदंड भरे हरि के भुज दंड सहायक मेरे ॥

महाराज जसवंतसिंह

ये मारवाड़ के सब से प्रतापी नरेश थे । इनके लोहे को सब मानते थे । इनसे औरङ्गज़ेब भी भय खाता था । इनका जन्म सं० १६८३ के समीप माना जाता है । ये शाहजहाँ के समय में ही कई युद्धों में भाग ले चुके थे । ये महाराज गजसिंह के द्वितीय पुत्र थे । उनकी मृत्यु के पश्चात् ये सं० १६९५ में सिंहासनारूढ़ हुए । इनके बड़े भाई अपने स्वभाव के कारण पदच्युत कर दिये गए थे । जसवंत सिंह साहित्य मर्मज्ञ और तत्व ज्ञान सम्पन्न, वीर शक्तिशाली पुरुष थे । इनके यहां विद्वानों और कवियों का अति सत्कार किया जाता था । इन्होंने अनेक ग्रन्थ लिखे और लिखवाये । ये औरंगज़ेब के बड़े विश्वास पात्र थे । ये कई महत्त्वपूर्ण युद्धों में प्रेषित किये गये थे । इन्हें अफगानों का दमन करने के लिए काबुल भेजा गया । वहां इनका सं० १७३५ में निधन हुआ ।

हिन्दी साहित्य के प्रधान आचार्यों में इनका प्रमुख स्थान है । ये आचार्य शिक्षक के रूप में हमारे सन्मुख आते हैं । इनका 'भाषा भूषण' अलंकारों में बहुत प्रचलित अनुपम ग्रन्थ है । इस ग्रन्थ की रचना काव्य के रूप में नहीं हुई । इनका भाषा भूषण बिल्कुल 'चन्द्रलोक' के आधार पर लिखा है । एक ही दोहे में लक्षण और उदाहरण दोनों का समावेश है । जो विद्यार्थियों को सूत्र रूप से स्मरण करने के लिये अति उपयोगी सिद्ध हुआ है । 'भाषा भूषण' बहुत छोटा सा ग्रन्थ है । इन्होंने तत्व ज्ञान, संबंधी अनेक ग्रन्थों की रचना की ।

'अपरोक्ष सिद्धान्त' 'अनुभव प्रकाश' आनन्द विलास' 'सिद्धान्त बोध' सिद्धान्त सार, प्रबोध चन्द्रोदय नाटक ये सब ग्रन्थ पद्य में हैं। 'भाषा भूषण' पर तीन टीकाएँ लिखी गईं। 'अलंकार रत्नाकर' की टीका जो बन्सीधर ने सं० १७९२ में बनाई। प्रतापसिंह की टीका, तीसरी गुलाब कवि की 'भूषण चन्द्रिका'। अलंकार निरूपण पद्धति का परिचय कराने के लिये भाषा भूषण का दोहा नीचे दिया जाता है।

अत्युक्तिः—अलंकार अत्युक्ति यह बरनत अतिशय रूप।
जाचक तेरे दान ते भये कल्प तरु भूप॥

बिहारी

बिहारी की जीवनी

कविवर बिहारी का जन्म संवत् १६६० में ग्वालियर राज्य में हुआ था। ये जाति के माथुर ब्राह्मण थे। इनके जन्म के सात आठ वर्ष पश्चात् बिहारी के पिता ग्वालियर छोड़ कर ओड़छे चले गए। वहीं पर इनके पिता केशवराय ने महात्मा नरहरिदास का शिष्यत्व प्राप्त किया और वहीं बिहारी जी की अध्ययन प्रणाली भी जारी रही। इस स्थान पर निवास करने के कुछ काल पश्चात् वे ब्रज की ओर चले गए और वृन्दावन में जाकर रहने लगे। वहाँ जाकर बिहारी जी का विवाह संस्कार मथुरा में ही किसी माथुर ब्राह्मण के यहाँ सम्पन्न हो गया और ये अपनी सुसराल में ही रहने लगे। उन्हीं दिनों शाहजहाँ वृन्दावन गया था। महाराज नरहरिदास से बिहारी जी की प्रतिभा की प्रशंसा सुनकर शाहजहाँ ने इन्हें आगरे में रहने का आदेश किया और बिहारी जी ने तदनुसार कुछ काल तक ऐसा ही किया। वहाँ जाकर उर्दू फ़ारसी का भी पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया। वहीं पर प्रसिद्ध कवि अब्दुर्रहीम ख़ानख़ाना से इनकी भेंट हुई। बिहारी की कविता पर प्रसन्न होकर ख़ानख़ाना साहब ने इन्हें बहुत पुरस्कार दिया। परन्तु इधर शाहजहाँ और जहाँगीर के बीच कुटिलता उत्पन्न हो गई। अतएव इस समय

बिहारी भी उस स्थान को छोड़कर इधर उधर आश्रय में घूमने लगे। इसी समय जयपुर के महाराजा जयसिंह के विषय में उन्होंने सुना कि वे नव-विवाहिता रानी से बुरी तरह आसक्त हैं और राजकीय कार्यों के प्रति सर्वथा अवहेलना करते हैं। इस पर उन्होने अपनी चमत्कारमयी कुशाग्र बुद्धि से निम्न दोहा रचकर राजा को पूर्णतः प्रभावित किया—

नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकास इहिं काल ।
अली ! कली ही सौं बँध्यो, आगे कौन हवाल ॥

इस दोहे से महाराज प्रभावित हुए और कर्मचारियों का अभीष्ट कार्य हो गया। वे इतने मुग्ध हुए कि उन्होने प्रत्येक छंद पर एक मोहर पुरस्कार में देनी स्वीकार की।

देव एक रसिक-शिरोमणि कवि थे और वह रसिकता भी नागरिक जीवन की रसिकता थी। यद्यपि उन्होंने वर्णन का विषय सामान्य लोक-भूमि से ही लिया था, तथापि उनका जीवन एक नागरिक था। स्वभाव से भी नागरिकों की भाँति विनोदी और व्यंग्यप्रिय थे। नागरिक जीवन और पर्यटन के कारण समय-समय पर कटु-अनुभव भी प्राप्त हुए थे। जिनका संकेत इनकी कविता में भी प्राप्त होता है। स्वयं अनुभवी बातों का चित्रण भी कवि करता है:—

आवत जात न जानियतु, तेजहिं तजि सियरानु ।
घरहँ जँवाई लौं घट्यौ, खरौ पूस दिन-मानु ।

इस में कवि ने घरजमाई के निस्तेज होने का उल्लेख किया है। कवि भी सुसराल में अधिक रहने से अनाहत किया गया था। देव ने कुछ बातें अन्योक्तियों द्वारा भी सिद्ध की है। शाहजहाँ का पक्ष लेकर हिन्दुओं के खिलाफ़ लड़ने वाले अपने आश्रयदाता को बाज की अन्योक्ति द्वारा कैसी शिक्षा दी है:—

स्वारथ सुकृत न श्रम वृथा, देखि विहंग विचारि ।
बाज परायें पानि परि, तू पंछीहि न मारि ।

इस प्रकार देव ने जीवन की सामन्य भूमि का कवित्व पूर्ण चित्रण करते हुए संवत १७२० के लगभग अपनी जीवन-धारा को समाप्त किया।

दोहे की समास पद्धति

दोहा एक मात्रिक छंद है जिसमें १३-११ के क्रम से चारों चरणों में ४८ मात्राएं होती हैं। दोहे की इस छोटी सी स्थली में कलाकार को अनेक रंगों के गुलदस्ते सुसज्जित करने की आवश्यकता होती है। जो कवि समास-पद्धति में अपनी वाणी को व्यक्त कर सकता है उसके लिये दोहे में अपनी अनुभूतियों को व्यक्त करने का पूर्ण सामर्थ्य होना स्वाभाविक है। पिंगल की दृष्टि से भी दोहे की परीक्षा की जाती है। इसलिये ऐसी रचना करने वाले अनेक कवि असफल हो जाते हैं। परन्तु बिहारी ने रचना बड़ी सावधानी से की है।

बिहारी के दोहों में अनुपम प्रवाह और मादक गति है। गागर में सागर भरने की प्रवृत्ति तो मानों कवि का स्वभाव ही है। किसी भाव को व्यक्त करने के लिये ये उपकरणों को सरलता से जुटा लेते हैं। और वह दोहे की सीमा में ही बँध जाते हैं। जिस प्रकार सूक्ष्मतर रूप में किसी रत्न को बार २ देखने से उसमें नव-सौन्दर्य का ही आभास मिलता है उसी प्रकार दोहे को भी बार २ पढ़ने से तथा उसका सूक्ष्म अवलोकन करने से नवीनता की झलक मिलनी चाहिए। बिहारी में यह गुण बराबर मिलता है। इसी की ओर लक्ष्य करते हुए किसी कवि ने कहा है:—

सतसैया के दोहरे, ज्यौं नावक के तीर।
देखन में छोटे लगें, घाव करें गम्भीर॥

नलिका के द्वारा चलाये गये तीर छोटे होने पर भी भारी घाव करते हैं। इसी प्रकार बिहारी के दोहे छोटे होने पर भी हृदय पर गंभीर प्रभाव डालते हैं।

बिहारी की समास-पद्धति भी दर्शनीय है। उसमें रूपकों का सफलता पूर्वक निर्वाह हुआ है:—

खौरि-पनच, भृकुटी धनुष, बधिक समर, तजि कानि।
हनत तरुन मृग तिलक सर, सुरकि-भाल भरि-तानि॥

इसमें धनुष का रूपक है। धनुष बाण चलाने में जिन वस्तुओं और घटनाओं का होना आवश्यक होता है, उन सब का कवि ने नायिका के अंगा से सुन्दर रूपक बांधा है।

साम्यमूलक साङ्गरूपक की अपेक्षा वैषम्यमूलक अलंकारों में भी कवि की कला निखरी हुई है। उसमें भी सजीवता और चुस्ती के दर्शन होते हैं। सूत उलझने पर टूट जाता है, फिर उसे जोड़ा जाता है जोड़ने पर उसमें गाँठ पड़ जाती है। इसी भाव को लेकर कवि ने अपनी कुशलता असंगति अलंकार में स्पष्ट की है। उलझने जुड़ने, टूटने-आदि का कार्य भी सूत में ही होता है। परन्तु प्रेम के क्षेत्र में विचित्र बातें हुआ करती हैं। इस प्रसङ्ग को कवि ने इस दोहे में कहा है:—

दृग उरझत, टूटत कुसुम, जुरत चतुर चित-प्रीति।
परति गाँठि दुरजन हिये, दई, नई यह रीति॥

इस प्रकार इन उद्धरणों से बिहारी की समास-पद्धति की सफलता और उसे प्रदर्शित करने का ढंग तथा उसकी प्रभविष्णुता स्पष्ट लक्षित हो जाती है। इनके दोहों में प्रवाह है, सजीवता और नूतनता है और कलाकार की अनुभूतियों की स्पष्ट व्यजंना है।

बहुज्ञता

कवि अपने ज्ञान को अध्ययन द्वारा व्यापक और विस्तृत बनाता है और फिर अपनी काव्य-कला के द्वारा अपने कौशल का दिग्दर्शन कराता है। वह केवल प्राचीन परम्परा के काव्य-ग्रन्थों के द्वारा ही

अपना अनुशीलन सीमित नहीं रखता वरन् समसामयिक लोक के भीतर भी आंखे खोल कर चलता है। और अपनी काव्य-सामग्री का संग्रह करता है। बहुज्ञता का तात्पर्य यही है कि कवि को साहित्यिक ज्ञान के अतिरिक्त अन्य विषयों का ज्ञान भी होना आवश्यक है। इस आधार पर कविवर बिहारी खरे उतरते हैं। कवि को संसार की अधिक से अधिक जानकारी है। दर्शन, ज्योतिष, वैद्यक इत्यादि अनेकों विषयों संबंधी कलापूर्ण उक्तियाँ कवि की बहुज्ञता को प्रदर्शित करती हैं। निम्न उक्ति में कवि की दार्शनिक योग्यता दर्शनीय हैः—

जोग-जुगुति सिखए सबै, मनौ महामुनि मैन ।
चाहत पिय अद्वैतता, काननु सेवत नैन ॥

कवि ने गणित संबन्धी चमत्कार भी प्रस्तुत किया है। वह गणित बुद्धि स्थल पर प्रभाव नहीं डालता वरन् मानसिक भावों को ही प्रभावित करता है।

कहत सबै बेंदी दियैं, आँकु दस गुनौ होतु ।
तियलिलार बेंदी दियैं अगिनत बढ़त उदोतु ॥

यहाँ पर गणित सम्बन्धी उक्ति केवल गणितज्ञों को ही सुगम्य नहीं वरन् मामूली पुड़िया बाँधने वाला एक बनिया भी इस बात को जानता हैं। उसे कलापूर्ण ढंग से प्रस्तुत करना ही कवि की कला है।

ज्योतिष और वैद्यक का सामान्य ज्ञान भी कवि को था। इनके द्वारा प्रस्तुत उक्तियों में उनके विशिष्ट ज्योतिष ज्ञान का परिचय अवश्य प्राप्त होता है—

सनि-कज्जल चख-झख-लगन उपज्यौ सुदिन सनेहु ।
क्यों न नृपति ह्वै भोगवै, लहि सुदेसु सबु देहु ॥

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि साहित्य-ज्ञान के अतिरिक्त देव को बाह्य अन्य विषयों का भी सामान्य रूप से ज्ञान

था। इससे दूरदर्शिता और सूक्ष्म पर्यवेक्षण शक्ति का परिचय मिलता है। इस लौकिक जगत से परे अथवा साधारण जनता के लिये अगम्य विषयों का प्रदर्शन कवि ने नहीं किया है। सामान्य विषयों को लेकर ही काव्य में उन्हें प्रस्तुत या अप्रस्तुत रूप में दिखाने का प्रयत्न किया है। इसी से कवि की व्यापक-काव्य-दृष्टि का परिचय प्राप्त होता है।

संयोग शृंगार

कविवर बिहारी रीति कालीन कवियों में श्रेष्ठतम पद के अधिकारी हैं। रीतिकाल की सामयिक परिस्थितियों के अनुसार ही कवि के काव्य का प्रणयन होता है। उस समय विलासिता का सागर ठाठें मार रहा था और उनके अतिरिक्त किसी भी अन्य रस का संचार मानव-हृदय में होना सन्देहकारक जान पड़ता था।

प्रेम का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है अतएव उससे पुष्ट जो शृंगार रस होता है उस को रसराज कहा गया है, क्योंकि इसमें हृदय की प्रायः प्रत्येक प्रकार की भावनाओं का समावेश हो जाता है। संसार में दुःख और सुख दो ही भावनाएँ मूल रूप में दिखाई देती हैं इन्हीं के आधार पर संयोग और वियोग शृंगार के दो भेद किये गए हैं। रीतिकालीन कवियों ने प्रधानतः इसी रस का वर्णन किया है।

बिहारी शृंगारी कवि थे। अतः संयोग से सम्बन्ध रखने वाले दृश्यों और व्यापारों का निरीक्षण करने की अपूर्व प्रतिभा उनमें दिखाई देती है। उदाहरणार्थ संयोग पक्ष में नायक नायिका की छेड़छाड़ का वर्णन उन्होंने ऐसे ढंग से किया है कि चित्रपट के फिल्म के समान सारा दृश्य पाठक की दृष्टि के सामने आता चला जाता है। राधा कृष्ण के बतरस लालच से मुरली छिपा कर रख देती है कल्पना के द्वारा कवि ने उसे थोड़े से शब्दों में सजीव चित्रण दिया है:—

बतरस लालच लाल की, मुरली धरी लुकाइ।
सौंह करै भौंहन हँसै दैन कहै नटि जाय॥

इसके द्वारा कवि ने नायिका की सजीवता, उमँग और विनोद-प्रियता का चित्र अँकित किया है। सिनेमा की रील सी खुलने लगती है। संयोग शृंगार के स्थायी भाव रति की दीप्तिपूर्ण-रुपेण प्रस्फुटित हो रही है। शृंगार का सहायक होकर हास्य संचारीरूप से मिला हुआ है। कवि ने प्रकृति का वर्णन भी प्रायः उद्दीपन के रूप में किया है। नदी तट, चन्द्रिका, पवन आदि शृंगार के उद्दीपन के बाह्य रूप हैं। कहीं २ प्रकृति वर्णन उद्दीपन-उन्मुक्त भी मिलता है। ग्रीष्म के ताप वर्षा के अंधकार शिशिर के शैत्याधिक आदि की वस्तुव्यंजना भी बिहारी ने रखी है:—

कहलाने एकत बसत अहि मयुर मृग बाघ ।
जगतु तपोबन सौं कियौ दीरघ दाघ निदाघ ॥

सारांश में यह कह सकते हैं कि संयोग शृंगार के वर्णन में कवि की प्रतिभा खूब निखरी है। इसमें प्रेम के विस्तार का वर्णन भी मिलता है और नखशिख आदि परम्परा गत वर्णन भी। इस में कहीं कहीं बिहारी परम्परा की लकीर पीटते हुए चले हैं। बिहरी की जितनी प्रतिभा थी, यदि वे परम्परा के चक्कर में न पड़ते तो शायद इनकी सतसई इससे कहीं अधिक गौरवशालिनी होती।

वियोग शृङ्गार

विप्रलम्भ शृङ्गार के मुख्य चार भेद हैं—पूर्वराग, मान, प्रवास और करुण। कविवर बिहारी ने पूर्वराग का वर्णन ही अधिक किया है परन्तु प्रवास-वर्णन में कवि की प्रतिभा खूब निखरी है। मान पर भी उसकी रचना मिलती है, परन्तु उसको दूर तक नहीं घसीटा गया। प्रवास ही वियोग पक्ष का ऐसा भेद है जिसमें वियोग पक्ष की पूर्ण सामग्री को प्रस्तुत करने के लिये पर्याप्त स्थान होता है। वेदना की पूर्ण तीव्रता इसी वर्णन में आती है अतएव दस कामदशाओं का वर्णन भी इसी में आता है। बिहारी ने दसों कामदशाओं का वर्णन करते

हुए व्याधि को अधिक विस्तार दिया है। मरण दशा का वर्णन कवि लोग नहीं करते क्योंकि उससे रसान्तर होने की आशंका रहती है। परन्तु बिहारी ने इसका भी बड़े कौशल से वर्णन किया है।

कहा कहौ वाकी दसा हरि प्रानन के ईस ।
बिरह ज्वाल जरिबौ लखैं, मरिबो भई असीस ॥

संदेश, पत्र आदि का वर्णन भी वियोग के अन्तर्गत आता है। प्रवास में भूत भविष्य और वर्तमान कालों की दृष्टि से कई नायिकाओं का भी वर्णन हुआ है। जिनमें प्रधानतः प्रोषितपतिका प्रवत्स्यत्पतिका और आगतपतिका का ही वर्णन हुआ है। विरहाधिक्य मुख्यतः प्रोषितपतिका ही होता है। विरह वर्णन में कवि करुणामय चित्र चित्रित करने की अपेक्षा उसे हास्यास्पद सा बना देता है। जब कोई बीमार हो तो आस पास के लोग उसे पहचान नहीं सकते, यह स्वाभाविक बात है। नायिका विरह में इतनी दुबली हो गई है कि सदा पास रहने वाली सखियां भी उसे कठिनाई से पहचान पाती हैं। यहाँ तक तो स्वाभाविक है। परन्तु जब यह कहा जाता है कि:—

इत आवत चलि जाति उत चलि छ-सातक हाथ ।
चढ़ी हिंगेरैं सी रहै, लगी उसासनु साथ ॥

तो सत्यता का प्रदर्शन, अथवा करूणा का चित्र प्रस्तुत करने की अपेक्षा सच्ची अनुभूति से कहीं दूर फेंक देती है। नायिका विरह के ताप से इतनी सन्तप्त हो रही है कि सखियाँ उसे कुछ गुलाब के छींटे देकर शीतल करना चाहती हैं परन्तु वह प्रयत्न विफल होता है:—

औंधाई सीसी, सु लखि विरह-बरति बिललात ।
बिचहिं सूखि गुलाब-गो, छीटौ छुयौ न गात ॥

बिहारी का प्रवत्स्यत्पतिका आदि का वर्णन प्रोषितपतिका के वर्णन से कहीं अधिक स्वाभाविक बन पड़ा है। पत्रिका और संदेश में भी स्वाभाविकता अधिक है।

अजौं न आए सहज रँग, विरह-दूबरैं गात।
अबही कहा चालाइयति ललन चलन की बात॥

इसमें नायिका के उज्ज्वल प्रेमोद्गार स्पष्ट है। आगतपतिका नायिका के सूक्ष्म भावों और अविकल प्रेमोद्गारों का भी कवि ने अत्यन्त मार्मिक तथा हृदयाकर्षक चित्र खींचा है। बहुत काल के पश्चात् जब अपने किसी इष्ट से मिलन होता है तो प्रेम के अत्यधिक उमड़ आने पर मुख से वचन नहीं निकलते। इसी भाव को चित्र रूप मे बिहारी ने चित्रित किया है :—

बिछुरैं जिये संकोच इहिं बोलत बनत न बैन।
दोऊ दौरि लगे हियै किये लजौं हैं नैन॥

इसी प्रकार पत्रिका और सन्देश के वर्णन में भी कवि की लेखनी ने नायिका प्रेमी हृदय को निकाल कर रख दिया है।

कागद पर लिखत न बनत कहत सँदेसु लजात।
कहिहै सबु तेरौ हियौ, मेरे हिय की बात॥

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि बिहारी ने विरह-वर्णन में उहात्मक और अतिशयोक्ति-पूर्ण वर्णन किया है, परन्तु अन्यत्र व्यापक अनुभूति और निरीक्षण शक्ति का परिचय दिया है। जहाँ पर कवि-हृदय परम्परा की श्रृंखलाओं से उन्मुक्त होकर स्वच्छन्द होकर विचरण करता है वहाँ उसके उदार हृदय की वृत्ति और प्रेम की सच्ची अनुभूति के दर्शन होते हैं।

भक्ति भावना

भक्त कवि बिहारी किसी विशेष सिद्धान्त के अनुयायी नहीं थे। कुछ लोग उनकी एकाध भक्ति सम्बन्धी रचना को देखकर उन्हें अद्वैतवादी सिद्ध करते हैं। परन्तु यह तथ्य सर्वथा समीचीन नहीं जान पड़ता। कवि हृदय विशाल और उदार होता है। उसमें निर्झर के

प्रवाह की भाँति भाव आए और अपनी स्वाभाविक गति से कवि की लेखनी द्वारा सुवर्णों में प्रस्फुटित हो गए। उन्होंने निर्गुण सगुण का विशेष ध्यान न कर सामयिक हृदय-वृति के अनुसार भावों की अभिव्यक्ति की। भक्ति की रचना करते समय कवि अपने को कुकर्मी, पापी और पतित कहते हैं। सूरदास तुलसीदास आदि ने भी "पतितन को टीकौ" कह कर अपनी दीनता को प्रकट किया है।

ज्यौं ह्वै हौं त्यौं होउंगो हौं, हरि, अपनी चाल ।
हठ न करौ अति कठिनु है, मो तारिबो गोपाल ॥

बिहारी साध्य रूप में कवि और साधन रूप में भक्त थे। अतः उनकी उक्तियो में कवित्व तथा बांकापन अधिक मिलता है। कैसा दर्शनीय बांकापन है:—

करौ कुवत जग कुटिलता तजौं न दीन दयाल ।
दुखी होहुंगे सरल हिय बसत त्रिभंगीलाल ॥

बिहारी ने भक्ति-सम्प्रदाय का दैन्य ही नहीं वरन् कवि होने के नाते उपालम्भ आदि की उक्तियाँ भी बड़े चाव से बांधी हैं। भगवान् के महत्त्व और अपनी पतितता की होड़ भी लगाई है—

नीकी दई अनाकनी फीकी परि गुहारि ।
तज्यो मन्यौ तारन-बिरदु, बारक बारन तारि ॥

भगवान् के भक्ति के लिये हृदय में सच्चा भाव होना आवश्यक है, कपट द्वारों के बिना खोले भगवान् की भक्ति प्राप्त करना असम्भव है। इसी तथ्य को बिहारी ने भी स्वीकार किया है। भगवान के नाम का स्मरण सुख दुख में भी कर लेना चाहिये—

दीरघ साँस न लेहि दुख, सुख साईंहि न भूलि ।
दई दई क्यों करतु है, दई दई सु कबूलि ॥

इस प्रकार भक्ति सम्बन्धी-रचना का विश्लेषण करने से स्पष्ट होता है कि इनकी कविता सभी भाव-गुणों से सम्पन्न है उससे भक्ति की

भावी सामान्य-भूमि का आभास होता है। अतएव यह स्वतः सिद्ध बात है कि कवि के हृदय में जिस समय जो भाव आए वे ही उक्ति द्वारा अभिव्यजित कर दिये गए। भक्ति-सम्बन्धी उक्तियों में जो बाँकापन है वह उनकी रचना को और भी अधिक प्रभावशाली तथा सरस बनाता है। कोरी भक्ति का ही निरूपण कवि के छन्द-रत्नों में ही नहीं हुआ वरन् वह भक्ति भावना कवित्व से सुवासित होकर सामने आई हैं।

वाग्वैदग्ध्य और उक्तिवैचित्र्य

वाग्वैदग्ध्य से तात्पर्य वाणी की अभिव्यजंन-प्रणाली से है। कवि रचना के चित्रपट पर जब विभिन्न भाव-रूप पुष्पों को सुसज्जित करता है, हृदय की अनुभूतियाँ जब कवि की तूलिका से सुवर्णों द्वारा चित्रित होती हैं तभी श्रोता या पाठक उस कला का पूर्णानन्द प्राप्त करता है। भाव पक्ष के चित्रण में कवि की सफलता तो स्तुत्य है ही परन्तु कला पक्ष उस उत्तम भाव को उत्तमोत्तम बना देता है। मुक्तक-रचना में दोनों पक्षों की समानता अपेक्षित रहती है, जिससे बिहारी पूर्णतः अलंकृत हैं। बिहारी के कला-पक्ष में वाग्वैदग्ध्य पाठक के हृदय को उन्मादी बनाकर उसे रसानुभूति कराता है। यह कला उनकी मुक्तक-रचना के महत्त्व को बढ़ाने में सहायक होती है। बिहारी की उक्तियों में शब्दों या वाक्यों की कसावट ही नहीं वरन् वाणी की भी सुमधुर झंकार है। उनका वाग्वैदग्ध्य अर्थ-प्रदर्शन और रचना की कसावट दोनों का पूर्णतः सहायक होकर सौन्दर्य वृद्धि करता है:—

मेरी भवबाधा हरौ राधा नागरि सोइ।
जा तन की झाँई परै स्यामु हरित द्युति होय॥

प्रस्तुत दोहे में 'स्यामु' और 'हरितद्युति' कवि की कला और कारीगरी के द्योतक हैं।

किसी बात को स्पष्ट करने की युक्ति या किसी मुद्रा रूप आदि को अपनी निरीक्षण-शक्ति से स्पष्ट करने की सामर्थ्य ही उसके वैचित्र्य हैं। बिहारी इस काल में भी पूर्ण उतरे हैं। शैशव और यौवन की संधि को व्यक्त करने के लिये बिहारी ने धूपछांह नाम के कपड़े को उदाहरण रूप में रखा है। इस कपड़े में दो रंगों का ऐसा मेल होता है कि एक दूसरे की स्थिति के आरम्भ और अन्त का निश्चित ज्ञान नहीं हो पाताः—

छुटी न सिसुता की झलक झलक्यो जोबनु अंग ।
दीपति देह दुहून मिलि दिपति ताफ़ता-रंग ॥

इस प्रकार यौवन और शैशव दोनों के मिले हुए रँगों को स्पष्ट करने के लिये जिस दृष्टान्त का उपयोग हुआ है, वह उनकी चमत्कृत प्रतिभा का चित्रण कर देता है।

नायिका का मन मनमोहन के रूप-सौन्दर्य में पूर्णतः रम गया है। नायिका की प्रमोत्कटता और तल्लीनता का दिग्दर्शन कराने के लिये, उसको हृदयगंम कराने के लिये पानी में घुले हुए नमक का दृष्टान्त दिया हैः—

कीनै हूँ कोरिक जतन अब कहि काढ़ें कौनु ॥
मो मन मोहन-रूप मिलि पानी में कौ लौनु ॥

इस प्रकार मुद्रा निरूपण करने में भी बिहारी कुशल हैं। उनकी यही वाग्विदग्धता, उनका वैचित्र्य पाठकों को मंत्र मुग्ध कर लेता है। कवि की उक्तियाँ ही कवि के व्यक्तित्व को इतनी स्पष्ट कर देती हैं कि बिना नाम लिखे हुए भी एक सरल सा पाठक बिहारी के शुभ नाम का स्मरण कर लेता है।

बिहारी की भाषा :—

भक्तिकाल और रीतिकाल में प्रायः ब्रजभाषा का ही प्रयोग होता रहा है। परन्तु शुद्ध ब्रजभाषा के रूप बहुत कम मिलते हैं। बिहारी

जी रीति कालीन कवियों के अन्तर्गत हैं। उनकी भाषा ब्रजभाषा की सामान्य काव्य-भाषा है। उसमें साहित्यकता की भी पूर्ण छाप है। पूर्वी प्रयोग उनकी भाषा में कुछ परिवर्तन करते हैं। 'लीन 'कीन' दीन इत्यादि पूर्वी प्रयोगों की प्रामाणिकता उनके उच्चारणों से स्पष्ट हो जाती है। केशव के द्वारा प्रभावित होने के कारण उनकी भाषा में बुन्देलखंडी प्रयोग भी पर्याप्त मात्रा में पाये जाते हैं। 'स्त्रों' का प्रयोग बिहारी और केशव में प्रायः अधिक मिलता है। बिहारी ने एक प्रयोग अत्यन्त विचित्र किया है। ब्रज भाषा में 'चितवना' का भूतकालिक रूप 'चितयो' होता है और लिङ्ग भेद में भी कोई अन्तर नहीं पड़ता। परन्तु बिहारी ने स्त्री लिङ्ग के साथ 'चितई' का उपयोग ही किया है।

इसके अतिरिक्त बिहारी में लिङ्ग विपर्यय भी मिलता है। एक ही शब्द कहीं पुलिङ्ग रूप में और कहीं स्त्रीलिङ्ग रूप में प्रयुक्त हुआ है। दही शब्द बनारस में स्त्रीलिङ्ग है पर पश्चिम में पुलिङ्ग। बिहारी में भी ऐसी ही लिङ्ग विपर्यय मिलता है।—

फिरि बिलखि ह्वै लखति, फिरि फिर लेति उसासु।

इस दोहे में 'उसासु' शब्द पुलिङ्ग है। संस्कृत के उच्छ्वास का विकृत रूप उयास है। संस्कृत में इसका प्रयोग पुलिङ्ग रूप होता है पर हिन्दी में स्त्रीलिङ्ग रूप ही विशेष रूप से प्रचलित है। इसी प्रकार के अनेक लिङ्ग विपर्यय के उदाहरण मिलते हैं। फ़ारसी शब्दों में भी ऐसा ही परिवर्तन दिखाई देता है।

बिहारी ने दोहा के छोटे २ छन्दों का प्रयोग किया है। अतएव भाव की अभिव्यक्ति के लिये व्यंजना शक्ति की अत्यन्त आवश्यकता है। बिहारी की भाषा की समास-पद्धति और समाहार शक्ति ने उनकी मुक्तक रचना को कवि का कीर्ति-स्तम्भ बना दिया है। ऐसी ठोस या प्रौढ़ भाषा लिखने वाला दूसरा कवि नहीं हुआ। उनका लाक्षणिक

प्रयोग मुहावरों सम्बन्धी प्रयोग से अपेक्षाकृत प्रचुर और ब्रज की प्रकृति के अनुरूप हैं। इस प्रकार भाषा पर उनका पूर्ण अधिकार था।

बिहारी का प्रभाव:—

बिहारी का हिन्दी-साहित्य के कवियों की हृदय-वृत्ति पर अमोघ प्रभाव पड़ा। उनके बाद के कवियों को सत-सई लिखने की एक बलवती प्रेरणा सी मिली और मतिराम-सतसई, शृंगार-सतसई, विक्रम सतसई आदि सतसईयों की शृंखला सी प्रारम्भ हो गई। किसी का साहित्योचित् सत्कार तभी होता था जब बिहारी की अमृतवाणी से कर्ण रस पान कर चुकते थे। उस ग्रन्थ-रत्न में कैसी चमक है क्या निरालापन है, इनको दिखाने के लिये कवियों का मन लालायित हो उठा और अनेक टीकाएँ आदि लिखी गई।

बिहारी के पश्चात् मतिराम का समय आता है। उद्धारणों से स्पष्ट हो जाता है कि मतिराम पर बिहारी का प्रभाव पड़ा है। मतिराम प्रवीण और समर्थ कवियों अतएव उन्होने बिहारी के भावों को अच्छे ढंग से गृहण किया है। "होत दसगुनो अंकु है, दिये एक ज्यो बिन्दु" वाला मतिराम का दोहा बिहारी के "तिय लिलार बेदी दिये" वाले दोहे के भाव से सर्वथा मिलता है।

पद्माकर और जगन्नाथदास रत्नाकर में बिहारी का प्रभाव रग रग में व्याप्त है। भाव, भाषा और शैली तीनों ही बिहारी की प्रणाली का अनुगमन करने वाली हैं। बिहारी का ऐसा प्रभाव उनकी विशेषताओं को और भी लक्षित करता है। उनके दोहों में अमोघ प्रभविष्णुता होने के कारण दोहों को 'नावक के तीर' कहा गया है।

मतिराम

केशव, देव, पद्माकर आदि रीति काल के प्रधान कवियों के साथ इनकी गणना की जाती है। इनका जन्म तिकवांपुर (जिला कानपुर) में

सं० १६७४ के निकट माना जाता है। ये बूँदी के महाराज भावसिंह के यहां बहुत समय तक आश्रित रहे। वहां पर इन्होंने 'ललित ललाम' नामक अलंकार ग्रन्थ की रचना की। इस ग्रन्थ का रचना काल सं० १७१६ से १७४५ तक माना जाता है। इनका रस सम्बन्धी 'रसराज' ग्रन्थ अति प्रसिद्ध है। रस और अलंकार को जानने के लिए इन ग्रन्थों का अध्ययन करना अति लाभप्रद है। इनका छंद सार ग्रन्थ महाराज शंभुनाथ सोलंकी को समर्पित है। इनका प्रिय ग्रन्थ रस राज किसी को भी समर्पित नहीं है। इनके अतिरिक्त और भी ग्रन्थ हैं--'साहित्य सार' 'लक्षण शृंगार' और बिहारी सतसई के आधार पर मतिराम सतसई आदि की रचना की।

कवित्व और आचार्यत्व

यद्यपि कहीं २ इनके लक्षण दोष युक्त हैं तथापि वे सरल, सुबोध हैं जिनको पढ़ने में पाठक का मन उबता नहीं। इनके उदाहरण काव्य रस से परिपूर्ण हैं यह बिहारी की भांति 'दूर की कौड़ी लाने' तथा वचनों की वक्रता में इतने निपुण नहीं जितने अपने वचनों की सरलता सरसता और स्वाभाविकता में। कहीं २ मतिराम ने भावावेश में आ कर भावों को उद्वेलित करने वाले भाव लिखे हैं जो उनके सूक्ष्म निरीक्षण का परिचय देते हैं। इनके काव्य में अलंकारों का वृथाडंबर नहीं है। इनकी रचना सरस और अत्यन्त स्वाभाविक है और रस का समावेश है जिससे कविता की ओर प्रत्येक व्यक्ति का मन आकर्षित होता है।

मति राम की भाषा अपनी भाषा है। रीति काल में ऐसी सुन्दर, सरस अनुपम भाषा का बहुत कम कवियों ने प्रयोग किया है। मतिराम की भाषा रसस्निग्ध और प्रसाद, माधुर्य गुणों से परिपूर्ण है। शब्द और वाक्य भाव व्यंजना से युक्त हैं। भारतीय जीवन से चुन कर लिए हुए इनके मर्म स्पर्शी चित्रों मे जो भाव भरे हैं, वे समान रूप से सब

की अनुभूति के अंग हैं। कहीं २ इनकी भाषा अनुप्रास के जाल में जकड़ी हुई पाई जाती है। मतिराम के दो ग्रन्थ 'ललित ललाम' और 'रसराज' अपने ढंग के अनुपम और अद्वितीय ग्रन्थ हैं। ये ग्रन्थ सरसता और स्पष्टता के कारण ही सर्व प्रिय हैं। मिश्र बन्धुओं ने मतिराम की भाषा की निम्नलिखित विशेषताएँ बतलाई हैं:—

(१) मतिराम की भाषा शुद्ध ब्रज भाषा है जो बहुत ही उत्कृष्ट और अद्वितीय है। सरस, कोमल और मधुर शब्दों का समावेश बड़े अनूठे ढंग से किया है।

(२) इन्होंने जितना मानव प्रकृति पर विशेष ध्यान दिया है और विशद वर्णन किया है इतना सांसारिक प्रवृति पर नहीं।

(३) मतिराम ने जैसे उत्कृष्ट कवित्त और सवैये कहे हैं वैसे वे दोहे बनाने में भी समर्थ हुए हैं।

(४) मतिराम की रचना में भाषा के अतिरिक्त अर्थ गाम्भीर्य का विशेष गुण हैं।

उदाहरण :—

बेलिन को लपटाइ रही, तमालन की अबली अतिकारी।
कोकिल, केकी, कपोतन के कुल, केलि करें अति आनन्दभारी॥
सोच करे जनि होऊ सुखी 'मतिराम' प्रबीन सबैं नरनारी।
मंजुल बंजुल कुंजन में घन, पुंज सखी ससुरारि तिहारी॥

इस सवैये में माधुर्य गुणों की पूरी पूरी झलक मिलती हैं।

भूषण

हिन्दी के वीर-काव्य के सर्वाधिक सफल और जागरूक कवि भूषण हुए हैं वे कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे और शिवाजी के समकालीन थे। उनका निवास स्थान तिकवाँपुर है। इसको त्रिविक्रमपुर भी कहा गया है। भूषण ने इस संबंध में लिखा है "बसत त्रिविक्रमपुर सदा।"

महाकवि भूषण के शिवराज भूषण, शिवा बावनी, छत्रसाल दशक नामक ग्रन्थ तथा कुछ फुटकर छन्द लिखे हैं। शिवराज भूषण एक स्वतंत्र ग्रन्थ हैं। यह शिवा जी की प्रशंसा में लिखा हुआ एक अलंकार ग्रन्थ है। शिवा जी के युद्ध, दुर्ग-विजयों, प्रभावशाली व्यक्तित्व की छाप तथा निर्भीकता का सजीव चित्रांकण किया गया है।

शिवा बावनी भूषण जी के ५२ फुटकर छन्दों का संग्रह है। छत्रसाल दशक महाराज छत्रशाल के दशों गान सम्बन्धी छन्दों का संग्रह मात्र है।

कविवर भूषण राष्ट्रीय भावों से ओत प्रोत थे। यद्यपि उन्होंने भी अपने आश्रयदाताओं का यशोगान किया है परन्तु उनकी प्रशस्तियों में हिन्दु-राष्ट्र के संगठन की भावना ही प्राण रूप में निहित थी। वे वीरता के पुजारी थे और अपने आश्रयदाताओं की प्रशंसा इसी दृष्टि कोण को सामने रखकर करते थे। उनकी प्रशंसा में प्रमुख रूप से देश-दशा, देश-द्रोहियों का दमन और वीर-पूजन के ही भावों का प्राकृतिक और शक्तिशाली रूप मिलता है। अपने आश्रयदाता की विजय हिन्दू आदर्श की विजय मानते थे। हिन्दू संस्कृति और हिन्दू राष्ट्र को लेकर गौरव और अभिमान की भावना उनमें संचरण करती थी और इस अर्थ में उनका स्वर उस काल के सम्पूर्ण हिन्दू राष्ट्र का स्वर था।

उनकी कविता के मुख्य विषय दो हैं— युद्ध-वर्णन और वीरों के कीर्तिगान। युद्ध-वर्णन में उन्होंने अपने नायक के साहस, उसकी सेना के अनन्त उत्साह तथा मारकाट पूर्ण अत्यन्त लोमहर्षक-दृश्यों का चित्र खींचा है। इन ऐतिहासिक घटनाओं में सत्य-प्रियता और आदर्श-परिचय दिया गया है।

कीर्तिगान में भूषण ने परिपाटी का अनुसरण करते हुए अपने आश्रयदाताओं की दान-वीरता और उदारता का अतिरंजित वर्णन किया है।

काव्य-कला की दृष्टि से भूषण की कविता वीर रस पूर्ण है। उसमें भी युद्ध-वीरता के जो चित्र अंकित किए हैं वे वास्तव मे लोम-हर्षक और उत्तेजना-पूर्ण हैं। वीर रस के वर्णन में कहीं कहीं ऊहात्मक पद्धति का अनुसरण अवश्य किया है। सेना के चलाने से शेष की दुर्दशा, समुद्र का हिलना धूल से सूर्य का ढक जाना परम्परा युक्त ही है।

भूषन भनत बिहद नगारन के
नदी-नद मद गैबरन के रलत हैं।
ऐल फैल खैल भैल खलक में गैल गैल
गजन की ठेल-पेल सैल उसलत हैं।
तारा सों तरनि धूरि-धारा मैं लगत
जिमि थारा पर पारा पारावार यों हलत हैं।

वीर रस के सहायक रस भयानक और रौद्र का भी पूर्ण परिपाक हुआ है। महाराज शिवाजी का जहाँ कहीं भी आक्रमण होता है वहाँ का वातावरण कितना भयाक्रान्त हो जाता है, इस स्थिति का अत्यन्त सजीव वर्णन भूषण के छन्दों में उपलब्ध होता है।

शिवराज भूषण कवि भूषण का रीति ग्रन्थ माना जाता है। काव्य के लक्षण, रस और अलंकारों का जो निरूपण किया जाता है उसमें कवि निरूपक रचना में जितना ही निर्लिप्त रहता है उतना ही अधिक सफ़ल होता है। भूषण ने अलंकार निरूपण मात्र के लिये छन्द रचना नहीं की। उनके छन्दों से यह स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि इन छन्दों की रचना समय समय पर हुई है और अलंकार ग्रन्थ निर्माण के समय वे छन्द यथास्थान जोड़ दिये गये हैं। यह बात इस तथ्य से और भी स्पष्ट हो जाती है कि भूषण ने सम्पूर्ण अलंकारों का निरूपण नहीं किया, कुछ अलंकार छोड़ दिये हैं।

भूषण का राष्ट्रीय दृष्टि कोण भी महान था। उस समय सांस्कृतिक एकता की भावना ही प्रमुख थी, आज कल की राजनीतिक एकता का

स्वरूप उस समय खड़ा नहीं हुआ था। हिन्दू-मुसलिम की पारस्परिक एकता की भावना बलवती होती जा रही थी। हिन्दू नरेश मुसलिम सैनिकों को सम्मिलित करते थे और मुसलमान नरेश हिन्दू सैनिकों को अपनी सेना में बराबर स्थान दे रहे थे। इस प्रकार हिन्दु-मुसलिम पारस्परिक व्यवहार दृढ़ एकता की भावना से संगठन की गांठ को पक्का कर रहे थे।

महाराज शिवाजी भी मुसलमानों के सम्बन्ध में इसी उदार नीति के पोषक थे। भूषण सम्पूर्ण राष्ट्र को एक सूत्र में आबद्ध देखना चाहते थे। इसी से उन्होने अत्याचारी औरङ्गज़ेब की निन्दा भी की है।

इस प्रकार भूषण रीतिकालिन धारा के कवि होते हुए भी वीरता के पुजारी हैं। हिन्दू-राष्ट्र के निर्माण के लिये महाराज शिवाजी का नाम भारतीय इतिहास में जिस प्रकार अमर रहेगा उसी प्रकार उनके कीर्तिगायन महाकवि भूषण की वीरता-प्रदायिनी कविता हिन्दी-साहित्य जगत के भावों में स्फूर्ति उत्पन्न करती रहेगी। इनके काव्य में वीर भावों की सृष्टि सफ़लता पूर्वक हुई है।

कुलपति मिश्र

ये महान कवि बिहारी के भाग्नेय थे और इन्होंने अपने जन्म से आगरे को गौरवान्वित किया। ये जाति के चौबे थे। इनके पिता का नाम परशुराम था। ये महाराजा रामसिंह के आश्रय में रहा करते थे। इनका कविता काल सं० १७२४ से १७४३ माना जाता है। ये संकृत के प्राकांड विद्वान थे। इनका 'रस रहस्य' ग्रन्थ अपनी अनूठी रचना के द्वारा अति प्रसिद्ध हैं। ये मम्मट के काव्य प्रकाश का छायानुवाद है। इसमें शब्द शक्ति का भी निरुपण किया। इस ग्रन्थ के अतिरिक्त निम्नलिखित ग्रन्थों का पता चलता है— १ द्रौण पर्व २ मुक्ति तरंगिणी ३ नख सिख ४ संग्रहसार ५ गुण-रस रहस्य अलंकार प्रकरण में इन्होने अपने आश्रय दाता महाराज रामसिंह की प्रशंसा के स्वरचित

उदाहरण दिये हैं। ये ब्रज मंडल के निवासी थे। अतः इनका ब्रज भाषा पर अनूठा अधिकार था। ब्रज-भाषा इनकी वश वर्त्तिनी हो कर चलती थी। इनकी रचना का एक उदाहरण उद्धृत किया जाता है।

ऐ सिय कुंज बनी छबि पुज रहै अति गुंजत यों सुख लीजै,
नैन बिसाल हिये बनमाल बिलोकत रुप सुधा भर पीजै।
जामिनि-जाम की कौन कहै जुग जात न जानिए ज्यों दिन छीजे,
आनन्द यों उमग्योई रहै दिय मोहन के मुख देखिबो कीजै॥

नेवाज

ये अंतर्वेद के निवासी जाति के ब्राह्मण थे। पन्ना के नरेश महाराज छत्र साल इनसे प्रश्न होकर इन्हें अपने यहाँ भगवत् कवि के स्थान पर नियुक्त कर दिया और पुराने कवि भगवत को पदच्युत कर दिया। जिस पर कवि ने व्यंग से इस प्रकार कहा।

भली आजु कलि करत है छत्रसाल महाराज।
जहँ भगवत गीता पढ़ी तहँ कवि पढ़त नेवाज॥

ये सं० १७३७ के लगभग विद्यमान थे। ये कुछ समय तक आजम शाह के यहां भी रहे थे। इन्होंने शकुन्तला नाटक की रचना आख्यान दोहा, चौपाई और सवैया में की है। जिससे इनकी काव्य कुशलता और सहृदयता टपकती है। इनकी कविता परिमार्जित, सुव्यवस्थित भावोपयुक्त है। शब्दाडंबर नहीं है। ये शृंगारी कवि हैं। संयोग शृङ्गार का वर्णन करने में निपुण हैं। शृंगार का वर्णन करते २ अश्लीलता की सीमा पर पहुँच जाते हैं। इनका एक उदाहरण नीचे प्रस्तुत किया जाता है।

देखि हमैं सब आपुस में,
जो कछू मन भावै सोई कहती हैं।
ये घहराई लुगाई सबै निसि,
द्यौस नेवाज हमैं दहती हैं॥

बातें चवाव भरी सुनिकै रिस,
आवती पै चुप ह्वै रहती हैं ।
कान्ह पियारे तिहारे लिये,
सिगरे ब्रज को हँसिबो सहती हैं ।

देव

महाकवि देव का पूरा नाम देवदत्त था। इनका जन्म इनके अपने भावविलास के अनुसार संवत १७३० ही बैठता है। ये इटावा के रहने वाले थे—'द्योसरिया कवि देव को नगर इटावो बास।' मिश्रबन्धुओं ने इन्हें कान्य-कुब्ज ब्राह्मण और आचार्य शुक्ल जी ने इन्हें सनाढ्य ब्राह्मण कहा है। इनके वंश-वृक्ष के साक्ष्य के अनुसार देव के पिता का नाम बिहारीलाल दुबे था।

कविवर देव का अविर्भाव रीतिकाल में हुआ था उस समय कवियों का जीवन-यापन राजाश्रय में ही होता था। उनकी जीविका का एक मात्र साधन वही था। परन्तु देव के काव्य का अध्ययन करने से यह स्पष्ट हो जाता है वे कई राजाओं के आश्रय में रहे; परन्तु उनकी मनोवृत्ति कहीं एक जगह नहीं रमी। इनका विशेष कारण यही था कि इनको मनानुकूल कोई आश्रयदाता न मिला, जो उनके जीवन की चिन्ताओं से मुक्त कर देता, जिसके यहाँ ये स्थिरतापूर्वक रहकर सरस्वती का आराधन कर सकते। अपने आश्रय-दाताओं में ये भोगीलाल से अधिक प्रसन्न दिखाई देते हैं। औरंगज़ेब के पुत्र आज़मशाह के आश्रय को भी इन्होंने प्राप्त किया। वह हिन्दी के प्रेमी कवि थे। उनको इन्होंने अपने अष्टयाम और भाव विलास सुनाये। देव ने अपना सुखसागर तरंग नामक ग्रन्थ विहानी के अकबर अलीखाँ को समर्पित किया था। इस आधार पर उनकी जीवन यात्रा सं० १८२४ तक समाप्त हो जाती है।

कविवर देव की जीवन-नौका को खेने का कार्य गो० हितहरिवंश जी ने किया। ये उनके द्वादश शिष्यों में शिरोमणि थे और राधा-वल्लभी सम्प्रदाय के अनुयायी थे। इनके सम्बन्ध में कुछ किम्व-दन्तियाँ भी प्रचलित हैं। जिनमें से दो किंवदन्तियों का सम्बन्ध भरतपुर नरेश से हैं।

एक बार श्री देव जी भरतपुर नरेश के यहाँ गये। उस समय डींग के किले का निर्माण हो रहा था। महाराज ने कवि को कुछ सुनने के लिये अनुरोध किया। परन्तु इन्होंने कहा "महाराज इस समय सरस्वती कुछ कहने की आज्ञा नहीं देती।" परन्तु महाराज के आग्रह करने पर उन्होंने कुछ छंद पढ़ दिये, जिनमें एक का आशय यह था कि इस क़िले में खोपड़ियाँ लुढ़कती फिरेंगी। कहा जाता है यह उक्तिवाद में अक्षरशः सत्य सिद्ध हुई। इस प्रकार की अनेक किम्वदन्तियाँ प्रचलित हैं जिनका यह निष्कर्ष निकलता है कि देव वाक्‌सिद्ध कवि थे अर्थात मुख से प्रस्फुटित हुई उनकी प्रत्येक बात सत्य होती थी। स्वाभिमान सदा जागृत रहता था और उनकी जीवन-दृष्टि गम्भीर थी—राग के साथ विराग की भावना भी अत्यन्त प्रबल थी।

देव का काव्य का अध्ययन करने से यह ज्ञात होता है कि देव की प्रकृति शृङ्गारिक थी। परन्तु उस शृंगारिकता में भी गम्भीरता की छाप थी। रीतिकाल के अन्य कवियों ने जहाँ नारी के ही सौन्दर्य का चित्रण किया है वहाँ देव जी की दृष्टि में उसके सौन्दर्य से आगे उसके व्यक्तित्व तक रमी है। रसिकता के कारण प्रेम की गम्भीर निष्ठा भी वर्तमान है। प्रकृति की यही गम्भीरता देव के व्यक्तित्व का प्रधान अंग है। राग और वैराग्य के जो गहरे संस्कार उसके स्वभाव में मिलते हैं वे वस्तुतः एक ही प्रवृति के दो पक्ष हैं। हृदय की इन विभूतियों के साथ मस्तिष्क भी असाधारण विभूतियों से मंडित था। इनकी प्रतिभा सर्वतोमुखी थी और विस्तृत पाण्डित्य से जीवन पूर्णतः परिपुष्ट था।

इस प्रकार देव का व्यक्तित्व, भावुकता, प्रतिभा आदि से समृद्ध तो था ही परन्तु बौद्धिक शक्ति और कर्म का सर्वथा अभाव था। अतः पूर्ण जीवन सदा कोमल तथा भावमय ही रहा।

ग्रन्थ

देव के ग्रन्थों के सम्बन्ध में कुछ लोगों का अनुमान है कि इनके ग्रन्थ ७२ हैं और कुछ की अनुमति में ५२ समझे गए हैं। वास्तव में इनके प्राप्त ग्रन्थों की संख्या भाव विलास, अष्टयाम, भवानी विलास; रस-विलास, प्रेम-चन्द्रिका, राग-रत्नाकर, सुजान-विनोद, जगद्दर्शन-पचीसी, आत्मदर्शनपचीसी, तत्वदर्शनपचीसी, प्रेम-पचीसी, शब्दरसायन सुखसागरतरंग, प्रेमतरंग, कुशल-विलास, जाति-विलास, देव-चरित्र देवमायाप्रपंच आदि हैं। रस-विलास और प्रेमचन्द्रिका में उच्च साहित्यिक गौरव है। शब्द रसायन में आचार्यत्व, भावविलास में रीति विवेचन तथा अन्य ग्रन्थों में अनेक उत्तम विषय हैं। अप्राप्य ग्रन्थ जो अनुमानतः विश्वसनीय प्रतीत होते हैं लगभग ११ हैं। परन्तु फिर भी इनके ग्रन्थों की संख्या ५२ अथवा ७२ तक पहुँची होगी इसमें सन्देह हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ देव के मानसिक धरातल में उत्पन्न रसों और भावों का पूर्णतः परिचय देते हैं। यौवन की तरंग में शृंगारिक रचना हुई और फिर इनका झुकाव ज्ञान और वेदान्त की ओर गया। रीति-कवियों में इनकी रचनाएँ जितनी विस्तृत हैं उतनी अन्य किसी कवि की नहीं।

कवित्व-शृङ्गार

रीतिकाल का विवेचन करने से ज्ञात होता हैं कि उसमें दो मुख्य प्रवृत्तियाँ पाई जाती हैं। शृंगारिकता और आचार्यत्व। देव की कविता में इन दो प्रवृत्तियों के अतिरिक्त एक तीसरी प्रवृत्ति भी आरम्भ से ही मिलती है। वह है वैराग्य-भावना। इस प्रकार राग-विराग और रीति ये तीन पक्ष देव के काव्य में स्पष्ट होते हैं।

देव मूलतः शृंगार-भावना के कवि थे। दो-एक ग्रन्थों को छोड़कर सम्पूर्ण काव्य-सागर शृंगार की मधुर-रस की धाराओं से प्रवाहित होता है। इन्होंने प्रेम की महिमा का गान किया है। इस रस को पीकर मनुष्य मर कर भी अमर हो जाता है, पागल होकर भी जगत के रहस्य को जान लेता है। इस प्रकार संयोग और वियोग शृंगार की दोनों अवस्थाओं का सूक्ष्म और विस्तृत विवेचन किया है। उनकी उद्भावनाएँ कहीं कहीं अत्यन्त मौलिक हैं–'मधु की मक्खियाँ अखियाँ भई मेरी' गोरो गोरो मुख आज ओरो- से बिलानो जात' की उक्तियाँ अत्यन्त सुन्दर और कलापूर्ण तथा मार्मिक बन पड़ी है। शृङ्गार के कुछ चित्र उपमानों द्वारा भी चित्रत किए गये हैं। देव ने रूप-सौन्दर्य के भी मुग्धकारी चित्र खींचे हैं। कहीं २ रूप के उपभोग की वासना और उसमें प्रेम का रँग अत्यन्त प्रगाढ़ हो गया है:—

'देव' मैं सीस बसायो सनेह कै भाल मृगम्मद बिंदु कै भाख्यो।
कंचुकी मैं चुपरो करि चोवा लगाइ लियो, उर सो अभिलाख्यो॥

सांवरे लाल को सांवरो रूप मैं नैननि में कजरा करि राख्यो॥

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि देव संयोग शृंगार के वर्णन में पूर्णतः सफल हैं। परन्तु वियोग शृंगार के वर्णन में इनके हृदय की वृत्ति अधिक प्रवृत दिखाई देती है। वास्तव में दोनों पक्षों की प्रेम-परीक्षा भी यहीं होती है। प्रेम-स्वर्ण विरह की कठिन अग्नि में तप कर निर्मल हो जाता है। विरहणी नायिका प्रिय के विरह में अत्यन्त कृश हो गई है, यहाँ तक कि अब उसकी मरणोन्मुख अवस्था जान पड़ती है। देव ने इसका चित्र भी कितनी सुन्दर व्यंजना से चित्रित किया है:—

"सासन ही सों समीर गयो, अरु आंसुन ही सब नीर गयो टरि।
तेजु गयो गुन लै अपनो, अरु भूमि गई तनु की तनुता करि॥

जा दिन तें मुख फेरि, हरे हँसी, हेरि हियो जुलियो हरि जु हरि॥

इस प्रकार देव शृंगार की दृष्टि से रीतिकालीन कवियों में सब से अधिक बढ़े हुए हैं। रीतिकाल में किसी कवि ने शृंगार का ऐसा रस-सिक्त वर्णन नहीं किया है। गंभीरता, तन्मयता व्यंग्य आदि के योग से इनके शृंगारिक पक्ष अत्यन्त स्तुत्य हैं।

वैराग्य-भावना

शृंगार रस में आपाद्-चूड़ मग्न यह कवि वैराग्य की भी गहरी भावना से ओत-प्रोत था। मनोविज्ञान की दृष्टि से विराग कोई स्वतंत्र भाव न होकर राग का रूपान्तर ही है। राग अपनी तीव्रता से थक कर वैराग्य में परिणत हो जाता है। सांसारिक मनुष्य साधारणतः अतिशय राग से थककर ही तत्वान्वेषण अथवा परमात्म चिन्तन करता है। अस्तु देव का वैराग्य मूलतः अतिशय राग की प्रतिक्रिया है। उन का राग—क्लान्ति, आत्म-भर्त्सना और पराजय से युक्त वैराग्य में परिणत हो गया है। राग की यह थकान देव की वैराग्य कविता में अत्यन्त स्पष्ट है:—

"हाय कहा कहौं चंचल यामन की गति में मति मेरी भुलानी।
हौं समुझाय कियो रस-भोग न 'देव' तऊ तिसना बिनसानी॥
दाड़िम दाख रसाल-सीता मधु ऊख पिये औं पियूष से पानी।
पैन तऊ तरुनी-तिय के अधरान के पीवे की प्यास बुझानी॥"

वैराग्य की यह भावना उचित आश्रयदाता के अभाव में आर्थिक विफलता के कारण और भी गहरी हो गई थी। जीवन के सभी रस भोग से विरक्ति होने का चित्र इस प्रकार है:—

ऐसे जो हौं जानतो कि जैहैं तू विषे के संग।
एरे मन मेरे हाथ, पाँव तेरे तोर तो॥
भारो प्रेम-पाथर नगारो दै गरेतें बाँधि,
राधावर-बिरद के बारिधि में बोरतो।

बस, यही क्लान्ति, यही वैफल्य कवि को तत्व-चिन्तन की ओर प्रेरित कर देता है।

देव का तत्व-चिन्तन अत्यन्त गम्भीर है। विभिन्न नामों से विभूषित यह जगत तो शत-शत आकर्षणों से मानव मन को वशीभूत कर लेता है, वास्तव में माया का ही चमत्कार है। माया की शक्ति अपार है उसका वैभव अपरिमेय है।

जब तक मानव इससे आच्छन्न रहता है, वह इस मृगतृष्णा के पीछे पागल होकर दौड़ता है। मानव की शक्ति, यौवन का गर्व और अहंकार सभी क्षणभंगुर हैं और अपनी इस क्षणभंगुरता में कितना करुण है:—

देव अदेव बली बलहीन चले गये, मोह की होस हिलाने
रूप कुरूप गुनी निगुनी जे जहाँ उपजे ते तहां ही बिलाने।

इस प्रकार देव की आध्यात्मिकता में दो तत्व निहित हैं—बुद्धितत्व और रागतत्व। यह बुद्धि द्वारा ग्रहण किये हुए दार्शनिक तत्वों को भाव का विषय बनाने का असफल प्रयत्न है।

आचार्यत्व

देव कवि और आचार्य दो रूपों में हमारे सामने आते हैं। संस्कृत-साहित्य में आचार्यत्व और कवित्व दो भिन्न मानव-प्राणियों में मिलते हैं। परन्तु रीतिकाल इसका अपवाद है। आचार्यत्व की दृष्टि से देव उस रीतिकालीन साहित्य के सर्वश्रेष्ठ और सफल आचार्य हैं, जिसमें आचार्य कवियों ने काव्य का साङ्गोपाङ्ग विवेचन किया है। शब्द-रसायन और भाव-विलास इनके प्रमुख रीतिग्रन्थ हैं।

काव्याङ्गों में सब से अधिक महत्त्वशाली रस होता है। उसी को सर्वप्रथम लेकर उसको निम्न परिभाषा से आच्छादित किया है:—

जो विभाव अनुभाव अरु, विभचारिनु करि होइ।
थिति की पूरन बासना, सुकवि कहत रस सोइ।

देव ने रस को ब्रह्मानन्द सहोदर तथा आध्यात्मिक अनुभूति माना है। वे उसे लौकिक एवं ऐन्द्रिय अनुभव से परे मानते हैं।

"जहाँ न करत कदर्थना यह असार संसार।"

संचारियों के वर्णन में देव ने कुछ विचित्रता सी दिखलाई है। इन्होंने संचारियों के दो भेद किये हैं—तन संचारी और मन-संचारी। इसकी नवीनता यह है कि देव ने छल को ३४ वां संचारी माना है। कुछ संचारियों के इन्होंने अवान्तर भेद भी कर डाले हैं जहाँ अन्य रीति कारों ने आठ कामदशाओं का वर्णन किया है वहाँ देव ने उनके अनेक उपभेद कर डाले हैं.

रीति काल में नायिका भेद न केवल एक स्वतंत्र वरन् सर्वप्रधान अंग भी बन गया था। देव अत्यन्त विस्तार-प्रिय कवि थे। अन्य कवियों ने जहाँ नायिका-भेद का वर्णन, काल गुण, वयः क्रम, दशा और जाति के अनुसार किया है वहाँ देव ने इनके अतिरिक्त देश, प्रकृति, सत्व और अंश के आधार को भी ग्रहण किया है। नायिका के अतिरिक्त नायक, नायक के सहायक और दूती आदि का भी वर्णन किया है।

अलंकारों का विवेचन भी देव ने दो स्थानों पर-भाव-विलास के अन्तिम विलास में और दूसरे शब्द-रसायन के आठवें और नवें प्रकाश में किया है। उन्होंने कई अलंकारों को ही मुख्य माना है शब्द-शक्तियाँ भी उन्होंने चार मानी हैं अभिधा, लक्षण, व्यजना और तात्पर्य। छंदो को कविता-कामिनी की गति रूप में मानकर उसका प्रयोग किया है।

सारांश यह कि आलोचनात्मक दृष्टि से देव का मुख्य गुण है उनका रस-सवेदन। इस दृष्टि से ही उनका गौरव है। रस सिद्धान्त का इतना, व्यापक एवं समर्थ प्रतिपादन किसी ने नहीं किया।

हिन्दी साहित्य में देव का स्थान

रीतिकाव्य की समीक्षा करने से ज्ञात होता है कि विवेचन-विषय

और विवेचन-शैली की दृष्टि से हिन्दी आचार्यों के तीन पृथक वर्ग हैं—१ मम्मट तथा विश्वनाथ आदि की शैली पर दशांग विवेचन करने वाले आचार्य। शृंगार तिलक और रसमंजरी आदि के अनुसार शृंगार रस और उसके आलम्बन नायिका का वर्णन करने वाले आचार्य तथा कुवलयानन्द आदि के अनुसार अलंकार मात्र का विवेचन करने वाले आचार्य। इनमें देव प्रथम श्रेणी के अन्तर्गत हैं। रीतिकाल में आचार्यत्व की दृष्टि से देव अन्य कवियों की अपेक्षा बहुत बढ़े चढ़े हैं। इनके मुकाबले में खड़े होने में केशव ही समर्थ हैं। रीतिकाल के प्रवर्तक होने के कारण केशव का कार्य अधिक स्तुत्य है केशव में पांडित्य है परन्तु देव में स्पष्टता गंभीर एवं सूक्ष्म रस-चेतना है जो आलोचक अथवा आचार्य का एक मूलवर्ती गुण है। कवि रूप में देव का हृदय-पक्ष केशव की अपेक्षा अधिक समृद्ध है। उनमें आवेग, तन्मयता, रसार्द्रता केशव से अधिक है। कलापक्ष भी देव का केशव से अधिक सम्पन्न है। छंदों में अधिक मसृणता अथवा संगीत है। गीतितत्व समृद्ध और प्रचुर है। इस प्रकार देव कवियों की द्वितीय श्रेणी के अन्तर्गत हैं। हिन्दी में सूर सागर, कामायनी और राम चरित मानस के सृष्टा ही प्रथम श्रेणी के अन्तर्गत हैं शेष द्वितीय श्रेणी में निहित हैं।

भिखारी दास

ये जाति के श्रीवास्तव कायस्थ थे और इनका निवास स्थान प्रतापगढ़ (अवध) के पास त्योंगा गांव में माना जाता है। इनके पिता का नाम कृपाल दास था। इनके पौत्र गौरीशंकर के अपुत्र मर जाने से इनकी वंश परंपरा नष्ट हो गई। दासजी के निम्नलिखित ग्रंथ उपलब्ध हो चुके हैं।

रस सारांश (सं० १७६६) छंदो वर्ण पिंगल (सं० १७६६) काव्य निर्णय (सं० १८०३) शृंगार निर्णय (सं० १८०७) नाम

प्रकाश (कोश, सं० १७६५) विष्णु पुराण भाषा (दोहे चौपाई) में छंद प्रकाश, शतरंज-शतिका, अमर प्रकाश (संस्कृत अमरकोष भाषा-पद्य में)

इनके आश्रय दाता प्रताप गढ के सोमवंशी बाबू हिन्दु पति सिंह जी थे। इनका रचना काल सं० १७८५ से १८०७ तक माना जाता है। काव्यांगों के निरुपण में दास जी का सर्व प्रथम स्थान है। इन्होंने छंद, रस, अलंकार रीति, गुण, दोष शब्द शक्ति आदि सब विषयों का विस्तार पूर्वक प्रतिपादन किया। इन्होंने स्वकीया और परकीया दोनों प्रकार की नायिकाओं का वर्णन किया है। परकीया की प्रेम की प्रचुरता दिखाई पड़ी जो रस की दृष्टि से रसाभास के अन्तर्गत आ जाता है। दास जी ने स्वकीया का लक्षण अधिक व्यापक करना चाहा।

श्री मानन के मौन में भोग्य भामिनी और।
तिन्हुं को सुकियाहि में गनैं सुकवि सिर मौर ॥

दास जी को आचार्य मानने में विद्वानों का भिन्न २ मत है जिस प्रकार देव और बिहारी के मानने में। कोई इन्हें आचार्य और कोई कवि कहते हैं लेकिन पूर्णतया सिद्ध नहीं कर सके। यद्यपि दास जी ने औरों की अपेक्षा आचार्य क्षेत्र में अधिक कार्य किया परन्तु फिर भी वे पूर्णतया आचार्य कहलाने के अधिकारी नहीं हैं। परिस्थिति से ये भी लाचार थे।

दास जी ने साहित्यिक और परिमार्जित भाषा का प्रयोग किया है। उस युग का मुख्य विषय शृंगार था। अतः इन्होंने भी इस पर लेखनी चलाई और पूर्ण रूप से वर्णन किया। इन्हों ने देव की तरह नाइन, धोबिन, तेलन, कुम्हारिन आदि को आलंबन न बना कर मर्यादा के ध्यान से रसाभास के डर से इनको दूती का ही रूप दिया है। इनमें देव से अधिक रस विवेक था। इनका 'शृंगार निर्णय' अपने शैली की अनुपम रचना है। उदाहरण सरस, सरल, मनोहर हैं। शब्दाडंबर का प्रयोग नहीं किया है। इनकी रचना कला पक्ष में संपंत और भाव पक्ष

में रंजनकारिणी है। भाषा इनकी वशवर्त्तिनी हो कर चलती थी एक बात को दूसरी प्रकार से करने की इनमें विलक्षण शक्ति थी। यह हमारे सामने कवि के रूप में आते हैं। ये उच्च कोटि के कवि थे। इनकी कविता का उदाहरण दिया जाता है।

ऊधो! तहांई चलौ लै हमें जहँ कूबरी कान्ह बसै एक ठौरी।
देखिय दास अघाय अघाय निहारे प्रसाद मनोहर जोरी॥
कूबरि सों कछु पाइए मंत्र लगाइए कान्ह सों प्रति की डोरी।
कूबरी भक्ति बढ़ाइए बंदि चढ़ाइए चंदन बंदन रोरी॥

तोष निधि

इनका निवास स्थान श्रृंगवेरपुर था। इनके पिता का नाम चतुर्भुज शुक्ल था। इनका 'सुधानिधि नामक रस-भेद और भाव भेद सम्बन्धी ग्रन्थ अति प्रसिद्ध है। इसकी रचना सं० १७९१ में हुई। खोज करने पर 'विनय शतक' और 'नखसिख' नामक इनकी दो पुस्तकों का पता चला। तोष जी ने काव्यांगों पर दृष्टि पात किया और बहुत सुन्दर ललित लक्षण और सरस, सुलभ और शास्त्र सम्मत उदाहरण दिये हैं। कल्पना का परिपूर्णता से निर्वाह हुआ है कहीं पर भी आरोचकता नहीं आने पाई है। भाषा सरस, सरल तथा परिमाणित है और स्वाभाविक प्रवाह के साथ बढ़ती है। भाषा की श्रृंखला टूटने नहीं पाई है उनकी भाषा हृदय को स्पर्श करने वाली है। ये सहृदय, भावुक और निपुण कवि थे। भावों की उलझी हुई गुत्थी को सुलझाने में अत्यन्त निपुण कवि थे। बिहारी की समान इन्होंने कहीं २ ऊहात्मक अत्युक्ति की है। उदाहरण बड़े सरस और हृदय-ग्राही होते हैं। जिनको पढ़ने के लिये मन उत्सुक होता है। भाषा वास्तव में सरस है। इनकी भाषा का एक उदाहरण नीचे दिया जाता है।

श्री हरि की छबि देखिबे को अखियां प्रीति रोमहि कर देतो।
बैनन के सुनिय हित स्त्रौत जितै-तितसों करतो कर हेतो॥

मो ढिग छांड़ि न काम कहूँ रहे तोष कहै लिखितो विधि एतो।
तो करतार इतो करनी करिकै कलि में कल कीरति लेतो॥

रसलीन

ये प्रसिद्ध मुसलमान कवि थे इनका नाम सैयद गुलाम नबी था। इनका निवास स्थान बिलग्राम है। जहां पर परम्परा से निपुण विद्वान् होते आये हैं। अपने नाम के आगे 'बिलगरामी' लगाते थे और इसको अति सम्मान की दृष्टि से देखते थे आपके पिता का नाम वाकर था। आपकी प्रसिद्ध रचना "अंग दर्पण" है जिसमें अलंकारों का अनुपम ढंग और चमत्कार से प्रयोग किया गया है। उपमा, उत्प्रेक्षा के द्वारा भाषा को परिमर्जित और सुगठित बनाया गया है। निम्नलिखित प्रसिद्ध दोहा जनसाधारण बिहारी का दोहा ही समझते हैं क्योंकि यह दोहा बिहारी के दोहो की भाँति है। परन्तु वास्तव में यह दोहा बिहारी का नहीं है यह रसलीन का ही बनाया हुआ है। यह अंग दर्पण का ही है।

अमिय हलाहल मद भरे, सेत स्याम, रतनार।
जियत मरत झुकि झुकि परत, जेहि चितवत एक बार॥

सं० १७९८ में 'रस प्रबोध' नामक रस निरुपण का ग्रन्थ दोहों में रचा है। यह लग भग ११५५ दोहों का ग्रन्थ है और इसमें रस, भाव, नायिका भेद, षट्ऋतु और बारह मासा आदि अनेक प्रसंग आए हैं। रस विषय से परिचित होने के लिये इस ग्रन्थ का अध्ययन लेना ही बहुत है और किसी ग्रन्थ को पढ़ने की आवश्यकता नहीं है।

रसलीन ने अपने को दोहों की रचना तक सीमित रक्खा इसमें नाद-सौंदर्य का अवकाश बहुत ही कम मिलता है। चमत्कार और उक्ति वैचित्र्य की ओर विशेष ध्यान रक्खा है। नीचे इनकी रचना का उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है।

धरति न चौकी नग जरी याते डर में लाये ।
छाँह परे पर पुरुष की जनि तिय धर्म नशाय ।।

दूलह

ये कालीदास त्रिवेदी के पौत्र और उदय नाथ 'कवींद्र' के पुत्र थे। इनको शैशव अवस्था से ही कविता करने की अति रुचि थी। यह अपने पिताके सामने की कविता करने लगे थे। इनका रचना काल सं० १८०० से १८२५ तक मानते हैं। इनका रचित 'कंठाभरण' ग्रन्थ उपलब्ध हुआ है। इनके कुछ फुटकल कवित्त भी मिलते हैं। कंठाभरण अलंकार का बहुत प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं। इसके एक ही दोहे में लक्षण और उदाहरण दोनों ही प्राप्त होते हैं जिससे समझने में भी सरलता रहती है। इनका अलंकारों का विवेचन बड़ा स्पष्ट और सुबोध है। दूलह अपने कंठाभरण के ऊपर एक दोहा लिखते हैं और उसकी प्रशंसा कर के कहते हैं।

जो या कंठाभरण को, कंठ करै चित्त लाय ।
सभा मध्य शोभा लहै, अलंकृती ठहराय ॥

इनके 'कवि कुल कंठाभरण में ८५ पद्यों का समावेश किया गया है। हिन्दी साहित्य में इनका सर्व-श्रेष्ठ स्थान है। इनकी रचना बड़ी मधुर कल्पना, मार्मिकता और प्रौढ़ है यही इनकी सर्व प्रियता का कारण है इनकी उत्कृष्ट रचना को सुनकर सहृदय श्रोता आनन्द में विभोर हो जाते हैं। यह इतने सरस, सरल, भावुक कवि हैं कि दूसरे कवि ने इन पर प्रसन्न हो कर इनके विषय में कहा है कि 'और राही सकल कवि दूलह दूलह राय'

उदाहरण स्वरूप दूलह का दिया हुआ व्यतिरेक का लक्षण और उदाहरण देखिये ।

उपमेय उपमान तें विशेष व्यतिरेक ।
सो अधिक न्यून सम त्रिविध बखानो है ॥

कहे कवि दूलह बिहारे चकचौंधी लागी ।
कुन्दन सो रूप पै सुगन्ध सरसानों है ॥
सुन्दर सरस सुकुमार सुख कमल सों ।
रवि को उदोत्त होत ही में कुम्लाहनों है ॥
घनश्याम ही में बसै जगर-मगर होति ।
दामनि औ कामिनी कहेई भेद जानो है ॥

बेनी प्रवीन

ये लखनऊ के बाजपेई थे और ये नवल कृष्ण उर्फ ललन जी के आश्रय में रहते थे। जिनके कथनानुसार इन्होंने सं० १८७४ में 'नव रस तरंग' नामक ग्रंथ की रचना की। इस ग्रंथ से पहले यह 'शृंगार भूषण ग्रंथ की रचना कर चुके थे। ये कुछ समय बिठूर के राजा नाना राव के आश्रय में रहे थे उनके नाम पर इन्होने 'नाना राव प्रलय' नामक ग्रंथ की रचना की। बेनी बंदीजन ने इन्हें 'प्रवीन' की उपाधी दी थी। तभी से इनका नाम बेनी प्रवीन पड़ा है। इनके कोई पुत्र नहीं था। यह कुछ अस्वस्थ हो गये थे और जलवायु परिवर्तन के लिए सपत्नी आबू चले गये थे। वहीं पर इनका निधन हुआ।

इनका 'नव रस तरंग' ग्रंथ हृदय आकर्षित करने वाला है। विशेष-कर इसमें शृंगार और नायिका भेद का वर्णन है। रसों का वर्णन भी संक्षेप रूप से किया है। नायिका भेद के अन्तर्गत प्रेम क्रीड़ा की सुन्दर कल्पनाएं हैं भाषा इनकी परिमार्जित और चलती हुई है। ऋतुओं का वर्णन परम्परा के अनुसार उद्दीपन विभाव के रूप में है। उसमें तत्कालीन ऐश्वर्य वान मनुष्यों की भोग विलास की सामग्री का बड़ा अनूठा चित्र अंकित किया है। अभिसारिका आदि कुछ नायिकाओं के वर्णन बड़े सरस हैं। भाषा भाव में ये मतिराम और पद्माकर से टक्कर लेते हैं। इनके सवैया बड़े चुभते हुए हैं। इनकी रचना का उदाहरण देखिये।

भोर ही न्योति गई ती तुम्हैं
वह गोकुल की गांव की ग्वालिन गोरी।
अधिक राति लौं बेनी प्रवीन
कहा ढिग राखि करी बरजोरी॥
आवैं हंसी मोहि देखत लालन
भाल में दीन्हीं महावर घोरी।
एते बड़े ब्रज मंडल में न मिली
कहूँ माँगेहु रंचक रोरी॥

पद्माकर भट्ट

पद्माकर जी हिन्दी जगत के लब्ध-प्रतिष्ठ कवि है। इनकी गणना रीतिकाल के अन्तिम कवियों में की जाती है। इनका जन्म सं० १८१० में मोहनलाल भट्ट के यहां बाँदे में हुआ था। ये तैलङ्ग ब्राह्मण थे। पद्माकर जी का काव्य प्रतिभा अत्यन्त प्रखर थी। सोलह वर्ष की अवस्था में इन्होंने एक छंद की रचना की थी जिस पर प्रसन्न होकर सागर नरेश रघुनाथराव आया साहब ने इन्हें एक लक्ष मुद्रा पुरस्कार स्वरूप दी थी। सं० १८४६ में हिम्मत बहादुर के यहाँ रहकर इन्होंने 'हिम्मत बहादुर विरुदावली" नामक वीररस की पुस्तक लिखी। इस प्रकार इन्होंने जगद्विनोद, पद्ममाभरण, प्रबोध पचासा, गंगा-लहरी, राम-रसायन आदि ग्रन्थों की रचना की।

वास्तव में पद्माकर श्रृंगारी कवि थे। वीररस की रचना केवल लोभ के वशीभूत होकर की थी। अतः उसमें उनकी सफलता अनिवार्य थी। इसमें केवल लोभ की भावना ही निहित नहीं वरन मुक्तव्य काव्य की अपेक्षा प्रबन्ध काव्य की रचना में अधिक योग्यता अपेक्षित है। पद्माकर का काव्य-जीवन श्रृंगार प्रधान होने से उनकी रचनाओं में "केलिन में कूल में कछारन में कुँजन में, क्यारिन में कलिन कलीन किल कन्तु हैं।" इस सूची की प्रधानता मिलती है। 'विरदावली' में

पद्माकर ने अर्जुनसिंह के सहायक क्षत्रियों के छत्तीस कुलों का वर्णन अत्यन्त विस्तार से किया है।

भावों के अनुकूल इनकी भाषा भी मधुर या परुष हो गई है। अनुप्रास की छटा भी खूब दिखाई देती है। कहीं कहीं लाक्षणिक शब्दों का प्रयोग भी अनूठा है। भाषा की अनेक रूपता में ये तुलसीदास जी की बराबरी करते हैं। इनकी भाषा बुंदेली मिश्रित होने पर भी ब्रज-भाषा ही है। भाषा में ओजगुण की छटा भी लक्षित होती है। पद्माकर के विचार से वीररस में ओज का प्रदर्शन करने के लिये संयुक्ताक्षरों की महान आवश्यकता है। चाहे वहाँ वीर रसोयुक्त भावों का अभाव ही हो।

ग्वाल कवि

ये मथुरा के निवासी, जाति के ब्रह्म भट्ट थे। ये सेवा राम के सुपुत्र थे। ये ब्रज भाषा को अच्छी प्रकार से जानते थे। इनका कविता काल सं० १८७९ से १९१८ तक माना जाता है। इन पर रीति-काल का प्रभाव पूर्ण रूप से था। इनका प्रथम ग्रन्थ "यमुना लहरी" और अंतिम ग्रन्थ "भक्त भावन" था। इनके रचित रीति ग्रंथ चार उपलब्ध होते हैं। 'रसिकानन्द' (अलँकार) 'रस रंग' (सं० १९०४) कृष्ण जू को नख सिख (सं० १८८४) और दूषण दर्पण (सं० १८९१) इनके अतिरिक्त इनके दो ग्रंथ और प्राप्त हुये हैं। हम्मीर हठ (सं १८८१) और गोपी पच्चीसी। 'कवि हृदय विनोद' इनकी कविताओं का संग्रह है। इन्होंने सब ऋतुओं का वर्णन किया है। उन्हीं के साथ तत्कालीन विलास वैभव का भी अच्छा चित्रण है। देखियेः—

जेठ को न त्रास जाके पास ये विलास होय,
खस के भवास पे गुलाब उछ्स्यों करै।
बिही के मुरब्बे डब्बे चांदी के वरक भरै,
पेठे पाठ केबरे में बरफ परयो करै॥

ग्वाल कवि चन्दन चहल में कपूर चूर,
चन्दन अतर तर बसन खरयो करै ।
कंज मुखी कंज नैनी कंज के बिछौनन पै,
कंजन की पंखी कर कंज ते करयो करै ॥

इनकी कविता का जनसाधारण में अच्छा प्रचार है । इन्होंने ठेठ पूरवी, हिन्दी, गुजारती और पंजाबी भाषा में भी कुछ कवित्त सवैये लिखे हैं । फारसी, अरबी शब्दों का भी प्रयोग किया है । यह कुशल कवि थे । आगरा नागरी प्रचारिणी सभा की खोज में इनके कुछ और भी ग्रन्थ उपलब्ध हुए हैं ।

सबल सिंह चौहान

इनका निवास स्थान कोई चंदा गढ़ और कोई सबल गढ़ बतलाते हैं । अनुमान से कहा जाता है कि ये इटावे के समीप किसी गांव के जमींदार थे । इन्होंने सारे महाभारत की कथा दोहों और चौपाइयों में की है । इनका महाभारत सं० १७१८ और सं० १७८१ के बीच में समाप्त हुआ । इसके अतिरिक्त इन्होंने 'ऋतुसंहार' का भाषानुवाद 'रूपविलास' और एक पिंगल ग्रंथ भी लिखा परन्तु उसमें सफल न हो सके । इनकी भाषा में अनुपम छटा नहीं है । कथा को इन्होने सरल साधारण भाषा में लिखा है । यह वास्तव में अपने महाभारत के कारण ही प्रसिद्ध हैं । रचना का ढंग नीचे के उदाहरण से विदित होगा ।

अभिमनु धाई खड़्ग पर हारे । सम्मुख जेहि पायो तेही मारे ॥
भूरिश्रवा थान दस छांटे । कुंवर हाथ के खड़्ग ही काटे ॥
तीनि बान सारथि उर मारे । आठ बान ते अश्व सँहारे ॥
सारथि जूझ गिरे मैदाना । अभिमनु वीर चित्र माना ॥
यहि अन्तर सेना सब धाई । मारु मारु के मारन आई ॥

रथ को खैंचि कुँवर कर लीन्है। ताते मार भयानक कीन्है॥
अभिमनु कोपि खंभ पर हारै। इक इक घाव वीर सब मारै॥

अर्जुन सुत इमि मार किय महावीर परचण्ड।
रूप भयानक देखियत जिमि जम लीन्हें दण्ड॥

"वृन्द"

ये मेड़ता के निवासी और कृष्णगढ़ नरेश महाराज राजसिंह के गुरु थे। सं० १७६१ में कृष्णगढ़ नरेश के साथ औरंगजेब की सेना में ढाके तक गए थे। १७६१ में इनकी वृन्द सतसई रची गई। इसमें नीति सम्बन्धी सात सौ दोहे जिसके कारण सतसई ने अति ख्याति पाई। खोज करने पर 'शृङ्गार शिक्षा' और 'भाव पंचाशिका' नामक दो रस सम्बन्धी पुस्तकें उपलब्ध हुई हैं। इनकी प्रसिद्धि अधिकतर सूक्तिकार के रूप में ही है। लोकनीति सम्बन्धी दोहों के कारण ये बहुत प्रसिद्ध हैं। इसका एक उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है—

भले बुरे सब एक सम, जौं लौं बोलत नाहिं।
जान परत हैं काक पिक ऋतु वसन्त के माहिं॥

आलम

ये जाति के ब्राह्मण थे। पर शेख नाम की रंगरेजिन पर आसक्त हो गये और उसके प्रेमपाश में बंधकर अपने धर्म को छोड़ मुसलमान हो गये थे। आलम को शेख से जहान नामक पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई थी। यह औरंगजेब के पुत्र बहादुरशाह के आश्रित थे। एक बार बादशाह ने हँसी में शेख से पूछा कि 'आलम' की बीवी आप ही हैं तो शेख ने उत्तर दिया जहांपनाह ! जहान की माता मैं ही हूं। इसको सुनकर बादशाह मुस्कराया और उसे इनाम दिया। इनका कविता काल सं० १७४० से १७६० तक माना जाता है। इनका एक संग्रह 'आलम केलि' के नाम से प्रकाशित हुआ है। 'माधवानल' काम-

कन्दला नाम की इन्होंने एक प्रेम कहानी भी लिखी है। इनकी स्त्री बड़ी चतुर और वाक्पटु थी और कविता भी अच्छी किया करती थी। इन्होंने उर्दू भाषा में भी कवित्त लिखे हैं। इनकी कविता सच्चे हृदय की अनुभूति का परिचय देती है। इन्होंने अलंकार का बड़े सुन्दर-अनुपम और अनूठे ढंग से प्रयोग किया है जिससे चार चांद जैसी सुन्दर दिखाई देती है। यह शृंगारी कवि थे और इन्होंने शृंगार रस में ही रचना की है। प्रेम की पीर तो इनके एक एक वाक्य में भरी पड़ी है। भाषा परिमार्जित सुव्यवस्थित है। इनकी कविता का उदाहरण देखिये—

जा थल कीने विहार अनेकन,
ता थल कांकरी बैठि चुन्यो करैं।
जा रसना सों करी बहु बातन,
ता रसना सों चरित्र गुन्यों करैं॥
आलम जौन से कुंजन में करी केलि,
तहां अब सीस धुन्यो करैं।
नैनन में जे सदा रहते,
तिनकी अब कान कहानी सुन्यो करैं॥

गुरु गोविन्दसिंह

ये सिक्खों के महा पराक्रमी, बलशाली दसवें या अन्तिम गुरु थे। तेगबहादुर के पुत्र थे। इनका जन्म सं० १७२३ में और सत्य-लोकवास सं० १७६५ में हुआ। यह एक दक्ष सिपाही होते हुए भी साहित्य के बड़े प्रेमी थे। यद्यपि इनके रचे हुए भजन बहुत थोड़े से ही उपलब्ध होते हैं लेकिन यह काव्य के ज्ञाता और ग्रंथकार थे। जब इन्होंने देखा कि जनता; अधिकतर सिक्ख बिल्कुल अज्ञान है तो उन्होंने दुःख का अनुभव किया और बहुत से सिक्खों को व्याकरण, शास्त्र, साहित्य, दर्शन आदि का ज्ञान कराने के लिये उन्हें काशी

भेजा। ये बड़े वीर थे। हिन्दु आर्य संस्कृति पर लेशमात्र भी शत्रु का प्रहार नहीं सह सकते थे और एक भयंकर सिंह की भांति टूट पड़ते थे। 'तिलक' और 'जनेऊ' की रक्षा के लिये प्रत्येक समय तैयार रहते थे। सिक्खों के निर्गुणोपासना के भाव को धीरे २ उनसे विमुख होने का उपदेश दिया। रही सही कमी 'चंडी चरित' की रचना करके उस कमी को पूरा कर दिया और सगुणोपासना की ओर प्रेरित किया और इसमें वे पूर्णतया सफल भी हो पाये। इस ग्रन्थ की रचना बड़ी ओजपूर्ण है। ये सिक्ख होते हुए भी गूढ़ साहित्य ब्रजभाषा लिखने थे। सुनीति प्रकाश, सर्वलोहप्रकाश, प्रेम सुमार्ग, बुद्धि सागर आदि ग्रन्थो की रचना की है। चंडी चरित्र में दुर्गा सप्तशती की रचना बड़ी सुन्दर ढंग से की है। इनकी रचना का उदाहरण देखिए—

निर्गम निरूप हो, कि सुन्दर सरूप हो।
कि भूपन के भूप हो, कि दानी महादान हो?
प्रान के बचैया, छूत छूत के दिवैया।
रोग सोग के मिटैया, किधों मानी महामानी हो?
विद्या के विचार हो, कि अद्वैत अवतार हो।
कि सुद्धता की मूर्ति हो कि सिद्धता की शान हो?
जोबन के जाल हो, कि कालहू के गाल हो।
कि शत्रुन के साल हो कि मित्रन के प्रान हो?

गोरेलाल

गोरेलाल उपनाम लाल कवि का जन्म सं० १७१५ के लगभग बुन्देलखण्ड में हुआ। इनके एकमात्र आश्रयदाता छत्रसाल थे। उन्हीं की आज्ञा से उनका जीवन चरित्र दोहों और चौपाइयों में छत्रप्रकाश नाम से लिखा गया था। लाल कवि ने छत्र-प्रशस्ति छत्रछाया, छत्र-कीर्ति, छत्रछंद, छत्रसाल शतक, छत्रहज़ार, छत्रदण्ड, छत्रप्रकाश, राजविनोद तथा विष्णु विलास ही की रचनाएँ कीं। जिनमें छत्रप्रकाश

ही मुख्यतः लाल की कीर्तिस्तम्भ हैं। यह सर्वाधिक प्रौढ़ तथा काव्य गुणोपेत हैं।

ऐतिहासिक और साहित्यिक दोनों दृष्टियों से 'छत्रप्रकाश' एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसमें बुन्देलखण्ड की सूक्ष्मातिसूक्ष्म घटनाओं का वर्णन है। इसकी सभी घटनाएँ और संवत ऐतिहासिक खोज के अनुसार उचित हैं। गोरेलाल ऐतिहासिक घटनाओं के यथातथ्य रूप में वर्णन करने में सत्यनिष्ठ हैं कि शेरअफ़गन के विरुद्ध, जिस युद्ध में छत्रसाल को भागना पड़ा था उसका भी उल्लेख छत्रप्रकाश में किया है—

"कह्यौ सबनि समुझाइयौ, जिन भजिवे पछिताउ।
भजे कृष्ण अवतार जे, पूरन प्रगट प्रभाउ॥"

साहित्यिक पक्ष में इनकी सबसे बड़ी विशेषता है—वर्णन की विशदता और प्रसाद गुण की प्रधानता। वस्तुओं की सूची गिनाने की प्रथा तो सभी रीतिकालीन कवियों ने किया है।

कवि की भावाभिव्यंजन शैली में वीर रस का उद्रेक सफलता पूर्वक हुआ है। तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों को भी इन्होने सरस शैली से स्पष्ट रूप में चित्रित कर दिया है। रीतिकालीन कवियों में इस प्रकार की सरल स्पष्ट और प्रौढ़ शैली के उन्नायक केवल गोरेलाल ही थे। "न तो कहीं कल्पना की ऊँची उड़ान दिखाई देती है और न ऊहा की जटिलता।" गोरेलाल की भाषा शैली में केवल एक बात खटकने वाली है कि उन्होंने "गढ़ कुण्डार" जैसे शब्दों को 'कुठार' रूप रख कर विकृत कर दिया है। मुसलमानी नामों के साथ भी ऐसा ही व्यवहार किया है।

घनानन्द

घनानन्द वा आविर्भाव सं० १७४६ में नादिरशाही हुआ। ये जाति

के कायस्थ और बादशाह मुहम्मदशाह के मीर मुंशी थे। इनके द्वारा रचित ग्रन्थ निम्नलिखित हैं:—

सुजान-सागर, विरह-लीला, कोक-सार, रसकेलिवल्लि, कृपाकाण्ड। इनके जैसी विशुद्ध सरस प्रौढ और माधुर्य्य पूर्ण ब्रजभाषा लिखने में कोई कवि समर्थ नहीं हुआ। शृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों का बहुत सुन्दर और हृदयस्पर्शी प्रतिपादन इनकी कविता में हुआ है। घनानन्द अपनी प्रेमिका सुजान के उत्कट अनुराग में लिप्त थे। विरक्त होने पर भी अपनी पूर्व प्रेयसी सुजान को अपनी कविताओं में समान रूप से अलंकृत किया हैं। काव्य-क्षेत्र के शृंगारिक पक्ष में सुजान को नायक के लिये और भक्ति भाव में कृष्ण भगवान् के लिये प्रयुक्त माना है। इनकी अधिकांश कविता शृंगार रस से ओतप्रोत है। लौकिक प्रेम की दीक्षा पाकर पीछे भगवत प्रेम में लीन हुए। शृंगार में भी वियोग की अन्तर्दशाओं की ओर इनकी प्रवृत्ति अधिक है। कवि की व्यंजना-पद्धति बड़ी ही मार्मिक है। उन्होने ऐसे पथों से भावना को ले जाने का प्रयत्न किया है जिस पर पुराने कवि गए ही नहीं और नए कवि भी जाने का साहस कम करते हैं—

मो से अनपहचान को पहचाने हरि कौन।
कृपा-कान मधि-नैन ज्यौं त्यौं पुकार मधि-मौन॥

इनकी "पुकार मौन में है" तो उधर "नेत्रों में कृपा के कान" लगे हुये हैं। इन्होंने भी अलंकृत शैली का व्यवहार किया है, परन्तु पाण्डित्य प्रदर्शन के लिये नहीं, केवल हृदय की स्थिति का सच्चा आभास देने के लिये। रमणीयता की विविध स्थितियों से अभिज्ञ थे। प्रेम की विषमता के निरुपण के लिये विरोधाभास का आश्रय लिया है:—

देखियें दसा असाध अँखियाँ निपेटिनि की,
भसमी बिथा पै नित लंघन करति है।

'भसमी व्यथा' का अर्थ भस्मक रोग है। जिसमें जो खाया जाता है भस्म हो जाता है। आँखे स्वभाव से ही निपेटि (भुक्खड़) है उस पर भस्मक रोग हो गया है। जब अधिक मात्रा खाते रहने पर भी पेट नहीं भरता, तब भी इन्हें लंघन करना पड़ रहा है। इस प्रकार भसमी व्यथा में श्लेष के कारण चमत्कार और सौन्दर्य उत्पन्न हो गया है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि घनानन्दजी ब्रजभाषा के तो पूरे जानकार थे ही, भाषा की गति को भी भाव के अनुकूल मोड़ सकते थे। ये 'ब्रजभाषा प्रवीन' और 'भाषा प्रवीन' दोनों ही थे।

जोधराज

ये गौड़ ब्राह्मण बालकृष्ण के पुत्र थे। सं० १८७५ में इन्होंने नींवगढ़ के राजा चन्द्रभान चौहान के अनुरोध से 'हम्मीररासो' नाम का एक बड़ा प्रबन्ध काव्य वीरगाथा काल की छप्पय पद्धति पर लिखा। हम्मीर देव सम्राट पृथ्वीराज के वशंज थे। उन्होंने दिल्ली के सुलतान अल्लाउद्दीन को कई बार हराया था और अंत में उसी के साथ लड़ते हुए मारे गए थे। हम्मीर रासो की रचना बड़ी ओजस्वी है घटनाओं का वर्णन ठीक ठीक और विस्तार से हुआ है। रचना सरस तथा प्रभावोत्पादक है। विशेषकर हम्मीर की उक्तियाँ अधिक आकर्षक है:—

पच्छिम सूरज उगावें, उलटि गंग बहनीर।
कहो दूत पतिसाहसों, हठ न तजै हम्मीर॥

हम्मीर के संबन्ध में "तिरिया तेल हम्मीर हठ चढ़ै न दूजी बार" वाला दोहा अत्यन्त प्रसिद्ध है। उसी प्रकार की कुछ सबल तथा प्रभावोत्पादक उक्तियां भी इस ग्रंथ में अलंकृत हैं। दोहा छंद में भी इसी प्रकार का सफल रस परिपाक हुआ है।

ग्रन्थ के अध्ययन से ज्ञात होता है कि कवि वीर रस के अतिरिक्त अन्य रसों में भी समान रूप से सफल हुआ है। आरम्भ में पद्मज्ञ ऋषि

की तपस्या भंग होने की कथा के बहाने षड्ऋतु तथा प्रसङ्ग वश प्रकृति चित्रण भी किया है। जो वीरगाथा काल के अन्य कवियों की अपेक्षा सुन्दर बन पड़ा है। शृंगार रस में जोधराज बिना किसी प्रयत्न के ही सफल हो गये हैं।

काव्य का स्वरूप देने के लिये कवि ने कुछ घटनाओं की कल्पना भी कर ली है। इस सम्बन्ध में एक मुख्य घटना महीमाशाह मंगोल तथा अलाउद्दीन की बेगम रूपविचित्रा के परस्पर प्रेम-प्रसङ्ग की है। इसके अतिरिक्त अन्य भी कई घटनाएं मिलती हैं। इन सब को प्रबन्ध-गत दोष माना गया है। जोधराज की एक विशेषता यह है कि इन्होंने परम्परा की लकीर पीटकर सूची नहीं गिनाई और न ही तड़ातड़ भड़ाभड़ के चक्कर में पड़े हैं।

इनकी भाषा एक ओर व्रजभाषा और दूसरी ओर साधारण बोल चाल के क्रिया पद और शब्द पर्याप्त मात्रा में है। भाषा सर्वत्र भावानुकूल चलती है और शृंगार वर्णन में कोमल कान्त पदावली का उपयोग सुन्दरता के साथ किया है।

सूदन

सूदन कवि मथुरा निवासी माथुर चौबे थे। जिस प्रकार भूषण को शिवाजी और गोरेलाल को छत्रसाल मिले उसी प्रकार सूदन को भी एक सच्चा वीर चरित्र नायक मिला। कवि ने राजा सुजानसिंह उपनाम सूरज मल (भरतपुर) की सं० १८१० तक की लड़ाइयों का वर्णन सुजान चरित नामक प्रबन्ध काव्य लिखकर किया है। वर्णन-विस्तार तथा रचना शैली पर विचार करने से यह अनुमान हो जाता है कि कवि ने अपनी आंखों देखी घटनाओं का वर्णन किया है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि इनका कविता काल सं० १८०२ से सं० १८१० वि० तक था।

सुजान चरित में कुल ७ जंग और ३१ अंक हैं। एक एक जंग में सुजानसिंह उपनाम सूरजमल के एक-एक युद्ध का विस्तृत वर्णन है।

साहित्यिक दृष्टि से देखा जाय तो ज्ञात होता है कि अनेक प्रसङ्गों में कवि अपनी बहुविज्ञता-प्रदर्शित करने की अनधिकार चेष्टा करता है। जिसका फल यह होता है कि पाठकों को अरुचि हो जाती है, जो प्रबन्ध काव्य के लिये सब से बड़ा दोष है। कहीं कहीं कई पंक्तियों तक घोड़ी की सूची मिलती है तो कहीं वस्त्रों तथा लूटी हुई सामग्री की। इस प्रकार कवि ने सूची गिनाने की सीमा तोड़ दी है। सात जंगों के काव्य में छः बार लम्बी लम्बी सूचियों की गणना गिनाई गई है।

फिर भी सूदन ने युद्धों इत्यादि का वर्णन सुन्दर किया है। यह निर्विवाद रूप से माननीय है। मिश्रबन्धु इन्हें वीररस का 'बढ़िया' कवि मानते हैं और इनकी गणना 'दास' की श्रेणी में करते हैं। इकतीस अंकों के इस काव्य में लगभग निनानवे प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया गया है। छंदों की इस विविधता के कारण नीरसता की मात्रा बहुत कम हो गई है। छंदों की विभिन्नता के अतिरिक्त विभिन्न भाषाओं का प्रयोग भी किया गया है। नाना देश की स्त्रियों का नाना प्रकार की भाषाओं में विलाप बड़ा मनोरंजक हो गया है। कहीं कहीं अलंकारों के प्रयोग में कृत्रिमता तथा शिथिलता आ गई है। अनुप्रास का लोभ तो कवि को इतना है कि सूची गणना में नामों को भी वह अनुप्रास के हिसाब से सजाता है:—

सोमनाथ सूरज सनेही सेख श्यामलाल,
साहिब सुमेर सियदास सिवराम है।

कवि की भाषा साहित्यिक ब्रज-भाषा है। भाषा और भाव प्राञ्जली और सुसज्जित है। भाषा में अन्य भाषाओं का थोड़ा बहुत पुट भी मिलता है।

बोधा

ये राजापुर के निवासी सरयू पारीण ब्राह्मण थे। इनका जन्म सं० १८०४ के निकट माना जाता है। इनका पूरा नाम बुद्धिसेन था भाषा काव्य के अतिरिक्त इन्हें संस्कृत और फारसी का अच्छा ज्ञान था। इनका रचना काल सं० १८३० से १८६० तक माना जाता है। यह शैशवावस्था पन्ना चले गये थे और वहीं रहा करते थे। पन्नानरेश इनके आश्रय दाता थे उन्हीं के दरबार में रहा करते थे। ये बड़े रसिक जीव थे। पन्ना दरबार की सुभान नामक वेश्या पर आसक्त हो गये। राजा किसी बात पर क्रोधित हो गया और छः महीने का देश निर्वासन दंड दे दिया। इन्होंने सुभान के विरह वियोग में इन्होंने 'विरह वारीश' की रचना की। अवधि समाप्त हो जाने पर यह आए इन्होंने राजा को विरह वारीश का एक पद सुनाया जिसे राजा सुनकर अति प्रसन्न हुआ और पुरस्कार देने के लिये पूछा बोल क्या चाहिये। इन्होंने कहा 'सुभान अल्लाह' राजा ने प्रसन्न चित्त होकर सुभान को इन्हें दे दिया और इनकी इच्छा पूर्ण हुई। 'विरह वारीश' और 'इश्क नाम' नामक दो ग्रन्थ उपलब्ध हैं। ये रसोन्मत्त कवि थे। अपने समय के प्रसिद्ध कवि थे। प्रेम मार्ग के निरूपण में बहुत से पद कहे हैं। 'प्रेम की पीर' की व्यंजना भी बड़ी मर्म स्पर्शिनी युक्ति से की है। यत्र तत्र दोष आ जाने पर भी भाषा चलती हुई और मुहावरे दार है। इनमें फक्कड़ पन की कमी नहीं थी परन्तु कुछ भी हो ये भावुक और रसज्ञ कवि थे। इनकी रचना का एक उदाहरण नीचे प्रस्तुत किया जाता है।

कबहूँ मिलिबो, कबहुँ मिलिबो
यह धीरज ही में धरैबो करै।

उरतें कढ़ि आवे, गरे ते फिरै
मन ही मन में सिरैवो करै॥

कवि बोधा न चांद सरी कबहूँ
नितही हरवा सो हिरैवो करै ।
सहते ही बने कहते ने बनै
मन ही मन पीर पिरैबो करै ॥

सम्मन

ये मल्लवाँ जिला हरदोई के रहने वाले और जाति के ब्राह्मण थे। ये सं० १८३४ में उत्पन्न हुए थे। इनके नीति के दोहे गिरधर की कुंडलियों की भांति लोक प्रिय हैं। इन्होंने सं० १८७९ में 'पिंगल काव्य भूषण' नामक एक रीति ग्रन्थ की रचना की। इनकी रचना काल सं० १८६० से १८८० तक माना जाता है। इनकी रचना का नमूना देखिए:—

निकट रहे आदर घटै दूर रहे दुख होय ।
सम्मन या संसार में प्रीति करो जनि कोय ॥

सम्मन चाहो सुख देह को तो छांडो यह चारि ।
चोरी चुगली जामिनी और पराई नारि ॥

बाबा दीन दयाल गिरि

ये जाति के गुसांई थे। इनका जन्म सं० १८५९ वि० में काशी नगर में हुआ था। जब ये ५ या ६ वर्ष के थे तभी इनके माता पिता ने इनका भार महंत कुशगिरि को सौंप चल बसे। बाबा जी हिन्दी और संस्कृत के प्राकाण्ड विद्वान् थे। बाबू गोपाल चन्द्र से इनका बड़ा परस्पर स्नेह था। इनकी अन्योक्ति 'कलपद्रुम' हिन्दी साहित्य में अनूठी वस्तु है। इनकी निम्नलिखित पुस्तकें और उपलब्ध हुई हैं। अनुराग बाग (सं० १८८८) वैराग्य दिनेश (सं० १९०६) विश्वनाथ-नवरत्न और दृष्टान्त तरंगिणी (सं० १८७९) में अपनी अन्योक्तियों के लिये बहुत प्रसिद्ध हैं। इनकी अन्योक्तियां रहस्यात्मक और मर्म-

स्पर्शिनी हैं। इन्होंने लौकिक और अध्यात्म पक्ष दोनों पर अन्योक्तियां कही हैं। रचना की विविध प्रणालियों पर इनका पूर्ण अधिकार था। इनकी कविता का उदाहरण देखिये।

चरन-कमल राजै, मंजु मंजीर बाजैं।
गमन लखि लजावैं हँसऊ नाहिं पावैं॥
सुखद कदम-छाहीं क्रीडते कुंज माहिं।
लखि लखि हरि शोभा चित्त का को न लोभा॥

पजनेस

ये पन्ना के निवासी थे। इनका कविता काल सं० १६०० निकट माना जाता है। इनकी स्फुट कविताओं का संग्रह 'पजनेस प्रकाश' के नाम से उपलब्ध है। जिसमें १२७ कवित्त सवैया हैं। यह फारसी से भी अनभिज्ञ नहीं थे। इनकी रचना शृंगार रस से ओत प्रोत है। उसमें कठोर वर्णों का प्रयोग किया गया है। शब्द चमत्कार की ओर यह विशेष ध्यान देते थे। जिससे कहीं २ भद्दापन आ गया है। इसका उदाहरण देखिये—

छहरै छबीली छटा छुटि छिति मंडल पै,
उमंग उजेरो महा ओज उजबक सी।
कवि पजनेस कंज-मंजुल-मुखी के गात
उपमाधि काति कल कुंदन तबक सी॥
फैली दीप दीप दीप-दीपति दीपति जाकी
दीप मालिका की रही दीपति दबक सारी।
परत न ताब लखि मुख महताब जब
निकसी सिताब आफ ताब की भभक सी॥

गिरधरदास

ये भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के पिता थे। ये ब्रज भाषा के निष्णात कवि थे। इनका पूरा नाम बाबू गोपालचन्द्र था आपका उपनाम

गिरधरदास था। इनके रचे हुये ग्रंथों की संख्या लगभग ४० है। इनका जन्म संवत् १८९० को माना जाता है। इनका संबंध बड़े अमीर घराने से था। अभी ये ग्यारह वर्ष के थे कि इनके पिता की छत्र-छाया उठ गई थी। यह बड़े परिश्रमी, साहसी और चतुर थे। अपने परिश्रम के बल से ही संस्कृत और हिन्दी पर अधिकार कर लिया था। इन्होंने पुस्तकों का अनमोल संग्रह एकत्रित करके एक विशाल पुस्तकालय का उद्‌घाटन किया जिसका नाम 'सरस्वती भवन' रखा जिसका मूल्य स्वर्गीय डा० राजेन्द्रलाल मित्र एक लाख तक दिलवाते रहे थे। इनका निधन संवत् १९१७ में हुआ। जरासंध वध महाकाव्य, भारती भूषण (अलंकार) भाषा व्याकरण (पिंगल सम्बन्धी) रस रत्नाकर, मत्स्य कथा मृत आदि अनेक ग्रंथों की रचना की है।

इनकी रचनाएं दो प्रकार की हैं। (१) गर्ग संहिता आदि भक्ति मार्ग की कथाएं तो सरल हैं पर जो काव्य कौशल की दृष्टि से रचनाएं की हैं उनमें यमक और अनुप्रास आदि अलंकारो की भरमार है। जिससे भाषा कहीं २ से दुरूह हो गई है।

इनका झुकाव चमत्कार की ओर अधिक था। २७ वर्ष की अवस्था में ४० ग्रन्थों की रचना करना आश्चर्य जनक बात है और साहित्य को अनुपम देन है। इनकी रचना के कुछ नमूने नीचे दिये जाते हैं।

यह दोहा भारती भूषण से लिया गया है। असंगति अलंकार है।

सिंधु-जनि गर हर पियो भरे असुर समुदाय।
नैन बान बैनक लग्यो, भयो करे जे घाय॥

चौथा अध्याय
आधुनिक काल

रीति काल के पश्चात् हिन्दी साहित्य में अनेक दृष्टियों से नवीन परिवर्तन उपस्थित हुए। काव्य-क्षेत्र में रीतिकालीन शृङ्गारी परम्परा का अवसान होकर नव-चेतना के साथ जन जागरण का नवीन युग प्रारम्भ होता है इसी कारण इस युग को आधुनिक काल कहते हैं। इस युग में पद्य के साथ साथ गद्य में भी साहित्य सृजन प्रारम्भ हुआ और गद्य का बाहुल्य हो गया। पद्य की अपेक्षा इस युग के साहित्यिक गद्य में अधिक लिखने लगे और गद्य के लिए ब्रजभाषा के स्थान पर 'खड़ी बोली' के नाम से नवीन भाषा का प्रचार हो गया। कविता के क्षेत्र में इस युग के प्रारम्भ में ब्रजभाषा ही चलती रही किन्तु युग का प्रभाव उस कविता पर विषय की दृष्टि से गहरा पड़ा और इस युग के कवियों ने रीतिकालीन शृङ्गार भावना का सर्वथा वहिष्कार कर देश प्रेम, देशभक्ति, समाज-सुधार, विद्या-प्रचार, आदि विषयों को अपनी कविता में स्थान देना प्रारम्भ किया अतः हम इस युग को आधुनिक या वर्तमान युग कहते हैं। इस युग में कविता की अपेक्षा गद्य का विकास और प्रसार अधिक हुआ अतः हम गद्य का इतिहास संक्षेप में लिखकर फिर पद्य का इतिहास प्रस्तुत करेंगे।

हिन्दी गद्य का इतिवृत्त

भावाभिव्यक्ति के दो साहित्यिक रूप हैं, गद्य और पद्य। साहित्य के विकास क्रम में पद्य का स्थान पहले है। पद्य-साहित्य छन्द बद्ध एवं गीतात्मक होने के कारण अपेक्षाकृत शीघ्र प्रचार को प्राप्त होता है और उसे कंठस्थ करने में भी सरलता होती है। जिस युग में

मुद्रणकला का विकास नहीं हुआ था, उस युग में पद्यात्मक रचनाओं का बाहुल्य होना स्वाभाविक ही है। किन्तु ज्यों ज्यों पुस्तक कागज, प्रेस आदि साधनों का प्रचार होता गया त्यों त्यों गद्य-साहित्य भी बढ़ता गया। हिन्दी साहित्य के इतिहास पर दृष्टिपात करने से यह भलीभांति विदित हो जाता है कि हिन्दी साहित्य का प्रारम्भ जिन परिस्थितियों में हुआ वह राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक दृष्टि से देश का संक्रान्ति काल था। समस्त देश अशान्त और विक्षुब्ध था। फलतः देश में मनोरंजन और मनोरंजन-विधायक उपन्यास, नाटक, कहानी आदि साहित्यांगों का विकास भी उस काल में नहीं हुआ। केवल कविता द्वारा ही जनता की भावनायें अभिव्यक्त होती रहीं और पद्य साहित्य ही पुष्ट होता रहा।

हिन्दी गद्य का यथार्थ रूप में विकास तो आधुनिक युग में ही हुआ है। हिन्दी साहित्य के प्रारम्भिक तीन कालों में (वीरगाथाकाल, भक्तिकाल, और रीतिकाल) पद्य-रचना ही होती रही, गद्य लिखा भी गया तो केवल नाम मात्र को ही। प्राचीन काल में ब्रजभाषा और अवधी भाषा ही साहित्य निर्माण की भाषायें थी। खड़ी बोली तो केवल बोल-चाल की सामान्य भाषा थी जिसमें साहित्य-निर्माण का कार्य नहीं हुआ था। साथ ही जनता की रुचि भी कल्पना, भावुकता, और काव्य रचना की ओर अधिक थी। विचार विमर्श और तथ्यातथ्य निरूपण की ओर ध्यान न होने के कारण गद्य शैली का विकास उस युग में सम्भव न हो सका। जो थोड़ा बहुत गद्य हमें उस काल में उपलब्ध होता है वह ब्रज भाषा में ही है। ब्रजभाषा का सबसे पुराना गद्य चौदहवीं शताब्दी का है जिसकी प्रामाणिकता में विद्वानों को सन्देह है। महाराज पृथ्वीराज और चित्तौड़ के रावल समरसिंह के दान पत्रों, शिलालेखों और सनदों पर भी गद्य के कुछ नमूने मिलते हैं किन्तु उसमें पुष्ट गद्य शैली का कोई रूप नहीं है।

डिंगल मिश्रित ब्रजभाषा के कुछ ग्रंथ गोरखपंथी सम्प्रदाय के प्राप्त होते हैं जिनका समय चौदहवीं शताब्दी है किन्तु उस गद्य को भी हम गद्य-शैली का सुस्थिर रूप नहीं कह सकते। गद्य का सर्वप्रथम रूप सं० १४०७ में गुरु गोरखनाथ की हठयोग एवं ब्रह्मज्ञान संबंधी ग्रन्थों में है। गोरखनाथ का लिखा हुआ 'सिष्ट प्रमाण' ग्रन्थ गद्य का प्रारम्भिक रूप है अतः पन्द्रहवीं शताब्दी को हम हिन्दी गद्य का प्रारम्भ-काल मान सकते हैं।

इसके उपरान्त सोलहवीं शताब्दी में पुष्टिमार्ग के प्रवर्त्तक महाप्रभु, बल्लभाचार्य जी के सुपुत्र गोस्वामी विट्ठलनाथ रचित 'श्रृंगार रस मंडन' नामक ग्रंथ ब्रजभाषा गद्य का सबसे पहला उदाहरण है। इस ग्रंथ मे यद्यपि परमार्जित भाषा का रूप ग्रहण नहीं हुआ है। फिर भी ब्रजभाषा गद्य-शैली का प्रारम्भिक रूप इसमें है। सत्रहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में विट्ठलनाथ जी के पुत्र गोस्वामी गोकुलनाथ ने "चौरासी वैष्णवों की वार्ता" "दो सो बावन वैष्णवों की वार्ता" और "बन यात्रा" नामक तीन ग्रंथ बोल चाल की सरल ब्रज भाषा में लिखे। ये वार्ता ग्रन्थ पाण्डित्य प्रदर्शन के लिए नहीं लिखे गए थे। इसलिये भाषा में कृत्रिमता और दुरूहता का अभाव है। कहीं कहीं प्रचलित शब्दों के साथ फारसी के शब्दों को भी इस गद्य में स्थान मिला है। स्थिरता और भाव व्यंजना की दृष्टि से यह गद्य अपेक्षाकृत अच्छा है। एक उदाहरण से यह स्पष्ट होगा—

"सो श्री नन्द गाम में रहतो सो ब्राह्मणखंडन शास्त्र पढ़्यो हतो। सो जितने पृथिवी पर मत हैं सबको खण्डन करतो, ऐसो वाको नेम हतो।"

नाभादास जी ने संवत् १६६० के आस पास 'अष्टयाम' नामक पुस्तक ब्रजभाषा गद्य में लिखी। संवत् १६८० के लगभग बैकुण्ठ

मणि ने 'अगहन माहात्म्य' और 'वैशाख माहात्म्य' लिखा। ब्रजभाषा में एक 'नासिकेतोपाख्यान' भी मिलता है जिसके कर्त्ता का नाम ज्ञात नहीं। सूरतिमिश्र ने संस्कृत कथा के आधार पर बैतालपचीसी भी लिखी थी।

इसी प्रकार की ब्रजभाषा गद्य की कुछ पुस्तकें इधर उधर पाई जाती हैं जिनसे गद्य के किसी क्रमिक विकास का पता नहीं चलता। वैष्णव वार्ताओं में उसका जैसा परिष्कृत और सुव्यवस्थित रूप दिखाई पड़ा वैसा आगे चलकर नहीं मिलता। काव्य ग्रन्थों की टीकाओं में जो थोड़ा बहुत गद्य देखने में आता है वह बहुत ही अव्यवस्थित तथा अशक्त है भाषा ऐसी अनगढ़ और लद्धड़ है कि मूल का अर्थ भले ही समझ में आ जाय पर टीका के चक्र-व्यूह से निकलना दुर्घट ही समझिये। सारांश यह कि जिस समय गद्य के लिये खड़ी बोली उठ खड़ी हुई उस समय तक गद्य का विकास नहीं हुआ था।

खड़ी बोली

साहित्यिक रचना में खड़ी बोली का पता कितने प्राचीन काल तक लगता है यह प्रश्न बड़ी उलझन का है। फिर भी भोज के समय से लेकर हम्मीर देव के समय तक अपभ्रंश काव्यों की परम्परा चलती रही उसके भीतर खड़ी बोली के प्राचीन रूप की झलक अनेक पद्यों में मिलती है।

इसके उपरान्त भक्तिकाल के आरम्भ में 'खुसरो' और 'कबीर' की रचनाओं में कई भाषाओं की 'खिचड़ी' परिलक्षित होती है—इस खिचड़ी में ही एक भाग 'खड़ी बोली' का भी है। अकबर के समय में 'गंग कवि' ने 'चन्द छन्द बरनन की महिमा' नामक एक गद्य पुस्तक खड़ी बोली में लिखी थी जिससे यह स्पष्ट है कि अकबर से जहाँगीर के समय तक खड़ी बोली भिन्न भिन्न प्रदेशों में शिष्ट समाज के व्यवहार की भाषा हो चली थी जो कि उर्दू से नितान्त भिन्न है।

अतः कुछ लोगों का यह समझना कि मुसलमानों के द्वारा ही खड़ी बोली अस्तित्व में आई जिससे आधुनिक हिन्दी गद्य की भाषा अरबी फ़ारसी शब्दों को निकाल कर गढ ली गई; शुद्ध भ्रम या अज्ञान है।

संवत् १७६८ में रामप्रसाद निरंजनी ने शृंखलाबद्ध तथा व्यवस्थित भाषा में 'भाषा योग वाशिष्ट' लिखा। १८१८ में बसवा निवासी दौलतराम ने रविषेणाचार्य्य कृत जैन पद्म पुरान का भाषानुवाद किया। प्रस्तुत रचना इस बात का पूरा पता देती है कि फ़ारसी उर्दू से कोई सम्पर्क न रखने वाली अधिकांश शिष्ट जनता के बीच खड़ी बोली किस स्वाभाविक रूप में प्रचलित थी। खड़ी बोली का रूप जब मुसलमानों ने बहुत कुछ बदल दिया और वे उसमें विदेशी भावों का भंडार भरने लगे तब हिन्दी के कवियों की दृष्टि में वह मुसलमानों की ख़ास भाषा सी जचने लगी। इसी कारण भूषण, सूदन आदि कवियों ने मुसलमानी दरबारों के प्रसंग में या मुसलमान पात्रों के भाषण में ही इस 'बोली' का व्यवहार किया। धीरे धीरे यही खड़ी बोली व्यवहार की सामान्य शिष्ट भाषा हो गई—और अंग्रेजी राज्य के प्रस्थापित होने तक सारे उत्तरी भारत में इसका प्रचार हो गया। जिस प्रकार उसके उर्दू कहलाने वाले, कृत्रिम रूप का व्यवहार मौलवी मुंशी आदि कुछ लोग करते थे, उसी प्रकार उसके असली स्वाभाविक रूप का व्यवहार हिन्दू पंडित और महाजन आदि शिष्ट भाषण में करते थे। तात्पर्य यह कि अंग्रेजों को शिष्ट समाज के बीच दो ढंग भाषाएँ चलती मिलीं:—(१)खड़ी बोली का सामान्य देशी रूप (२) दरबारी रूप जो उर्दू कहलाता था।

अंग्रेज यद्यपि विदेशी थे पर उन्हें यह स्पष्ट विदित था कि जिसे उर्दू कहते हैं वह न तो देश की स्वाभाविक भाषा है न उसका साहित्य देश का साहित्य। अतः देश की भाषा सीखने के लिए

उन्होंने दोनों प्रकार के गद्य की पुस्तकों की खोज की; किन्तु उस समय गद्य की पुस्तकें वास्तव में न उर्दू में थीं न हिन्दी में ही। संवत् १८६० में फोर्ट विलियम कालेज (कलकत्ता) के हिन्दी उर्दू अध्यापक जान गिलक्राइस्ट ने देशी भाषा की गद्य पुस्तकें तैयार कराने की व्यवस्था की। इस समय खड़ी बोली गद्य की श्री वृद्धि में चार महानुभावों का सहयोग पूर्ण रूप से हुआ—१. मुंशी सदासुखलाल—२. सैयद इंशा अल्ला खाँ, ३. श्री लल्लूलाल—४ सदल मिश्र।

१—मुंशी सदा सुखलाल (१८०३—८१) ने विष्णु पुराण से उपदेशात्मक प्रसंग लेकर एक पुस्तक लिखी जो पूरी नहीं मिलती अपने समय की बोलचाल की शिष्ट भाषा का व्यवहार करते हुए उन्होने स्थान स्थान पर शुद्ध तत्सम शब्दो का प्रयोग करके उसके भावी साहित्यिक रूप का पूर्ण आभास दिया। निजी इच्छा से उन्होंने श्री मद्भागवत् का 'सुख सागर' नाम से अनुवाद भी किया। 'स्वभाव करके' बेहुत चूक जाघा हुई' आदि बोलचाल का रूप इनकी रचनाओं में स्पष्ट परिलक्षित होता है।

इंशा अल्लाखाँ ने 'उदयभान चरित या रानी केतकी की कहानी' संवत् १८५५—१८६० के बीच लिखी। इंशा का उद्देश्य ठेठ हिन्दी लिखने का था "जिसमें हिंदवी छुट और किसी बोली का पुट न मिले तब जाके मेरा जी फूल की कली के रूप में खिले। × × × हिंदवी पन भी न निकले और भाखापन भी न हो।" आरंभ काल के चारों लेखको में इंशा की भाषा सबसे चटकीली, मुहावरेदार और चलती है। 'भाखापन' और 'मुअल्लापन' दूर रखने का भरसक प्रयत्न करने पर भी फारसी के ढंग का वाक्य विन्यास, विशेषतः बड़े वाक्यों में आ ही गया। जैसे—"सिर झुका कर नाक रगड़ता हूं अपने बनाने वाले के सामने जिसने हम सबको बनाया।" अथवा "यह चिट्ठी जो पीकभरी

कुँवर तक जा पहुँची।"

इस प्रकार मुंशी-सदासुखलाल और इंशा अल्लाखाँ, दोनों लेखकों के प्रयत्न से दो वर्गों के पढ़ने की कुछ सामग्री चलती भाषा में प्राप्त हुई। धार्मिक समाज को मुं० सदासुखलाल से धर्म सम्बन्धी विचार मिले और जन साधारण को इंशा से मनो विनोद के लिए किस्सा कहानी। जैसे दोनों के विषय हैं वैसे ही इनकी भाषा भी है—एक में भाषा शान्तरूप से प्रवाहित होती हुई मिलती है तो दूसरे में उछलती, कूदती किलकती हुई हैं। 'बात होय' 'को' 'हेतु' 'आवता' 'जावता' आदि पद एवं क्रियापद मुंशी सदासुखलाल में पंडिताऊपन के प्रमाण हैं—उद्भावना शक्ति के विचार से खाँ साहब की कृति का विषय एक नवीन आयोजन था—कथा का निर्वाह संगठित और क्रम-बद्ध है। भाषा चमत्कारपूर्ण और आकर्षक।

इसके अतिरिक्त फोर्ट विलियम कालेज की अध्यक्षता में लल्लूलाल ने 'प्रेमसागर' और सदलमिश्र ने 'नासिकेतोपाख्यान' लिखा। लल्लूलाल (१८२०—१८८२) के 'प्रेमसागर' में 'भगवत् दशम स्कंध' की कथा वर्णन की गई है। इंशा के समान इन्होंने केवल ठेठ हिन्दी लिखने का संकल्प तो नहीं किया पर विदेशी शब्द न आने देने की प्रतिज्ञा अवश्य लक्षित होती है। इनकी भाषा कृष्णोपासक भक्तों की सी ब्रज रंजित खड़ी बोली है। 'सम्मुखजाय' 'सिरनाय' 'सोई'—'भई' आदि शब्दों का प्रयोग बराबर मिलता है। विरामों पर तुकबंदी के अतिरिक्त वर्णनों में वाक्य भी बड़े बड़े आए हैं और अनुप्रास भी यत्र तत्र हैं—मुहावरों का प्रयोग कम है।

लल्लूलाल के साथी सदलमिश्र थे उनकी भाषा व्यावहारिक है। उसमें ब्रजभाषा का अनुकरण है और न तुकांत के प्रति विशेष आग्रह। अरबी फारसी शब्दों का कहीं कहीं प्रयोग करने से मुहावरों का सुन्दर उपयोग कर सके हैं। वाक्यों के संगठन में इंशा वाली उलट

फेर की प्रवृत्ति इनमें भी मिलती है—'जल विहार हैं करते' उत्तम गति को हैं पहुँचते' आदि में वही धुन दिखाई देती है। ब्रजभाषा और पूर्वी बोली के शब्दों का भी सतत प्रयोग हुआ है।

गद्य की एक साथ परम्परा चलाने वाले उपर्युक्त चार लेखकों में से आधुनिक हिन्दी का पूरा अभास मुंशी सदासुखलाल और सदलमिश्र की भाषा में ही मिलता है। इनमें भी मुंशी सदासुखलाल की भाषा अधिक महत्व की है। संवत् १८६० के लगभग हिन्दी गद्य का प्रवर्त्तन तो हुआ पर उसके साहित्य की अखंड परम्परा सं० १९१४ के युद्ध के उपरान्त ही भली प्रकार चली। १८६०—१९१५ के बीच के काल में जटमल कृत 'गोरा बादल की बात' का अनुवाद ही उपलब्ध है अन्यथा यह काल प्रायः शून्य ही है।

१८६० के गद्य से लाभ उठाने वालों में ईसाई धर्म प्रचारकों का नाम उल्लेखनीय है। संवत् १८७५ के ईसाइयों की धर्म पुस्तकों का अनुवाद विलियम केरे (William Carey) आदि द्वारा हुआ जिसमें विशुद्ध हिन्दी भाषा का ही उपयोग हुआ। इसके उपरान्त ईसाइयों की पुस्तकें और पैम्फलेट निरन्तर निकलते रहे। अंग्रेजी शिक्षा के लिए कई स्थानों पर स्कूल, कालेज खुल चुके थे अतः शिक्षा विषयक पुस्तकों की माँग १९०० के पूर्व ही पैदा हो गई। १९०० के लगभग आगरे में पादरियों की एक "स्कूल बुक सोसाइटी" स्थापित हुई जिसके लिए पंडित ओंकारभट्ट ने 'भूगोलसार'—पं० बद्रीलाल शर्मा ने 'रसायन प्रकाश' लिखा। इसी प्रकार कुछ रीडरें भी मिशनरियों के मुद्रण कार्यालय से छपीं।

ईसाई धर्म के बढ़ते हुए प्रचार से विचलित तथा स्वधर्म रक्षा के प्रति आकुल होकर राजा राममोहनराय उपनिषद् और ब्रह्मज्ञान लेकर प्रचार करने लगे। उन्होंने १८७२ में वेदान्त सूत्रों के भाष्यों का हिन्दी

अनुवाद करके भी प्रकाशित कराया। इधर अंग्रेजी शिक्षा की व्यवस्था हो जाने पर सरकार का ध्यान अदालती भाषा की ओर गया दफ्तरों की भाषा फ़ारसी रहने दी गई, पर इस भाषा और लिपि से जनता अपरिचित रहने के कारण लोगों की कठिनाई को दूर करने के लिये सब सूचनाएँ आदि "नागरी भाखा अच्छर में सीखने" की आज्ञा दी गई। सरकार की कृपा से खड़ी बोली का अरबी फ़ारसी रूप लिखने पढ़ने की अदालती भाषा होकर सामने आया। जिस समय पाठशालाओं में नियुक्त पाठ्य-ग्रन्थों के निर्माण के लिए भाषा का प्रश्न सामने आया तब काशी शिक्षा विभाग के निरीक्षक राजा शिवप्रसाद जी साहित्यक्षेत्र मे आये। देवनागरी लिपि में उर्दू भाषा की प्रधानता उनकी एक विशेषता थी। पाठ्यक्रम में उपयोगी कहानियों में 'राजा भोज का सपना' 'वीरसिंह का वृत्तान्त' आदि उनकी कहानियाँ उल्लेखनीय हैं। राजा शिवप्रसाद के उर्दू के प्रति बढ़ते हुए प्रेम का विरोध करने के लिए उसी समय 'राजा लक्ष्मणसिंह' ने भी अपनी लेखनी गतिशील की। हिन्दी और उर्दू दो बोली न्यारी न्यारी थीं जिनका सम्मिश्रण किसी प्रकार नहीं हो सकता। ऐसी उनकी पक्की धारणा थी। इस प्रकार साहित्य को स्वतन्त्र रूप से दो नई शैलियाँ मिलीं। भाषा के एक निश्चयात्मक रूप का सम्यक् प्रसार हम राजा लक्ष्मणसिंह की रचना में ही पाते हैं। जितना पुष्ट और व्यवस्थित गद्य हमें उनकी रचना में मिलता है उतना पूर्व के किसी भी लेखक की रचना में नहीं मिलता। इस दृष्टि से राजा लक्ष्मणसिंह का स्थान तत्कालीन गद्य साहित्य में सर्वोच्च है।

शिक्षा के आन्दोलन के साथ ही ईसाई मत का प्रचार रोकने के लिए मत मतांतर संबन्धी आन्दोलन देश के पश्चिमी भागों में चल पड़े जिससे गद्य के विकास में बहुत सहायता पहुँची। गुजराती होने पर भी स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपने आर्यसमाज के प्रचार के लिए

यह अनिवार्य रूप से आवश्यक समझा कि अपनी धर्म पुस्तकों को हिन्दी में प्रकाशित किया जाए। वे पहले संस्कृत में लिखते थे किन्तु देश और काल की आवश्यकता का अनुभव कर उन्होंने हिन्दी को ही अपनी भाषा बना लिया। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने 'सत्यार्थप्रकाश' तथा वेदों के भाष्य आदि हिन्दी या आर्यभाषा में प्रकाशित किए। इसी समय पंजाब के पं० श्रद्धाराम फिल्लौरी ने भी गद्य में अपनी पुस्तकें लिखी। अपने समय के वे एक सच्चे हिन्दी हितैषी और सिद्धहस्त लेखक थे। तात्पर्य यह कि राजा लक्ष्मणसिंह के समय में ही हिन्दी गद्य की भाषा अपने भावी रूप का आभास दे चुकी थी—अब आवश्यकता थी कुछ ऐसे शक्तिसम्पन्न लेखकों की जो अपनी प्रतिभा और उद्भावना के बल से इसे सुव्यवस्थित—परिमार्जित करके स्थायी रूप प्रदान कर सकते तथा उसमे ऐसे साहित्य का विधान करते जो शिक्षित जनता की रुचि के अनुकूल होता। ठीक इसी समय भारतेन्दु उदय हुआ। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का प्रभाव भाषा और साहित्य दोनों पर गहरा पड़ा। उन्होने जिस प्रकार गद्य की भाषा को परिमार्जित करके इसे बहुत ही चलता, मधुर और स्वच्छ रूप दिया उसी प्रकार हिन्दी साहित्य को भी नए मार्ग पर लाकर खड़ा किया। मुंशी सदासुख की भाषा साधु होते हुए भी पडिताऊपन लिए थी, लल्लूलाल में ब्रजभाषापन और सदल मिश्र में पूरबीपन था राजाशिवप्रसाद का उर्दूपन शब्दों तक ही परिमित न था, वाक्यविन्यास तक में घुसा था। राजा लक्ष्मणसिंह की भाषा विशुद्ध और मधुर तो अवश्य थी पर आगरे की बोल-चाल का पुट उसमें कम न था। भाषा का निखरा हुआ शिष्ट सामान्य रूप भारतेन्दु की कला के साथ ही प्रकट हुआ।

भारतेन्दु युग

भाषा का स्वरूप स्थिर हो जाने पर साहित्य की रचना कुछ परिमाण में हो लेती है तभी शैलियों का भेद, लेखकों का व्यक्तित्व

एवं विशेषतायें आदि लक्षित होती हैं। भारतेन्दु के प्रभाव से उनके जीवन काल के बीच ही लेखकों का अच्छा खासा मण्डल तैयार हो गया, जिसमें श्री निवासदास (१८५१ – ८७ ई०)। बालकृष्ण भट्ट (१८४४—१९१४ ई०), प्रताप नारायण मिश्र (१८५६—१८९४ ई०), राधाकृष्णदास (१८६५—१९०७ ई०), सुधाकर द्विवेदी (१८६० – १९१० ई०); कार्तिकप्रसाद खत्री (१८५१—१९०४ ई०), राधाचरण गोस्वामी (१८५९– १९१५ ई०), बदरी नारायण चौधरी 'प्रेमघन' (१८५५—१९२३ ई०) बालमुकुन्द गुप्त (१८६२—१९०७ ई०), किशोरीलाल गोस्वामी (१८६५—१९३२ ई०), तोताराम वर्मा (१८४७— १९०२ ई०) नवीनचन्द्रराय (१८३७--१८९० ई०) देवकीनन्दन खत्री (१८६१—१९१३) एवं अम्बिकादत्त व्यास (१८५८ —१९०० ई०) हैं। भारतेन्दु के गद्य की छाप होते हुए भी इन लेखकों का गद्य अनेक रूप मे स्वतंत्र है। इनकी शैली में व्यक्तिगत विभिन्नता स्पष्ट परिलक्षित होती है।

भारतेन्दु में हमें दो प्रकार की शैलियाँ मिलती हैं भावावेश की शैली, जिसमे वाक्य प्रायः छोटे और पदावली सरस बोलचाल की है; तथ्य निरूपण की शैली में संस्कृत शब्दों का कुछ अधिक मेल है। लोकोक्तियो और मुहावरों से भाषा में शक्ति और चमक अत्यधिक हो गई है। हास्य और व्यँग्य का पुट देकर भाषा को सजीव बनाने का प्रयत्न भी इनकी भाषा में दीख पड़ता है। संक्षेप में इनका महत्व इसी बात में है कि अनिश्चितता के कर्दम से निकाल कर इन्होंने गद्य शैली को एक निश्चित पथ पर अग्रसर किया। इस अथक उद्योग के पुरस्कार स्वरूप यदि इन्हें 'गद्य का जन्मदाता' कहा जाय तो अनुचित न होगा।

उक्त मण्डल के अधिकांश लेखक किसी न किसी पत्र पत्रिका का संपादन कर रहे थे। यों तो सभी विषयों पर पत्रिकाओं में लिखा जा

रहा था किन्तु निबन्ध रचना का स्वच्छ, परिष्कृत रूप बालकृष्ण भट्ट तथा प्रताप नारायण मिश्र ने ही उपस्थित किया। मिश्र जी की भाषा बहुत ही स्वच्छ गति से बोलचाल की चपलता तथा भाव भंगी लिए—चलती है। हास्य विनोद की उमंग में वह कभी कभी मर्यादा का अतिक्रमण करती, पूरबी कहावत और मुहावरों की बौछार छोड़ती चलती है। बालकृष्ण भट्ट की भाषा अधिकतर खरी खरी सुनाने के काम में लाई जाने वाली भाषा थी। नूतन और पुरातन के संघर्ष काल में भट्ट जी को चिढ़ने की प्रर्याप्त सामग्री प्राप्त थी जिससे उनके लेखों में चिड़चिड़ापन स्पष्ट झलकता है। भाषा उनकी चटपटी, तीखी; तथा चमत्कारपूर्ण है। उपाध्याय बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमधन' के लेखों से गद्य काव्य के पुराने ढंग की झलक, रंगीन इबारत की चमक दमक बहुत कुछ मिलती है। वाक्य इतने लम्बे होते हैं कि उनका अन्वय कठिन हो जाता है। ठाकुर जगमोहनसिंह की शैली शब्द शोधन और अनुप्रास की प्रवृत्ति के कारण 'प्रेमधन' की शैली से मिलती जुलती है पर उसमें लम्बे वाक्यो की जटिलता नहीं पाई जाती। इस प्रकार हरिश्चन्द्र काल के सब लेखकों में अपनी भाषा की प्रकृति की पूरी परख थी—संस्कृत के ऐसे शब्दों और रूपों का व्यवहार वे करते थे जो शिष्ट समाज के बीच प्रचलित थे। तात्पर्य यह कि भारतेन्दु के समय में ही देश के कोने कोने में हिन्दी लेखक तैयार हुए जो उनके निधन के उपरान्त भी बराबर साहित्य सेवा में लगे रहे—अपने अपने विषय क्षेत्र के अनुकूल रूप हिन्दी को देने में सबका हाथ रहा।

भारतेन्दु युग के प्रमुख लेखक

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का जन्म स० १९०७ को काशी के सुप्रसिद्ध सेठ परिवार में हुआ था। इनके पूर्वजों में सेठ अमीचन्द इतिहास-प्रसिद्ध व्यक्ति थे। धनी परिवार में पैदा होने पर भी भारतेन्दु को धन के प्रति कभी मोह और लालच नहीं रहा। शैशव से ही उन्हें कला और

साहित्य से विशेष अनुराग था। अतः इन्हीं विषयों की सीमा में अपने व्यक्तित्व का विकास करते हुए उन्होंने जो महान् साहित्यिक कार्य किये वे उन्हें हिन्दी गद्य का प्रवर्त्तक बना सके। भारतेन्दु का स्निग्ध-आलोक बहुत लम्बे समय तक हिन्दी-गगन को उपलब्ध न हो सका। पैंतीस वर्ष की आयु में ही उनका सं० १९४१ में देहान्त हो गया।

हिन्दी गद्य-शैली के निर्माण में भारतेन्दु की नवनवोन्मेश शालिनी प्रतिभा ने जो कार्य किया वह उनके पूर्ववर्ती लेखकों के सम्मिलित प्रयत्नों से भी न हो सका था। गद्य शैली के आवश्यक उपकरण भाव, भाषा, शब्द-विन्यास, मुहावरे-लोकोक्तियाँ, प्रवाहपूर्ण वाक्य-विन्यास, आदि को नवीन कलेवर देकर निबन्ध, नाटक, समाचार पत्र और उपन्यास आदि के लिए क्षमता पूर्ण बनाने में भारतेन्दु का विशेष हाथ है। भारतेन्दु की गद्य शैली के प्रधान गुण सरलता, सरसता और सजीवता हैं।

उनकी गद्य शैली के दो रूप उपलब्ध होते हैं—एक भावावेश की शैली और दूसरी तथ्य निरूपण की शैली। भावावेश की भाषा में प्रायः वाक्य बहुत छोटे और पदावली सरलतम बोलचाल के शब्दों से परिपूर्ण होती है। कहीं कहीं उर्दू, अरबी या फारसी के सरल शब्दों का मेल भी हो जाता है। तथ्य-निरूपण या वस्तु वर्णन में उनकी भाषा संस्कृत-पदावली समवेत दृष्टिगत होती है। संस्कृत के कठिन और अप्रचलित शब्दों का प्रयोग वे इस शैली में भी नहीं करते। यथार्थ में यह शैली उनका प्रतिनिधित्व नहीं करती। उनकी गद्य शैली में शब्दों के रूप भी एक प्रणाली पर मिलते हैं और वाक्य भी सुसम्बद्ध पाये जाते हैं।

वाग्वैचित्र्य या चमत्कार की प्रवृत्ति से बचकर भाव की प्रेषणीयता और मार्मिकता पर ही उनका ध्यान रहता है। कहीं कहीं व्याकरण

सम्बन्धी त्रुटियाँ अवश्य इनके गद्य में मिलती हैं जो बोलचाल तथा प्रान्त का प्रभाव कहा जा सकता है।

भारतेन्दु की गद्य शैली में विविधता और व्यापकता का जो रूप हमें दृष्टिगत होता है वह निश्चय ही अपूर्व और अभिनव है। यद्यपि भारतेन्दु ने निबन्ध अधिक नहीं लिखे किन्तु उनके निबन्धों की अपनी शैली उपलब्ध निबन्धों से ही भली भांति विदित हो जाती है। भारतेन्दु की गद्य शैली का एक रूप उनके नाटकों में भी देखा जा सकता है। बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न इस अमर कलाकार ने हिन्दी को गद्य का वरदान देकर व्यापक और सशक्त बनाया। उनकी रचनाओं में भारतीय संस्कृति, सभ्यता और साहित्य का स्वर स्पष्ट रूप से प्रतिध्वनित होता हुआ सुनाई देता है।

श्री बालकृष्ण भट्ट का जन्म प्रयाग में सं० १९०१ में हुआ। प्रारम्भिक शिक्षा घर में प्राप्त करने के बाद आपने स्कूल में भी शिक्षा पाई और उसके बाद बहुत समय तक प्रयाग के जमुना मिशन स्कूल तथा कायस्थ पाठशाला में हिन्दी, संस्कृत अध्यापक रहे। संवत् १९७१ में आपका परलोकवास हुआ।

भट्टजी भारतेन्दु मंडली के सबसे अधिक गंभीर एवं विवेचक प्रकृति के व्यक्ति थे। आपका पांडित्य और गहन अध्ययन आपके निबन्धों में देखा जा सकता है। भट्ट जी दीर्घकाय निबन्ध लिखने के पक्षपाती नहीं थे—वे कहा करते थे कि "मालूम नहीं छोटी सी बात को लेखक व्यर्थ ही विस्तार क्यों देते हैं।" भाषा के परिष्कार की ओर इनका विशेष ध्यान नहीं रहा। अपने वर्ण्य विषय के अनुरूप शब्द-चयन के साथ ये अरबी, फारसी और अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग भी प्रायः अपने निबन्धों में करते रहे। इनको मुहावरों के प्रयोग करने की धुन थी। व्यंग्य और वक्रता उनके निबन्धों में सजीवता

पैदा करने में पूर्ण रूप से सफल हुए हैं, भाषा में पूरवीपन को भट्टजी भी नहीं छोड़ सके हैं, समझाय बुझाय आदि प्रयोग प्रायः देखे जा सकते हैं। 'एडूकेशन' 'सोसाइटी' 'करेक्टर' 'स्टेंडर्ड' आदि अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग भी आपकी शैली की विशेषता ही कहा जायगा। इनकी विनोद-शैली में मिश्र जी की अपेक्षा तीव्रता और दंश अधिक रहता है।

साहित्यिक और गम्भीर विषयों पर निबन्ध लिखते समय भट्टजी संस्कृत गर्भित भाषा का उपयोग करते थे। कल्पना 'आत्मनिर्भरता' आदि निबन्धों में यह रूप दीखता है। आपने संस्कृत साहित्य का अच्छा अध्ययन किया था। अपने पत्र में संस्कृत कवियों की काव्य चर्चा भी आप प्रायः करते रहते थे। आचार्य शुक्ल जी ने आपको और मिश्रजी को अंग्रेजी के निबन्ध लेखक एडीसन और स्टील के समान ही हिन्दी गद्य साहित्य का निर्माता लिखा है। निस्सन्देह भारतेन्दु युग के गद्य लेखकों में शैली निर्माता की दृष्टि से इन दोनों लेखकों का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है।

श्री प्रतापनारायण मिश्र जी का जन्म कानपुर में सं० १९१३ में हुआ। प्रारम्भिक शिक्षा घर पर ही हुई। हिन्दी संस्कृत का आपको अच्छा ज्ञान था। अपने विचारों की अभिव्यक्ति के लिए आपने 'ब्राह्मण' नामक मासिकपत्र निकाला था। निबन्ध-प्रबन्ध लिखने के साथ कई नाटक और प्रहसन भी लिखे।

लेखक के व्यक्तित्व की छाप गद्य-शैली का प्रधान गुण कहा जाता है। मिश्र जी की निबन्ध-शैली में यह गुण उनके समकालीन लेखकों तथा परवर्ती लेखकों से कहीं अधिक मात्रा में उपलब्ध होता है। उनका प्रतिनिधित्व प्रस्तुत करने वाले लेख वे हैं जिनमें उन्होंने अपने चारों ओर के वातावरण से ही छोटे छोटे विषयों को चुना है। 'बात'

'वृद्ध' 'भौं' 'धोखा' 'पंचपरमेश्वर' 'दांत' आदि सामान्य विषयों के प्रतिपादन में मिश्र जी अपनी सरल, सुबोध और वाग्छल समन्वित हास्यमयी शैली से जो कह जाते हैं वह पाठक को सचेत करने के साथ व्यंग्य और हास्य के मनोरम वातावरण में पहुँचा देता है। निबन्धों के अन्तराल में पाठक को भले ही गम्भीर अध्ययन की छाप न मिले किन्तु लेखक के व्यक्तित्व की अमिट छाप बिना पड़े नहीं रह सकती। लेखक की अपनी विशेषता है उसकी जिन्दादिली और मस्ती जो भारतेन्दु द्वारा उस समय के गद्य लेखकों को विरासत में मिली थी। विनोदी स्वभाव के कारण मिश्र जी गम्भीर निबन्ध लिखने में उतने सफल नहीं हो सके जितने सामान्य विषयों पर लेख लिखने में। इन लेखों में शिष्टता और नागरिकता का अभाव पाया जाना भी उनके स्वभाव का ही गुण-दोष कहा जायगा। साहित्यिक मनोविनोद और हास्य-व्यंग्य के लिए उनके निबन्धों का बहुत बड़ा साहित्यिक मूल्य है, उन्हें केवल 'इतिहास की वस्तु' कह कर टाला नहीं जा सकता।

मिश्र जी अपने समय के सफल पत्र-सम्पादक थे। पत्र सम्पादक को विविध विषयों की जानकारी के साथ पाठकों की रुचि का भी ध्यान रखना होता है। पाठकों की अभिरुचि को परिष्कृत बनाने के साथ ज्ञान-सामग्री देना भी सम्पादक का काम है। मिश्र जी ने इस दृष्टि से गम्भीर एवं मनोवैज्ञानिक विषयों पर भी निबन्ध लिखे। 'सोने का डंडा' 'काल' 'स्वार्थ' 'शिवमूर्ति' आदि निबन्धों में उनके मनन एवं चिन्तन शील स्वभाव का आभास मिल सकता है।

मिश्र जी की भाषा में व्याकरण सम्बन्धी त्रुटियां और ग्रामीण बोलचाल के शब्दों का प्रयोग कहीं कहीं अखरने लगता है। बैसवाड़ी बोली के शब्दों का मोह मिश्र जी की भाषा में प्रान्तीयता की झलक पैदा करता है। इन छोटी मोटी त्रुटियों के रहने पर भी निश्चय ही मिश्र जी हिन्दी के आदि निबन्धकार कहे जायेंगे।

श्रीबालमुकुन्द गुप्त जी का जन्म पंजाब के रोहतक जिले में सं० १९२२ में हुआ। हिन्दी पत्रकारिता को प्रोत्साहित करने वाले और अपनी व्यंग्य पूर्ण शैली से लोक प्रिय बनाने वाले लेखकों में गुप्त जी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उर्दू भाषा पर आप का अच्छा अधिकार था। आपने उर्दू पत्र सम्पादन से ही अपना कार्य प्रारम्भ किया था किन्तु बाद में कलकत्ता पहुंचकर 'बंगवासी' के सम्पादक हो गये। हास्य, विनोद और व्यंग्य का पुट देकर अपनी भाषा को चलती और लोकप्रिय बनाने की कला में आप मिश्र जी के ही समान थे। भाषा को शुद्ध और परिमार्जित करने की ओर आपका भले ही विशेष ध्यान न रहा हो किन्तु दूसरो की अशुद्धियों की ओर संकेत करने में कभी नहीं चूकते थे।

गुप्त जी अपने समय के उन लेखकों में से थे जिन्होने सामाजिक और राजनीतिक विषयों पर बड़े ही मार्मिक और चुटीले लेख लिखे। हिन्दी निबन्ध साहित्य में आपके लिखे हुए 'शिव शंम्भु का चिट्ठा' को कौन भूल सकता है। फड़कती हुई व्यंजनापूर्ण शैली में आपने इस चिट्ठे में जो चोट तत्कालीन राजनीति पर की है वह राजनीतिक आन्दोलन का बीज है। वाइसराय को आमोद प्रमोद पूर्ण जीवन पर व्यंग्य करते हुए भारतीयों की दुर्दशा का जैसा सांकेतिक चित्र उस लेख मे है वह अपूर्व है और आज भी उस शैली का लेख हिंदी साहित्य में नहीं मिलता।

आपके लिखे निबंधों का संग्रह 'गुप्त निबंधावली' के नाम से छपा है। अब आपकी समस्त रचनाओं का संकलन 'गुप्त ग्रन्थावली के नाम से प्रकाशित हो गया है। गुप्त जी हिंदी गद्य के उन्नायकों में अपनी शैली की मार्मिकता, व्यंग्यमयता और लाक्षणिकता के कारण चिर स्मरणीय रहेंगे। आपकी मृत्यु संवत् १९६४ में हुई।

द्विवेदी युग

खड़ी बोली गद्य के विकास के इतिहास में भारतेन्दु के पश्चात् द्वितीय उत्थान का आरम्भ पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी जी के आगमन से माना जा सकता है। भारतेन्दु और उनके सहयोगी लेखकों की दृष्टि व्याकरण के नियमों पर अच्छी तरह जमी नहीं थी—व्याकरण के व्यतिक्रम एवं भाषा की अस्थिरता पर थोड़े ही दिनों में कोप दृष्टि पड़ी जिसके लिए द्विवेदी जी का हिन्दी गद्य साहित्य ऋणी रहेगा। व्याकरण की शुद्धता तथा भाषा की सफाई के प्रवर्त्तक स्वयं द्विवेदी जी हैं। 'सरस्वती' पत्रिका के संपादक के रूप में उन्होंने आई हुई पुस्तकों के भीतर व्याकरण और भाषा की अशुद्धियाँ दिखाकर लेखकों को सावधान किया। व्याकरण की ओर इस प्रकार ध्यान जाने पर कुछ दिनों व्याकरण संबन्धी बातों की चर्चा भी पत्रों में अच्छी चली। इस उत्थान में जैसे अधिक प्रकार के विषय लेखकों की विस्तृत दृष्टि के भीतर आए वैसे ही शैली की अनेकरूपता का विकास भी हुआ। वाक्य विन्यास में अधिक सफाई और व्यवस्था आई। अंग्रेजी आदि अन्य समुन्नत भाषाओं की उच्च विचार धारा से परिचित और अपनी भाषा पर यथेष्ट अधिकार रखने वाले कुछ लेखकों की कृपा से हिन्दी की अर्थोद्घाटिनी शक्ति की अच्छी वृद्धि और अभिव्यंजना प्रणाली का भी अच्छा प्रसार हुआ। सघन एवं गुंफित विचार सूत्रों को व्यक्त करने वाली तथा सूक्ष्म और गूढ़ भावों को झलकाने वाली भाषा हिन्दी साहित्य को कुछ कुछ प्राप्त होने लगी।

भारतेन्दु के अस्त होने के उपरान्त ज्यों ज्यों हिन्दी गद्य साहित्य की वृद्धि होती गई त्यों त्यों प्रचार की आवश्यकता भी दिखाई दी, और जब लेखकों की दूसरी सीढ़ी तैयार हुई तो उसे अपनी बहुत कुछ शक्ति प्रचार के काम में भी लगानी पड़ी। संवत् १९५० में कई उत्साही युवकों के उद्योग से जिनमें बाबू श्यामसुन्दरदास, पं० रामनारायण

मिश्र, और ठाकुर शिवकुमारसिंह मुख्य थे—काशी नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना हुई, इनके अन्य सहायकों में पं० लक्ष्मीशंकर मिश्र, बाबू रामदीन, 'भारतजीवन' के अध्यक्ष रामकृष्ण तथा बा० कार्तिक प्रसाद खत्री का नाम उल्लेखनीय है। इस सभा के दो उद्देश्य थे—नागरी अक्षरों का प्रचार तथा हिन्दी साहित्य की वृद्धि।

आधुनिक हिन्दी साहित्य में नाटक

हिन्दी में नाटक रचना का सूत्रपात सत्रहवीं शताब्दी में हुआ है। आगरे के सुप्रसिद्ध कवि बनारसीदास ने १६६२ में 'समय सार' जैन कवि कुंद कुंदाचार्य के नाटक का भाषान्तर किया। प्राणचंद का 'रामायण महा नाटक' दोहा चौपाइयों में कथोपकथन के रूप में है। देव कृत 'देव माया प्रपंच' नाटक भी पद्यमय ग्रंथ के रूप में मिलता है। १६८० में हृदयराम ने 'हनुमन्नाटक' का अनुवाद किया। संस्कृत नाटकों के अनुवादों में 'प्रबोध चंद्रोदय' का प्राधान्य रहा। इसके अनुवादकों में जोधपुर नरेश महाराजा यशवंतसिंह तथा ब्रजवासी दास मुख्य हैं। नाटक की रीति के अनुसार उनको नाटक नाम से अभिहित नहीं किया जा सकता। वे प्रायः धार्मिक कथाओं को आगे लेकर चले। प्रायः सभी नाटक पद्यमय हैं। उनका क्षेत्र संकुचित है। न उसमें चरित्र चित्रण ही मिलता है और न कार्य व्यापार का सफल निर्वाह ही। इस प्रकार हिंदी साहित्य नाटक के क्षेत्र में अठारहवींसदी तक अत्यन्त निर्बल एवं अशक्त ही रहा। नाटक रचना के अभाव के कतिपय विशेष कारण थे। नाटक तथा खेल तमाशों के लिए एक प्रकार के जातीय उत्साह की आवश्यकता रहती है, वह उत्साह मुसलमानों के आगमन के पश्चात् प्रायः उठ सा गया था। मुसलमानों ने भारतीय संस्कृति को बहुत कुछ प्रभावित किया है किन्तु नाटक के सम्बंध में यवनों का प्रभाव इस देश पर अच्छा नहीं रहा। तीसरा, सबसे प्रबल एवं सर्वमान्य कारण था गद्य का अभाव, यद्यपि हिंदी साहित्य में ब्रज भाषा गद्य का प्रचार १७

वीं शताब्दी में ही हो गया था, वार्ता ग्रंथ इसके प्रमाण हैं किन्तु ब्रज भाषा गद्य का सम्यक् प्रसार न होने के कारण नाटकों की वृद्धि में वह सहायक न हो सका। इसके अतिरिक्त यह कहना कठिन है कि उस समय जनता के मनोरंजन के लिये कोई रंगमंच भी था जो कि नाटक का आवश्यक एवं विशेष अंग है। अभिनय की शैली पर मन बहलाव की सामग्री में बंगाल की यात्रा, रामलीला-नौटंकी स्वांग आदि का नाम लिया जा सकता है किन्तु ये सब पद्धतियां उपर्युक्त रंगमंच की सृष्टि नहीं कर सकती थीं। इस्लाम धर्म और साहित्य में 'नाटक' का सर्वथा अभाव ही रहा है। फलतः विदेशी शासन के साथ संगीत, चित्रकला और वास्तुकला का महत्व अवश्य बढ़ा किन्तु रंगमंच की कोई परम्परा स्थापित नहीं हुई।

संस्कृत की परम्परा को आगे चलाने का श्रेय बिहारी नाटकों को है जिसमें कवि शेखराचार्य ज्योतिरीश्वर ठाकुर के साथ उमापति उपाध्याय भी हुए। किन्तु नाटकों की यह धारा भी अविछिन्न रूप से देश में प्रवर्तित न हो सकी।

१८ वीं सदी के अनेक अनुवादों में बांधव नरेश महाराजा जयसिंह के पुत्र विश्वनाथ सिंह के 'आनन्द रघुनन्दन' नाटक को भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने प्रथम गद्य नाटक माना है। ब्रजभाषा में सबसे प्रथम गद्य नाटक भारतेन्दु बाबू के पिता श्री गिरिधरदास कृत 'नहुष' बताया जाता है। राजा लक्ष्मण सिंह (सन् १८५०,१८६६ ई०) ने जो शकुन्तला का अनुवाद किया था उसमें संस्कृत नाटक के अनुरूप गद्य का भाग खड़ी बोली में तथा पद्य भाग ब्रज भाषा में रखा। इस प्रकार भारतेन्दु के पूर्व के नाटकों मे तीन विशेषताएँ मिलती हैं। प्रथम वे अधिकांश में अनुवाद थे। दूसरे वे धार्मिक एवं पौराणिक ही थे तथा तीसरे वे सब ब्रज भाषा में लिखे गये जिनमें भी अधिकांश भाग पद्य में ही था।

युग प्रवर्तक भारतेन्दु के उदय के साथ समस्त साहित्य मंडल अपूर्व ज्योत्स्ना में स्नात हो गया और हिंदी नाटक साहित्य को नवीन जीवन मिला। उस समय तक भारतवर्ष में अंग्रेजी नाटकों का प्रचार हो चुका था और उनकी छाप बंगला नाटकों पर पूर्ण रूप से लक्षित होने लगी थी। प्राचीन के प्रति मोह तथा नवीन के प्रति एक आकर्षण का भाव लिए हुए भारतेन्दु ने साहित्य क्षेत्र में पदार्पण किया। प्राचीन एवं नवीन संस्कारों का यह सुखद समन्वय उनके नाटको में स्थल स्थल पर दृष्टि गोचर होता है। उनके नाटक न तो प्राचीन परिपाटी के अंधानुकरण हैं और न सर्वथा नए सांचे में ढले हुए आधुनिक शैली में नाटक ही है।

उनके द्वारा अनुवादित नाटकों में तो मूल के अनुरूप प्रस्तावना थी ही किंतु मौलिक नाटको मे भी उसका नितांत तिरस्कार नही किया गया। 'अंधेर नगरी' आदि में जहां विधिवत् प्रस्तावना नही है वहां भी अप्सराओं या नर्तकियों द्वारा कुछ मंगल या जयगान करा दिया है। 'सत्य हरिश्चंद्र' के भरत वाक्य में देशभक्ति की पूरी पूरी छाप है। नाटकों के कथानक में पर्याप्त नवीनता मिलती है तथा देश कालानुरूप धार्मिक ढोंग तथा मद्यपान आदि व्यसनों के सम्बंध में व्यंग्य की प्रवृत्ति भी है। भारतेन्दु के नाटको के विषय प्रायः शृंगार, हास्य, कौतुक, समाज संस्कार एवं देश प्रेम ही रहे। विद्या सुन्दर चौर कवि की 'चौर पंचाशिका' के आधार पर लिखे हुए बंगला नाटक का छायानुवाद है। 'रत्नावली' में केवल प्रस्तावना एवं विष्कंभक है। 'पाखंड विडम्बना' प्रबोध चंद्रोदय के तृतीय अंक का अनुवाद है। 'वैदिकी हिसा हिंसा न भवति' एक सुंदर प्रहसन है जिसमें उन लोगो की हंसी उड़ाई गई है जो अपनी इंद्रियों की तृप्ति के लिए मांस मदिरा को धार्मिक विधान मानते हैं। 'धनंजय विजय' कांचन कवि कृत व्यायोग का भाषांतर है। 'प्रेमयोगिनी' आत्म कथात्मक है। तत्कालीन समाज का वर्णन बड़ी

निर्भीकता से किया गया है। 'सत्य हरिश्चंद्र' भारतेन्दु के मौलिक नाटकों में उच्च स्थान रखता है। इसमें आर्य क्षेमेश्वर कृत चण्ड कौशिक की एक क्षीण छाया है। 'मुद्राराक्षस' विशाखदत्त के संस्कृत नाटक का अनुवाद है। इसका विषय राजनीति है। 'कर्पूरमंजरी' सट्टक प्राकृत से अनुदित है। विषस्यविषमौषधम् 'भाण' का अच्छा उदाहरण है। चंद्रावली' नाटिका में भारतेन्दु बाबू की अनन्य वैष्णवता की छाप है। इसमें उनके प्रेम के आदर्श का दर्शन कर सकते हैं। प्रेम वियोग की अग्नि में तप कर स्वार्थ और ऐन्द्रिकता के कलुष से मुक्त हो जाता है और एक दैवी रूप धारण कर लेता है। 'भारत दुर्दशा' राजनीतिक नाटक है जिसमे भारत की अवनति के कारण दिखाए गये हैं। प्राचीन गौरव का दिग्दर्शन एवं वर्तमान की शोचनीय अवस्था को दिखाकर नाटककार ने देशवासियों को उद्धार के लिए उद्योगशील होने का संकेत दिया है। 'भारत जननी' में भी देश की दुर्दशा का ही उल्लेख हुआ है। 'नीलदेवी' भारतीय स्त्रियों को अंग्रेजी स्त्रियों की भांति कर्यकुशल देखने की अभिलाषा से लिखा गया है। अंधेर नगरी भी एक प्रहसन है।

इस प्रकार भारतेन्दु ने प्रायः सभी प्रकार के नाटक लिखे। यद्यपि उनके नाटकों मे कुछ कुछ आदर्श-वादिता थी तथापि उनमें सामाजिक दशा का चित्रण अच्छा है। प्राचीन नाटकों की भाँति हास्य विदूषक में केन्द्रित न होकर नाटक की संपूर्ण वस्तु में व्यापक हो गया है अथवा हास्य उद्देश्य पूर्ण था जिसमें देशप्रेम और देश सुधार की भावना पूर्ण रूप से दिखाई पड़ती है। नाटक की रचना में यद्यपि पूर्व और पश्चिम का समझौता सा दिखाई पड़ता है किन्तु नाटकों की आत्मा भारतीय ही है। यह पहले नाटककार थे जिन्होंने अपने नाटकों को अभिनयानुकूल बनाने का सफल प्रयत्न किया।

भारतेन्दु जहाँ स्वयं महान् कलाकार थे, वहाँ साथ ही अपने

प्रभाव से कलाकारों को प्रेरणा भी देते थे। युग प्रवर्त्तक भारतेन्दु थे। समसामयिक नाटककारों में 'तप्ता संवरण', प्रह्लाद चरित, 'संयोगिता स्वयंवर', 'रणधीरप्रेममोहिनी', आदि के रचियिता श्रीनिवासदास का नाम उल्लेखनीय है। 'रणधीर प्रेममोहिनी' दुखान्त नाटक मे प्रस्तावना आदि की अवहेलना की गई है। श्री बदरी नारायण चौधरी 'प्रेमधन' ने 'भारत सौभाग्य' नाटक लिख कर साहित्य में आशा का संचार किया, किन्तु कला की दृष्टि से यह नाटक शिथिल है। तोतारामजी के 'केटोकृतान्त' को भारतेन्दु ने नाटकों की गणना में छठा स्थान दिया है। पं० गदाधर भट्ट के पांच नाटकों में 'रेल का टिकट खेल', बाल विवाह तथा चन्द्रसेन सामाजिक है। पं० प्रतापनारायण मिश्र ने प्रहसनों के अतिरिक्त 'गोसंकट', 'कलि प्रभाव' 'जुआरी ख्वार', तथा हम्मीर हठ नामक नाटक लिखे। इनके नाटकों में उस प्रतिभा और सजीवता का परिचय नहीं मिलता जो उनकी अन्य गद्यकृतियों मे है। श्रीराधाकृष्ण दास जी भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के फुफेरे भाई थे, उन्ही के यहाँ रहने के कारण उनसे प्रभावित भी थे। उनका 'दुःखिनीबाला' सामाजिक नाटक है जिनमें तत्कालीन विवाह संबंधी प्रचलित प्रथाओं का दुष्परिणाम दिखाया गया है। 'धर्मालाप' एक प्रकार से धार्मिक विवाद के रूप में है। महारानी पद्मावती और महाराणा प्रताप ऐतिहासिक आधार पर रचे गये हैं। 'महाराणा प्रताप' में अधिकारी कथा के साथ प्रासंगिक प्रहसन भी चलता है जो कि पारसी नाटकों की प्रवृत्ति का अनुकरण कहा जा सकता है। श्री केशवराम भट्ट ने 'सज्जाद संबुल', 'रामशाप सौसन' लिखे। अन्य नाटककारों में चन्द्रशर्मा, राधाचरण गोस्वामी, बालकृष्ण भट्ट, अम्बिका प्रसाद व्यास, गोपालराम गहमरी देवकी नन्दन त्रिपाठी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। रास और रामलीला के रंगमंच भी चलते रहे किन्तु इनके लिए जो रचनाएँ उपस्थित हुईं वे अधिक साहित्यिक न रहीं। इस कला के प्रायः सभी

नाटकों में प्रस्तावना आदि की अवहेलना रही— पौराणिक विषयों की अपेक्षा नाटककारों का झुकाव सामाजिक विषयों की ओर ही रहा। गद्य की भाषा में कहीं कहीं उर्दू का मिश्रण अधिक हो जाता था, हास्य तथा व्यंग्य की मात्रा भी अधिक थी। इसी कला में ऐतिहासिक नाटकों की नींव भी पड़ी।

कालचक्र की गति स्थिर नहीं रहती। समाज में नई नई विचार धाराएँ उपस्थित होकर साहित्य में भी अपने अनुकूल परिवर्तन किया करती हैं। यद्यपि हिन्दी का नाटक साहित्य नवीन युग की देन है तथापि उसमें भी नये और पुराने का अन्तर हो गया है। किन्तु यह प्राचीन कहाँ समाप्त होकर नवीन को जन्म देता है यह कहना कठिन है। इतना अवश्य है कि इन दोनों को मिलाने वाला युग आचार्य द्विवेदी द्वारा द्वितीय उत्थान के नाम से कहा गया है।

इस उत्थान में बंगला नाटककार श्री द्विजेन्द्रलाल राय तथा रवि बाबू के अनुवादों का प्राधान्य रहा। गद्य युग के आगमन ने अनुवादों की ओर के इस झुकाव को और भी प्रगति प्रदान की। राय महोदय के नाटक इतिवृत्तात्मक होने पर भी भावपूर्ण अवश्य थे। बंगला नाटकों की गलदश्रु भावुकता को इन्हीं नाटकों ने हिंदी में भी अवतरित किया। रवीन्द्र बाबू के नाटकों में भावात्मकता की प्रचुरता है। अनुवादों के अतिरिक्त कुछ मौलिक नाटक भी लिखे गये जिनमें कुछ साहित्यिक दृष्टि से रचे गये तथा कुछ तत्कालीन पारसी रंगमंच के साथ समझौते रूप में। मिश्रबंधुओं का 'नेत्रोन्मीलन', पं० बदरीनाथ भट्ट का दुर्गावती, चंद्रगुप्त आदि राय देवीप्रसाद पूर्ण का चंद्रकला भानुकुमार, मैथलीशरण गुप्त का चंद्रहास, पं० जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी का 'मधुर मिलन', आदि इस प्रसंग में उल्लेखनीय हैं। नाटक कम्पनियों के लिये लिखे गये नाटकों में नारायण प्रसाद बेताब, पं० राधेश्याम कथावाचक, हरिकृष्ण जौहर और आगा हश्र प्रधान हैं। बेताब जी का महाभारत

बहुत लोक प्रिय हुआ। कथावाचक राधेश्याम जी के नाटक अधिकतर पौराणिक हैं। उनके 'वीर अभिमन्यु की बहुत ख्याति हुई। इन नाटकों ने साहित्य का गौरव बढाने की अपेक्षा लोक रुचि को तुष्ट करने में ही अधिक योग दिया। संस्कृत तथा अंग्रेजी के नाटकों के प्रति विशेष मोह रखकर अनुवाद करने वालों में ला० सीताराम का नाम महत्व-पूर्ण है। श्री सत्यनारायण ने भवभूति के 'उत्तर राम चरित' और मालती माधव' का अनुवाद बड़ी सरल भाषा में किया।

नाटकों के विकास के तृतीय उत्थान का आरंभ श्रीजयशंकर प्रसाद से माना जा सकता है। धार्मिक विषयों से हटकर कुछ इतिहासिक और सामाजिक नाटक लिखे गये। पहले नाटकों के चरित्रों में आदर्शवादिता का प्राधान्य होने से अंतर्द्वन्द्व कम होता था, पर भीतरी और बाह्य संघर्ष नये युग के नाटकों का प्रधान स्वर बन गया। चरित्रों का विकास और अंतर्द्वन्द्वों का सम्यक् विश्लेषण प्रसाद के नाटकों की विशेषता रही। प्रसाद के सभी पात्र अपनी अपनी संस्कृतियों के प्रतिनिधि हैं ('चंद्रगुप्त' में चोट चंद्रगुप्त और सिकन्दर की नहीं, वरन् चाणक्य और अरस्तू की है—भारतीय और यूनानी सभ्यता की है।) प्रसाद इतिहास वेत्ता, दार्शनिक और कवि थे। अतः उनके नाटकों में इतिवृत्ता-त्मकता के साथ भावुकता का सुखद समन्वय हुआ है। इतिहास के इतिवृत्त में जीवन की दार्शनिक समस्याओं पर भावुकता से प्रकाश डाल कर उसमें कवि हृदय से निकले हुए गीतों को बड़ी चातुरी से यथा स्थान प्रस्तुत किया गया है। भारतीय सभ्यता की विशेषताओं का उद्घाटन करते हुए उन्होंने स्त्री पात्रों को विशेष महत्व दिया है। त्याग और तपस्या की यह देवियाँ आत्मोत्सर्ग की जीवित मूर्तियाँ हैं। कल्याणी और मालविका सी नारियाँ अद्वितीय हैं। तपस्विनी देवसेना का स्पर्श पापी को भी पवित्र बना सकता है।

विभिन्न प्रकृतियों की प्रवृत्ति के अनुसार प्रसाद चरित्र-चित्रण करने में

अत्यन्त सफल हुए हैं। यदि भटार्क जैसे क्रूर-अविश्वासी पात्र उनकी सृष्टि हैं तो चाणक्य जैसे पात्र भी नाटक संसार को गौरवान्वित करते हैं। देवसेना' जैसी दृढ़व्रता और विजया जैसी चंचल स्वभाव वाली स्त्रियां भी उनकी ही सृष्टि हैं। प्रसाद के नाटकों में करुणा का प्राधान्य बौद्ध धर्म की छाप है। नाटकों का आख्यान प्रायः भारतीय इतिहास को स्वर्ण युगों की देन है। 'करुणालय' 'गीति नाट्य' (Melo Drama) है जो एक वैदिक घटना पर आधारित है। राज्य श्री हर्ष काल की वस्तु है। जनमेजय पुराणों की गाथा है। 'अजातशत्रु' बौद्धकाल के आरम्भ की, 'चंद्रगुप्त' मौर्य काल के आरम्भ स्कंद गुप्त गुप्तकाल के अन्तिम समय की वस्तु है। तात्पर्य यह कि सामग्री एकत्र करने मे हलचल पूर्ण संधि युगों को भी विशेष महत्त्व दिया गया है। प्रसाद के अंतर में यद्यपि कला की नवनीत मूर्ति झांक रही है किंतु वह ऐसे ही है जैसे खँडहर के ढूहों में पीछे उनका ऐतिहासिक वैभव—व्यंग्यमय और अस्फुट। उनकी तलवार और रक्त पिपासा के पीछे मानवीय और प्राकृतिक मधुरिमा चलती है। इन सब में कवि का एक महत् उद्देश्य इतिहासकार का सा छिपा हुआ है। वह मानों भारतीय सभ्यता के तंतुओं को बटोर कर रखना चाहता है। ऐतिहासिक नाटकों को छोड़ काल्पनिक नाटकों में 'कामना' सुप्रसिद्ध है। प्रस्तुत रूपक अभौतिक और आचरण के भावात्मक तत्वों को रूपक दिया गया है। इस प्रकार प्रसाद के नाटकों में एक अध्ययनाक्रान्त, संस्कृतमना, परिष्कृत सोद्देश्य प्रणाली दृष्टिगोचर होती है। प्रसाद तक नाटकीय विकास का एक युग समाप्त होता है।

प्रसाद युग के अन्तिम चरण में ही हरिकृष्ण प्रेमी ने मुगल कालीन भारत को लक्ष्य बनाकर सरल और चलती भाषा में रक्षाबन्धन, जौहर······ आदि नाटक लिखे। इन नाटकों की विशेषता

उनकी अभिनेयता में है। प्रसाद के नाटक अभिनेय न होने के कारण रंगमंच के लिए अधिक उपयुक्त सिद्ध न हुए किन्तु प्रेमी जी के नाटक इस दिशा में पूर्ण सफल हुए अतः उनका खूब प्रचार हुआ।

अतीत को लेकर हम मानव जीवन की शाश्वत समस्याओं का उद्घाटन कर सकते हैं किन्तु समय समय पर उदधि में उठने वाली युगीन समस्याएं अछूती रह जाती हैं। इसलिए आधुनिक नाटककार अतीत के स्वर्ण मोह में न पड़ कर वर्तमान के लोहे को अधिक मूल्यवान् समझने लगा है। नाटकों का विषय भी अब अभिजात्य वर्ग न रहकर निकटवर्ती मध्यवर्ग हो गया है। उनकी समस्यायें हमारे सामने जीवित रूप में आती हैं। वर्तमान समाज की दौड़-धूप और कार्य व्यग्रता का भी प्रभाव हमारे नाटकों पर पड़ रहा है। आधुनिक काल के नाटक कारों में "अंजना" के रचयिता सुदर्शन, वरमाला आदि के रचयिता गोविन्दबल्लभ पंत, उदयशंकर भट्ट आदि का नाम उल्लेखनीय है। नये सिरे से यथार्थवादी दृष्टिकोण रखकर चलने वालों में लक्ष्मीनारायण मिश्र (सिंदूर की होली, राजयोग, मुक्ति का रहस्य) वत्सराज, दशाश्वमेध का नाम महत्वपूर्ण है। सेठ गोविन्ददास के नाटक इतिहास और कल्पना के साथ भारतीय जीवन का चित्र प्रस्तुत करने में सफल हैं। हर्ष, शशिगुप्त, राम से गांधी आदि उनके सुन्दर नाटक हैं।

एकांकी नाटक वर्तमान संस्कृति समयानुसार कुछ संकोच प्रधान है। सभी चीज में कांट छांट है। अब रामायण, महाभारत लिखने का समय नहीं रहा। मुक्तक का प्रचार है। उपन्यास के स्थान में कहानी ने प्रवेश कर लिया है। नाटक को चलचित्रों से प्रतिद्वन्द्विता करनी पड़ती है। अतः आधुनिक नाटक अधिक संक्षिप्त और वास्तविक हो चला है। रंगमंच के संकेत भी पूर्णतः वर्जित हैं। पात्रों का भी थोड़ा बहुत शब्द चित्र खींचा जाता है। आधुनिक एकांकी नाटक पश्चिम की देन है। एकाँकी

नाटककारों में रामकुमार वर्मा, भुवनेश्वर प्रसाद, उपेन्द्रनाथ अश्क, चन्द्रगुप्त विद्यालंकार, उदयशंकर भट्ट आदि का स्थान इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण है। इनमें कुछ तो अपने एकांकी में कल्पना और कविता को प्राधान्य देते हैं। और कुछ पौराणिक नाटक लिखकर नाटकीय साहित्य की शोभा बढा रहे हैं। कोई इतिहास की ओर झुक रहा है। इसके अतिरिक्त जी० पी० श्रीवास्तव ने फ्रांसीसी नाटककार मोलियर के नाटकों का अनुवाद तो नहीं किया किंतु उसको हिन्दुस्तानी रूप अवश्य दिया। डा० लक्ष्मण स्वरूप ने अपनी मोलियर नामक पुस्तक में मोलियर की जीवनी और नाट्य कला के विद्वत्ता पूर्ण परिचय के साथ 'बनिया चला नवाब की चाल' नामक नाटक 'Le Bourgeois Gentle home' के अनुवाद मे लिखा। श्री उदय-शंकर भट्ट ने 'समस्या का अंत' एकांकी नाटक लिखकर अपनी प्रतिभा का अच्छा परिचय दिया है।

इस युग में जितने साहित्यिक नाटक हैं वह अनभिनेय हैं इसका कारण यह है कि इन नाटकों के लिए रंगमंच का प्रायः अभाव सा ही है। पिछले बीस वर्षों से तो रंगमंच का स्थान सिनेमा ने ले लिया है। प्राय: साहित्यिक नाटक पाठ्यग्रंथ मात्र ही हैं। जो कुछ अभिनय होता भी है वह संस्थाओं, समाजों और समितियो द्वारा ही। रेडियो फ़ीचर' और रेडियो नाटक के रूप में एक भिन्न प्रकार की नाट्य कला भी हमारे सामने आ रही है। हिंदी के कुछ श्रेष्ठ नाटककार और एकांकीकार इन नई साहित्यिक कोटियों पर लेखनी चला रहे हैं। श्री भट्ट, अश्क, विष्णु प्रभाकर, रामचंद्र तिवारी, भगवती चरण वर्मा आदि ने कुछ सुन्दर रेडियो फीचर लिखे हैं। इनमें ध्वनि को प्रमुखता देकर भाव व्यंजना की जाती है।

आधुनिक हिन्दी साहित्य में उपन्यास

उपन्याम कथा-साहित्य का पूर्ण विकसित अंग है। मनोरंजन की सामान्य मानव प्रवृत्ति के साथ कुतूहल और जिज्ञासा का भी कथा-साहित्य के विकास में हाथ रहता है। कथा-कहानी जब अपने पूर्ण विकास के बिन्दु पर पहुँच कर मानव मन के द्वन्द्व और संघर्ष का चित्रण करना प्रारम्भ करती है वहीं से उपन्यास के यथार्थ रूप का उदय मानना चाहिए। प्राचीन समय में कथा-कहानी का मनोरंजन ही उद्देश्य समझा जाता था किन्तु आज मनोविनोद मात्र से उपन्यास साहित्य की इति श्री नहीं होती। आज तो उपन्यास कथानक और चरित्रों के माध्यम से मानव-जीवन की जटिलतम गुत्थियों को सुलझाने का साधन बना हुआ है। हिन्दी साहित्य में उपन्यास का प्रारम्भ यद्यपि इस उद्देश्य से नहीं हुआ किन्तु आज उसका यही रूप हमें दृष्टिगत होता है।

भारतीय प्राचीन वाङमय में औपन्यासिकता का उतना प्राधान्य नहीं जितना आधुनिक युग में दृष्टिगत होता है किन्तु कुतूहल, मनोरंजन उपदेश और औत्सुक्य की दृष्टि से वह साहित्य परिपूर्ण हैं। नीति कथाओ का तो पुरातन साहित्य में प्राचुर्य है ही—हाँ, जीवन संघर्ष और अन्तर्द्वन्द्व के विशद चित्रों और वर्णनों का उसमें अभाव है। इसलिए उपन्यास-साहित्य को सभी मनीषी विद्वान् आलोचकों ने आधुनिक युग की वस्तु स्वीकार किया है। उपन्यास सम्राट् स्वर्गीय प्रेमचन्द ने तो स्पष्ट कहा है कि उपन्यास की वर्तमान कला हमने पश्चिम से सीखी है।

हिन्दी उपन्यास का जन्म हिन्दी-गद्य के वर्त्तमान रूप के साथ ही मानना चाहिए। हिन्दी के ब्रजभाषा गद्य में वार्त्ता साहित्य या टीकाओं के अतिरिक्त कुछ नहीं लिखा गया अतः खड़ी बोली गद्य के साथ ही उपन्यास का प्रारम्भ होता है। हिन्दी गद्य के प्रथम चार लेखकों के

सैयद इंशा अल्लाखां ने 'रानी केतकी की कहानी' लिखी। यों कहने को तो यह आख्यायिका का ही रूप है किन्तु कलेवर और कथा के आधार पर इसे उपन्यास की सीमा में स्थान दिया जा सकता है। वर्त्तमान उपन्यास-कला की दृष्टि से इसमें कलात्मक विकाश का सर्वथा अभाव है। यथार्थ में हिन्दी का प्रथम मौलिक उपन्यास तो लाला श्रीनिवास दास लिखित 'परीक्षा गुरु' ही है। कथा-वस्तु और वर्णन शैली दोनों ही की दृष्टि से इसमें औपन्यासिकता है और प्रेम के दायरे के बाहर भी जीवन के अन्य रूपों पर लेखक की दृष्टि इस उपन्यास में गई। इस उपन्यास में दिल्ली के एक सेठ की कहानी है जो कर्ज में फंसकर जीवन से घबड़ा उठता है। इस संकट की घड़ी में एक उदार सज्जन मित्र उसका उद्धार करके उसके सामने आदर्श रखते हैं। लेखक ने इस कथानक को परिपुष्ट और पल्लवित करने में अनेक ग्रन्थों की सहायता ली है। उपन्यास के अन्तिम भाग में उपदेशात्मक रूप प्रबल हो गया है। नीति, धर्म और चरित्र की प्रधानता के कारण कथानक का शिथिल होना स्वाभाविक है।

इस युग के अन्य लेखकों में ठाकुर जगमोहनसिंह, अम्बिकादत्त व्यास, बालकृष्ण भट्ट और गोपालराम गहमरी मुख्य हैं। आश्चर्य है भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने उपन्यास साहित्य के प्रणयन का प्रयास नहीं किया कदाचित् इसी कारण उनके जीवन काल में हिन्दी साहित्य में कोई उच्च कोटि का उपन्यास नहीं लिखा गया। हां बंगला और अंग्रेजी भाषा से अनुवाद करने की ओर कुछ लेखकों का ध्यान अवश्य गया जिसके कारण हिन्दी उपन्यास की भाव-सामग्री में परिवर्तन हुआ।

उपन्यास के आदि युग के द्वितीय चरण में दूसरे लोकप्रिय लेखक श्री देवकीनन्दन खत्री हैं। उपन्यास साहित्य की ओर जनता की रुचि आकृष्ट करने में खत्री जी ने जो योग दिया वह सर्वथा सराहनीय है। कहते हैं कि खत्री जी की रचनाएं—"चन्द्रकान्ता" और "चन्द्रकान्ता-

सन्तति" ने उर्दू भाषा लोगों को भी हिन्दी सीखने के लिए विपुल प्रलोभन उपस्थित करके आकृष्ट किया और इस प्रकार हिन्दी प्रचार का स्तुत्य कार्य भी उनकी रचनाओं द्वारा सम्पन्न हो सका।

खत्री के उपन्यासों मे जिस तिलस्म और ऐयारी का जाल बिछा पड़ा है उसका मूल बीज उन्होने फारसी के "तिलस्म होशरुवा" से लिया था। कुछ भी हो, इतना तो मानना ही पडेगा कि खत्री के उपन्यासों में घटना वैचित्र्य कुतूहल और मनोरंजन का इतना प्राचुर्य्य है कि इनके कथा-जाल में उलझ कर पाठक अपने को भूल जाता है। जीवन के सजीव और संश्लिष्ट चित्र इन उपन्यासों में नहीं मिलते—इनके पात्र भी विलक्षण शक्ति सम्पन्न एक तरह के बाजीगर हैं जिनकी चातुरी देखने और पढने में मन उलझा रहता है। इसी युग में जासूसी उपन्यासों का भी दौर दौरा रहा। गोपालराम गहमरी ने पहले तो अंग्रेजी से जासूसी उपन्यासों का अनुवाद किया बाद मे मौलिक जासूसी उपन्यास भी लिखे। उनके उपन्यासों की संख्या कुल मिला कर दो सौ से भी ऊपर है। इन उपन्यासों में भी औत्सुक्य एवं आतंक की ही प्रधानता थी। घटनाओं को अति रंजित करके प्रस्तुत करना और पाठक को विस्मय-विमुग्ध स्थिति में आतंक से भर देना इनका लक्ष्य था जिसमें गहमरी जी को पर्याप्त सफलता मिली। गहमरीजी की भाषा में प्रवाह और मुहावरों का सुन्दर रूप स्थान स्थान पर देखने को मिलता है। इस युग के मौलिक उपन्यास कारों में श्रीकिशोरी लाल गोस्वामी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। कुछ समालोचकों की दृष्टि में तो हिन्दी-उपन्यास क्षेत्र में कला की दृष्टि से गोस्वामीजी पहले उपन्यास कार हैं जिन्होंने घटनाओं के घटा टोप से उपन्यास को मुक्त करके उसमें कल्पना और भावनाओं का समावेश किया, सामाजिक एवं ऐतिहासिक उपन्यासों का भी एक प्रकार से गोस्वामीजी से ही सूत्रपात हुआ। यद्यपि इन में उन्हें सफलता प्राप्त

नहीं हुई किन्तु प्रेम की संकीर्ण परिधि से उपन्यासों को समाज के स्तर तक लाने का श्रेय आपको ही दिया जाना चाहिए। गोस्वामीजी के बाद उस युग में उपन्यास साहित्य में अयोध्यासिंह उपाध्याय के 'ठेठ हिन्दी का ठाठ' को छोड़ कर कोई उल्लेखनीय रचना नहीं हुई।

इस युग तक हिन्दी उपन्यास अपने प्रारम्भिक युग या बाल्यकाल की दशा में ही था। केवल मनोरंजन करना ही उपन्यास का प्रमुख ध्येय समझा जाता था। किन्तु अब युग परिवर्तित हो चुका था। ज्ञान-विज्ञान के आलोक में नूतन युग के सन्देश का प्रसार होने के साथ देश की सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक चेतना में क्रान्ति दृष्टिगोचर होने लगी थी अतः एक ऐसे लेखक की आवश्यकता थी जो कोरे चित्रण से आगे बढ़कर देश की विवध समस्याओं पर उपन्यास के द्वारा प्रकाश डाले। मुन्शी प्रेमचन्द युग परिवर्तन के इस पुनीत कार्य के लिए नवीन शैली और नूतन प्रतिभा लेकर कथा-क्षेत्र में अवतरित हुए। प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों में देश की विभिन्न समस्याओं को चित्रित करने के साथ मानव मन की सूक्ष्म गुत्थियां, संघर्षों और अन्तर्द्वन्द्वों की बड़ी सुन्दर शैली से अभिव्यक्त किया। व्यापक सहानुभूति और मानव पक्ष की प्रधानता के साथ प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों के कथानक को मनोरंजक बनाया, गांधी युग के प्रथम तीन चरणों में सामाजिक, राजनीतिक और साम्प्रदायिक जीवन के सभी पहलुओं का तथा समस्याओं का जैसा सटीक वर्णन प्रेमचन्द के उपन्यासों में मिलता है वैसा हिन्दी के किसी दूसरे साहित्यकार में उपलब्ध नहीं होता। प्रेमचन्द जीवन के सभी रूपों में रम सकते थे, उनकी प्रतिभा एक महा काव्यकार की प्रतिभा थी, उनके उपन्यासों में शहर और गांव, शिक्षित और अशिक्षित, नौकर और मालिक, पटवारी और जमींदार मजदूर किसान, क्लर्क साहूकार सभी वर्गों का बड़ा ही सुन्दर वर्णन है। प्रेमचन्द ने अपने उपन्यासों में देश की नाड़ी को टटोल कर उसका

निदान भी प्रस्तुत किया और यह कहने में हमें संकोच नहीं कि सेवा सदन, प्रेमाश्रम, निर्मला, वरदान, कर्मभूमि, रंगभूमि और गवन से गोदान तक आते आते उन्होंने जीवन और जगत् की समग्रता का पूरा चित्र अंकित करने में पूर्ण सफलता प्राप्त की। हिन्दी उपन्यास क्षेत्र में प्रेमचन्द युग प्रवर्त्तक होने के साथ भाषा, भाव, कला और अभिव्यक्ति की दृष्टि से भी एक दम मौलिक कहे जा सकते हैं। प्रेमचन्द के साथ ही विश्वम्भर नाथ शर्मा कौशिक और जयशंकर प्रसाद का नाम भी उल्लेखनीय है। कौशिक जी की उपन्यास कला विकसित नहीं हुई क्योंकि आख्यायिका में ही उनकी वृत्तियां विशेष रूप से रमती थीं। प्रसाद जी ने अपनी विलक्षण प्रतिभा का परिचय उपन्यास क्षेत्र में दिया। कंकाल, तितली और इरावती, प्रसाद की उपन्यास कला के सुन्दर निदर्शन हैं। इस युग में श्री वृन्दावन लाल वर्मा ने उपन्यास क्षेत्र में ऐतिहासिक कथानकों का प्रयोग कर इतिहास के शुष्क कंकाल में अनुभूति, कल्पना और भावना का जैसा सुन्दर सन्निवेश किया निश्चय ही ऐतिहासिक उपन्यासों की दृष्टि से कोई और लेखक नहीं कर सका। वर्मा जी के गढ़ कुंडार, विराटा की पद्मिनी, झांसी की रानी, कचनार, मृगनयनी, अचलमेरा कोई आदि उपन्यास इतने सुन्दर बन पड़े हैं कि हिन्दी साहित्य उन पर गर्व कर सकता है। बाबूजी की शैली में नाटक कार की प्रतिभा का सम्मिश्रण होने से एक प्रकार का ओज और प्रवाह आ जाता है जो पाठक को आदि से अन्त तक मुग्ध किये रहता है।

प्रेमचन्द युग के मध्य काल से ही हिन्दी उपन्यास क्षेत्र में एक मौलिक प्रतिभा सम्पन्न लेखक का उदय हुआ—वे हैं श्रीजैनेन्द्रकुमार। उन्होंने सब से प्रथम 'परख' नामक एक छोटा सा उपन्यास लिखा जिसमें कला या टेकनीक की नवीनता पाकर पाठक को आनन्द मुग्ध होकर लेखक की सराहना करनी पड़ी। जैनेन्द्र ने उपन्यास द्वारा

सूक्ष्म भावनाओं को वाणी और अभिव्यक्ति दी—जीवन के दार्शनिक तथ्यों को उपन्यास में नूतन प्रणाली से अंकित किया। परख के बाद त्यागपत्र, सुनीता,सुखदा आदि उपन्यासों में उनकी मौलिकता का अच्छा रूप हमें मिलता है। इसी युग के सुरुचिपूर्ण लेखकों में श्री प्रतापनारायण श्रीवास्तव का नाम भी उल्लेखनीय है विदा और विकास आपके मनोहर उपन्यास हैं। श्री चतुरसेन शास्त्री ने कहानी और निबंध के साथ उपन्यास भी लिखे, इनका नवीनतम उपन्यास 'वैशाली की नगर बधू' एक विशालकाय सुन्दर उपन्यास है। श्री बेचन शर्मा उग्र एक शक्तिशाली शैली निर्माता गद्य लेखक के रूप में हिन्दी में आये। टकसाली और मर्मस्पर्शी भाषा के लिये उग्र जी का नाम सदा स्मरणीय रहेगा। आपने वास्तुवादी दृष्टि कोण से कुछ उपन्यासों में समाज के वीभत्स और घृणित वर्ग के चित्र अंकित किये जो घासलेटी नाम से पुकारे जाने लगे। उग्र जी ने एक दर्जन के लगभग उपन्यास लिखे हैं।

आधुनिक युग के उपन्यास लेखकों में श्री भगवतीचरण वर्मा, उपेन्द्रनाथ अश्क, भगवतीप्रसाद बाजपेयी, अनूपलाल मंडल, यशपाल, हीरानन्द सच्चिदानन्द वात्स्यायन, अज्ञेय आदि प्रमुख हैं। भगवतीचरण वर्मा का चित्रलेखा, टूटती कड़ियां, आखिरी दांव, इस्टॉलमेंट आदि कृतियां उच्चकोटि की है। बाजपेयी जी के उपन्यासों में आदर्श और यथार्थ का सुन्दर समावेश रहता है। यशपाल के उपन्यास कम्युनिस्ट विचारधारा के पोषक, यथार्थ का नग्न रूप प्रस्तुत करने वाले साम्प्रदायिक कोटि के उपन्यास हैं। अज्ञेय का उपन्यास 'शेखर' हिन्दी साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान रखता है मनोवैज्ञानिक शैली से कथानक को प्रस्तुत करने में अज्ञेय की कला सर्वथा नूतन है। 'नदी के द्वीप' अज्ञेय का नया उपन्यास है जिस पर अंग्रेजी भाषा शैली का प्रभाव है।

संक्षेप में, हिन्दी उपन्यास अपने विकास काल से आजतक निरन्तर प्रगति पथ पर अग्रसर हो रहा है। मानवमन की भावनाओं के चित्रण के साथ जीवन का सर्वाङ्गीण चित्र प्रस्तुत करना आज उपन्यासकार का ध्येय हो गया है। अंग्रेजी, बंगला, मराठी और गुजराती अनुवादित उपन्यासों से हिन्दी उपन्यास को विकास के लिए अच्छा विस्तार मिलता है। आज का हिन्दी उपन्यास साहित्य न केवल मनोरंजन का साधन है अपितु वह जीवन की गुत्थियों को सुलझाने मे सहायक होने के साथ मन के गहन-गह्वर अन्तराल में बैठ कर उसके विविध रूपों का चित्रण करने में सफल हो रहा है। निश्चय ही हिन्दी उपन्यास का भविष्य उज्ज्वल है।

आधुनिक हिन्दी कहानी

कथा कहानी, गल्प और आख्यायिका शब्द जो प्रायः समानार्थक हैं, छोटी काल्पनिक कहानी के लिये प्रयुक्त होते हैं। छोटी कहानी की कथा वस्तु कल्पना के आधार पर गठित होती हैं, अतः इस प्रकार की कहानी या गल्प को यथार्थ घटना वाली ऐतिहासिक कहानी से सहज ही मे पृथक किया जा सकता है। इस प्रकार की आख्यायिका को इतिहास प्रसिद्ध घटना से सम्बन्ध रखने वाली कहानी की श्रेणी में रखना या पौराणिक आख्यानों वाली कहानियों के साथ जोड़ना किसी प्रकार भी युक्ति संगत नहीं कहा जा सकता।

हिन्दी साहित्य में कहानी का अपने नवीन रूप में प्रादुर्भाव हुए अभी बहुत लम्बा समय नहीं हुआ है। हिन्दी गद्य के विकास के लगभग पचास वर्ष बाद हम कहानी को अपने वर्तमान स्वरूप में गठित होता हुवा पाते हैं। (यद्यपि कतिपय कथा इतिहास लेखक हिन्दी गद्य के विकास-काल से ही कथा तत्व को भी अंकुरित होता हुवा मानते हैं किन्तु हमारा उनसे इस विषय में सप्रमाण विरोध है)

कहानी कला के मौलिक तत्वों की कसौटी को यदि निर्णायक माना जाय तो निश्चय ही ईसा की बीसवीं शताब्दी के साथ ही हिन्दी में आधुनिक गल्प का प्रारम्भ समझना चाहिये। हाँ साथ ही इतना अवश्य ध्यान रखना चाहिये कि हिन्दी गद्य के विकास अरुणोदय में कथा कहने की प्रकृति हमें कतिपय प्रारम्भिक गद्य लेखकों में भी दृष्टिगोचर होती है। सैयद इंशा अल्ला खाँ की रानी केतकी की कहानी राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द का 'राजा भोज का सपना' और भारतेन्दु जी का 'कुछ आप बीती और कुछ जग बीती' कहानी का इस प्रकरण में उल्लेख करना आवश्यक है।

इन कहानियों में कथा तत्व के अतिरिक्त वर्तमान गल्प के किसी मौलिक तत्वों की हमें उपलब्धि नहीं होती। आधुनिक समीक्षा की कसौटी पर यदि उनकी परख की जाय तो उनमें कथावस्तु के अतिरिक्त मनोवैज्ञानिक चरित्र-चित्रण पात्र-कथोपकथन आदि तत्वों का सर्वथा अभाव परिलक्षित होता है। फलतः ईसा की उन्नसवीं शताब्दी के अन्तिम चरण तक हम आधुनिक गल्प के बीज को किसी भी लेखक में अंकुरित होता हुवा नहीं देखते। यथार्थ में बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ मे बंगला और अंग्रेजी कथा संग्रहों के अनुवाद के साथ हिन्दी कहानी का अंकुर विकसित हुआ है।

हिन्दी कहानी का प्रथम उत्थान जैसा कि ऊपर कहा गया है बंगला और अंग्रेजी के अनुवाद से प्रारंभ हुआ। हिन्दी में सरस्वती पत्रिका के प्रकाशन के साथ ही कुछ अनुदित कहानियां इसमें प्रकाशित हुई। कुछ कहानियां आनुपूर्वीय अनुवाद न होकर उनके आंशिक या भाव लेकर रची गई। कुछ लेखकों ने कल्पित नाम रख कर भी हिन्दी में कहानियाँ लिखीं। इसी प्रकार हिन्दी पाठक को छोटी कहानी का रस अनुभव अथवा अवसर मिला और प्रतिभाशाली लेखकों को कहानी लिखने की प्रेरणा।

इसी प्रथम उत्थान में वृन्दावन के श्री किशोरीलाल गोस्वामी का नाम प्रथम कथा लेखक के रूप में लिया जाता है। गोस्वामीजी के विषय में कहा जाता है कि वे अपने उपन्यासों में बंगला के भावानुवाद को कहीं कहीं स्थान देने में संकोच न करते थे उसी अनुमान के आधार पर कुछ विद्वानो का विश्वास है कि उन्होने कहानी लेखन मे भी बंगला की किसी कहानी से प्रेरणा लेकर ही अपनी पहली कहानी इन्दुमती की रचना की। इन्दुमती सन् १९०० में सरस्वती में प्रकाशित हुई और उसने पाठकों का ध्यान अपनी नवीनता की तरफ़ आकृष्ट किया। कला की कसौटी पर भले ही गोस्वामीजी की यह कहानी उत्तम कोटि की न हो, किन्तु हिन्दी कहानी के क्रमिक विकास में उसका विशेष महत्त्व है उसी समय के आस पास श्री रामचन्द्र शुक्ल ने भी एक कहानी लिखी इस कहानी को भी अनेक लेखकों ने अँग्रेजी का छायानुवाद समझा है। कहानी में कथा तत्वों का विकास न होकर पांडित्य पूर्ण गद्य की छटा अधिक है। सन् १९०७ ई० मे बंग महिला की लिखी दुलायी वाली कहानी हिन्दी कहानी साहित्य में पर्याप्त प्रसिद्ध है। इसमें वातावरण तथा प्रसंगानुकूल कथोपकथन की सृष्टि करने में लेखक को अच्छी सफलता प्राप्त हुई है किन्तु मनोवैज्ञानिक संघर्ष और अन्तर्द्वन्द्व का सूक्ष्म चित्रण इस कहानी में भी नहीं हो सका। कहानी किसी हद तक मनोरंजक कुतूहलपूर्ण तो है किन्तु जीवन के आन्तरिक अन्तर्द्वन्द्व को प्रकाशित करने की क्षमता अपने भीतर न जुटा सकी।

द्वितीय उत्थान-प्रथम उत्थान में कहानी के उदय होने के बाद लेखकों की उदासीनता के कारण कहानी साहित्य के निर्माण मे द्रुतगति से कार्य नहीं हुआ। तीन चार लेखकों की मौलिक रचनाओ के सिवाय प्रायः अनुवाद से ही लोग कथा-रस का पान कर संतुष्ट बने रहे। द्वितीय उत्थान का प्रारम्भ हम दो प्रकार की विचार धाराओं के ही उद्गमो से पाते हैं।

प्रथम उद्गम तो है काशी की इन्दु पत्रिका जिसमें सर्व प्रथम श्री स्व० जयशंकर प्रसाद की ग्राम शीर्षक कहानी प्रकाशित हुई इनके साथ ही विश्वंभरनाथ, राजा राधिकारमनसिंह, चंडीप्रसाद हृदयेश आदि ने भी मौलिक कथायें प्रस्तुत कीं। आरंभ में आदर्शवादी दृष्टिकोण से जीवन की व्याख्या करने की प्रवृत्ति इन लेखकों में पाई जाती है। कहानी के निर्माण में कल्पना, आदर्श, माधुर्य तथा आकर्षण का पुट देकर उसे कुछ दिव्य सा बनाने की इच्छा भी इनमें बनी रही। कल्पना के उड़ान और भाषा के माधुर्य के लोभ में पड़कर इन लेखकों ने यथार्थ की उपेक्षा तथा लौकिक भावनाओं की अतिरंजित छाप अपनी कहानी में अत्यधिक मात्रा में की। फलतः कहानी अपने प्रकृत सरल रूप का त्याग करके गद्य काव्य के क्षेत्र में जा पहुँची और भाव तथा भाषा दोनों की माधुर्य छटा से इतने अशान्त हो गये कि उनका प्रयोजन भी परिवर्तित सा प्रतीत होने लगा। कल्पना लोक में पहुँचकर पाठक की भाव भूमि जैसे छूट गई और वह गगन बिहारी सा बन कर भूला भूला उद्भ्रान्त सा बन गया।

हृदयेश की कहानियों ने तो भाषा के प्रसाधन को ही अपने जैसे ध्येय बना लिया और लेखक कहानी लेखक न रह कर जैसे कवि बन गया। इन कहानियों में रोमांस तथा माधुर्य भाव की मात्रा प्रचुर थी इस कारण उनकी अवहेलना तो न हो सकी किन्तु कहानी के यथार्थ तत्वों का अभाव पाठक को खटका अवश्य। सौभाग्य की बात यह हुई कि इस वर्ग के प्रायः सभी लेखकों से यह बात छिपी न रही और शीघ्र ही इस त्रुटि का परिहार करके सबने कथावस्तु को नूतन कलेवर में प्रतिष्ठित करना प्रारम्भ किया। श्री जयशंकर प्रसाद ने कुछ कहानियाँ लिखने के बाद ही अपनी कला का रूप बदल दिया और मनोविज्ञान की कसौटी पर खरी उतरने वाली मनोहर कहानियों की आपने रचना की। उनकी कहानियों के अन्तराल में मर्म को

स्पर्श करने वाली करुणा और समवेदना की अविरल धारा सतत प्रवाहित होती रहती है। इसी युग के लेखक श्री राजा राधिकारमन प्रसादसिंह ने मनोहर कथानक को अपना कर बड़ी आकर्षक कहानियां लिखीं। द्वितीय उत्थान के ही दूसरी ओर कतिपय अन्य कहानी लेखक कहानी को उसके नवीन २ उपकरणों से सजाकर—दैनिक जीवन की सामान्य घटनाओं को अपना केन्द्र बिन्दु बना कर उसमें प्राण प्रतिष्ठा करने में निमग्न थे। जीवन और समाज के प्रति उनका दृष्टिकोण कोरा आदर्शवादी न होकर यथार्थवादी था। इस वर्ग के लेखक सामाजिक, धार्मिक तथा राजनीतिक समस्याओं को अपनी कहानी का विषय बनाने में लीन थे। इस काल के प्रति निधि लेखकों में पं० ज्वालादत्त शर्मा पं० चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, मुंशी प्रेमचन्द, विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक और सुदर्शन हैं। साथ ही आचार्य चतुरसेन शास्त्री, बेचन शर्मा, उग्र, गोविन्दवल्लभ पन्त, गोपालराम गहमरी आदि भी इसी युग में कहानी लिखने में व्यस्त रहे।

इस वर्ग के लेखकों में प्रायः सभी अपनी किसी न किसी विशेषता के लिये विख्यात हैं किन्तु कथा साहित्य में युगान्तर पैदा करने का गौरव प्राप्त करने वाले हैं श्री प्रेमचन्द। प्रेमचन्दजी से पहले कहानी ने जीवन को चारों तरफ़ से आवृत नहीं किया था। प्रेमचन्दजी उर्दू की पर्याप्त कहानियाँ लिख चुके थे। और उर्दू के सिद्धहस्त लेखक थे। आपने पहले धनपत राम नाम से उर्दू में पर्याप्त कहानियाँ लिखी थीं। उनके आगमन से हिन्दी कहानी में चटपटापन और भावों की मार्मिकता की प्रचुर मात्रा में वृद्धि हुई। एक प्रत्यक्ष दर्शी यथार्थवादी की तरह प्रेमचन्दजी ने जीवन के प्रत्येक विभाग को देखा। उनकी पैनी नजर से नगर और देहात का कोई वर्ग और विभाग छूटा नहीं है। सभी कुछ जैसे उनके लिये हस्तामलक है। मानव जीवन के प्रायः सभी संघर्ष और मानस द्वन्द्व उनकी गल्प में प्रति फलित होते हुये दृष्टिगोचर होते

हैं। पूर्व और पश्चिम की कहानी कला तथा शैली को अपना कर प्रेमचन्द्जी ने अपनी कहानी में नये रूप की सृष्टि की। उनका सबसे अधिक मौलिक पक्ष भारतीय गांव और मध्यम वर्ग की जनता थी। उनसे पहले देहाती जीवन पर हिन्दी मे इस व्यापक दृष्टिकोण से गल्प नहीं लिखी गई थी। गांव के जमींदार किसान पटवारी महाजन साहूकार आदि प्रेमचन्द की कहानियों में अपने प्रकृत रूप में आये और उनके चित्रण मे प्रेमचन्द की कल्पना की अनुभूति का ऐसा आश्रय मिला कि उनकी कला एक साथ अपूर्व तेज के साथ चमक उठी। भारत की नाडी को उन्होने भलीभांति टटोला और स्थिति का पर्यवेक्षण करके उसका निदान तथा उपचार भी अपनी कहानियों में सांकेतिक किया। प्रेमचन्द की कहानियो के संकेत उनके उपन्यासो की अपेक्षा अधिक प्रभावपूर्ण तथा मार्मिक हैं। अन्ध विश्वास रूढी परम्परा पालन तथा अज्ञान को लक्ष्य करके प्रेमचन्द ने जो कहानियां लिखी वे इस दृष्टि से और अधिक सफल हुई हैं।

सच पूछा जाय तो प्रेमचन्द ने ही सबसे पहले हिन्दी में कहानी को मनोवैज्ञानिक विश्लेषण तथा चित्रण का साधन बनाया। मानव-स्वभाव और संघर्ष का जैसा सजीव और सुन्दर विश्लेषण वे उप-स्थित कर सके दूसरा कोई उतनी सुन्दरता से न कर सका। प्रेमचन्द की अपनी विशेषता है कि वे अपने चरित्र-चित्रण तथा कथावस्तु में यथार्थवादी हैं किन्तु दृष्टिकोण के पूरे आदर्शवादी। यही कारण है कि वे भावुकता और रोमांस को अपनी कहानियों मे उतनी पूर्णता से स्थान नहीं दे सकते अर्थात् दे सके। वासना और स्वच्छन्द प्रेम पर अंकुश रखने की उनकी प्रवृत्ति कहानियों मे भी स्पष्ट दृष्टिगत होती है।

श्री पं० चन्द्रधर शर्मा गुलेरी ने संख्या की दृष्टि से यद्यपि केवल तीन कहानियां लिखीं किन्तु चरित्र चित्रण वर्णन तथा अनुभूति की सरसता के कारण वे सदा के लिये कथा-साहित्य में अमर होगये।

गुलेरी जी की उसने कहा था तो आज भी हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ कहानियों में गिनी जाती है। गुलेरी जी ने अपने पाडित्य को बचा कर कहानियों में आकर्षण तथा कुतूहल का जो सरल वातावरण पैदा किया वह उनकी कीर्ति को चिरस्थायी बना सका।

इसी वर्ग के प्रतिनिधि लेखकों में प्रेमचन्द के समसामयिक हैं श्री विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक तथा सुदर्शन। कौशिक जी पहले उर्दू में राग़िब नाम से कहानी लिखते थे। कथा वाङ्मय के क्षेत्र में वे प्रेमचन्द सम्प्रदाय के अन्तर्गत आते हैं। कथा निर्माण की कला में वे प्रेमचन्द के समान है। किन्तु विषय या वस्तु की दृष्टि से इनमें भिन्नता दृष्टिगोचर होती है। कौशिक जी का क्षेत्र प्रायः पारिवारिक जीवन तक सीमित था। प्रेमचन्द जी की तरह व्यापक क्षेत्र को आपने नहीं अपनाया। पारिवारिक जीवन के उतार चढ़ाव उसमें उठने वाले मानव-मन के अनेक भाव-विकार उसके सभी कोटि के व्यक्ति उनकी कथा के विषय बने। श्री सुदर्शन की कहानी-कला का विकास घटनाओं के परिवर्तन करने और हृदयग्राही मार्मिक चित्र अंकित करने में हुआ। उनकी भाषा चुस्त और व्यंगमयी है। आप कहानी में साक्षात् उपदेशात्मक प्रवृत्ति के लाने के विरोधी हैं। प्रेमचन्द जी की आदर्शवादी शैली भी आपको पसन्द नहीं। आपकी भाषा में जिस प्रकार का वेग और तूफान रहता है उसी प्रकार भावनाओं में भी विद्रोहात्मक प्रवृत्ति का ज्वालामुखी धधकता रहता है। ये तीनों कलाकार द्वितीय उत्थान के प्रतिनिधि लेखक कहे जाते हैं किन्तु युग परिवर्तन हुआ मुन्शी प्रेमचन्द जी द्वारा ही।

इस युग के अन्य लेखकों की चर्चा करना भी हम यहाँ आवश्यक समझते हैं। इस उत्थान में कुछ काल तक प्रथम जासूसी और कुतूहलपूर्ण तिलस्मी कहानियाँ भी लिखी गईं। जिनमें पाठक को विस्मय विमुग्ध करने वाली अद्भुत घटनाओं का जाल सा बिछा रहता है। श्री

गोपालराम गहमरी और खत्री इस क्षेत्र में प्रमुख लेखक हैं। खत्री का क्षेत्र उपन्यास था हाँ उन्होंने प्रचार की दृष्टि से पर्याप्त ख्याति प्राप्त की थी। तिलस्मय तथा अलौकिक एवं अद्भुत को यह अपनी रचना का मेरुदण्ड बनाते थे फलतः विलक्षण पाठक को उनमें अधिक समय तक समाने की शक्ति न थी हाँ सामान्य कोटि के पाठक घटनाओ के जाल में उलझे ऊट-पटाँग असम्भव बातों में भी रमे रह सकते थे। यथार्थ में खत्री को कहानी के क्षेत्र में सफलता नही मिली। श्री गहमरी ने अंग्रेजी की शैली पर अच्छी जासूसी कहानियाँ लिखीं। अपने क्षेत्र में वे अद्वितीय कहे जा सकते हैं। रोचकता कुतूहल तथा विस्मय की दृष्टि से जासूसी क्षेत्र मे गहमरी जी एक सफल लेखक हैं। उसी उत्थान में दो तीन कलाकारों ने समाज के वीभत्स, घृणित तथा रोमांचकारी लज्जास्पद चित्र भी अपनी कहानियों में उतारे। ये लेखक प्रकृतवादी कोटि में आते हैं। इस कोटि के प्रतिनिधि लेखकों में पांडेय बेचन शर्मा और आचार्य चतुरसेन हैं। ये दोनों ही लेखक गद्य शैली के मंजे हुये लेखक हैं। गद्य के इतिहास में इनके सम्प्रदायों की चर्चा होना अनिवार्य है। वाणी तथा कलम का वरदान प्राप्त होने के कारण कहानियों में सुन्दर भाषा तथा कथोपकथन की सृष्टि इनके लिये सहज संभाव्य थी किन्तु कथानक में उदात्त की कल्पना न करके ये कुत्सित और निन्दनीय को अपनाकर चले। फलतः दोनों लेखकों में प्रतिभा और कला की समृद्धि होने पर भी ये कथा-साहित्य में अपनी कहानियों को दीर्घजीवी न बना सके।

आचार्य चतुरसेन ने अपनी कला को तरह-तरह से बदल कर भी आजमाया। किन्तु कहानियों के मूल में प्रतिध्वनित होने वाली उनकी प्रच्छन्न अश्लीलता दूर न हुई। इन कहानियों में इन्होंने श्लील भावों को सँजोया है वे निस्संदेह बहुत सुन्दर बन पड़ी है। उग्र जी ने अपनी प्रारंभिक कहानियों में समाज के उपेक्षित वर्ग के कुत्सित रूप को

अनावश्यक रूप से खोल कर रखा और अपनी कला को अश्लील भावों मे अतिरंजित करने में ही लगाया। परिणाम यह हुआ कि साहित्य मे इस प्रकार के साहित्य की कटु आलोचना हुई और उनके साहित्य को घास लेटी साहित्य की संज्ञा दे दी गई।

प्रेमचन्द के प्रवाह क्षेत्र के बाहर कदम रखते ही हिन्दी कहानी का तृतीय उत्थान शुरु होता है किन्तु कुछ ऐसे लेखक है जो प्रेमचन्द संप्रदाय की अव्यक्त छाप लेकर भी नवीन शैली से कहानी लिखने में प्रवृत्त हुये। अपनी मौलिकता के कारण उन लेखकों के नाम इसी उत्थान के लेखकों में उल्लेखनीय हैं। यद्यपि इनमें से प्रायः सभी लेखकों का रचना-काल सन् १९२५ के आस पास तथा उनके बाद ही रहता है। इन लेखकों में सर्व श्री विनोदशंकर व्यास, गोविन्द वल्लभ पंत, मोहनलाल महतो, वियोगी, सियारामशरण गुप्त और चन्द्रगुप्त विद्यालंकार हैं। ये पाँचों लेखक इसी उत्थान मे कहानी लिखने लगे थे किन्तु उनकी कला का पूर्ण विकास बाद मे ही हुआ। इन्होने अपनी कृतियों में नये युग के आगमन की जैसी सूचना दी है उससे ऐसा लगता है कि मानों ये द्वितीय उत्थान तथा तृतीत उत्थान के सन्धिस्थल पर खड़े होकर दोनों युगों को जोड़ रहे हों।

हिन्दी कहानी में नवीन युग का प्रवर्तन करके भाषा भाव और अभिव्यंजना की शैली मे युगान्तर पैदा करने वालों में श्री जैनेन्द्र कुमार का नाम तृतीय उत्थान के लेखकों में सबसे पहले आता है। कहानी कला के विषय में अपने विचार प्रकट करते हुये उन्होंने एक स्थल पर लिखा है "कि हमारे अपने सवाल होते हैं, शंकायें होती हैं चिन्तायें होती हैं और उनका उत्तर और साधन का खोजने हम सतत प्रयत्न करते रहते हैं। हमारे प्रयोग होते रहते हैं। कहानी इस खोज के प्रयत्न का उदाहरण है।" कहानी को अपनी उलझनों को सुलझाने का प्रयोग मान कर ही जैसे जैनेद्रकुमार कहानी लिखने में प्रवृत्त

होते हैं। उन्होंने कहानी की टैकनिक या शास्त्रीय मर्यादाओं को ज्यों का त्यों अपने ऊपर लागू नहीं होने दिया। भाषा, भाव और अभिव्यंजना शैली में एक दम नये—मौलिक हैं। आदर्शवादी दृष्टिकोण को पारिभाषिक रूप से स्वीकार करके भी भारतीय आध्यात्मिक दृष्टिकोण तथा जीवन की समस्याओं के हल के लिये उच्चादर्श की कल्पना के कारण वे अपनी कहानियों में आदर्श की सीमाओं का पूर्ण तरह से अतिक्रमण नहीं कर पाये हैं। मानव मन के आभ्यन्तर को जान लेने की उनकी अपनी शैली है। अपनी सूक्ष्म दर्शन की इस प्रवृत्ति के कारण ही कदाचित् वे साधारण कोटि के पाठक के लिये दुर्बोध या गहन बन जाते हैं। रहस्यात्मक गुन्थियों को सुलझाने का मोह उन्हें कभी कभी अपने पात्रों को स्पष्ट व्यक्तित्व देने में—अपनी सूक्ष्म चिन्तन-प्रणाली के कारण ही—उन्हें सौ फी सदी सफलता नहीं मिल पाती। किन्तु इन सब बातों के रहते हुये भी यह मानना पड़ेगा कि जैनेद्रकुमार की कहानी कला एकदम मौलिक और अद्वितीय है। उनके पास कहानी निर्माण की स्वार्जित सृजन शक्ति है। स्वतन्त्र कलाभिव्यक्ति को लेकर ही कुमार जी इस नवीन युग के प्रवर्त्तक के रूप में कहानी क्षेत्र में अवतीर्ण हुए हैं।

जैनेन्द्रजी के बाद हिन्दी में हम कहानी लेखकों की बाढ सी आती हुई देखते हैं। तृतीय उत्थान को यदि १६२८ से १६५२ तक माने तो निश्चय ही इन चौबीस वर्षों में कहानी क्षेत्र में काव्य नाटक उपन्यास और निबन्ध लेखकों की अपेक्षा आठ-दस गुने लेखक पदा हुये हैं। कहानी लेखकों के इस बाहुल्य का कारण स्पष्ट है। जीवन संग्राम की जटिलता समस्याओं की बहुलता वर्ग जनित संघर्ष की तीव्रता और समय की न्यूनता ने ही कलाकार का ध्यान अन्य क्षेत्रों से हटा कर कहानी की ओर उन्मुख किया। थोड़े ही समय में तन्मयता के साथ मनोरंजक वस्तु पढ़ने की प्रवृति बढ़ी और कहानी ने इसकी

पूर्ति में योग दिया। फलतः कहानी की प्रचुरता हो गई।

तृतीय उत्थान के दस बारह सर्वोत्तम कहानियों के लेखकों के नाम यदि गिने जायें तो हमारी अपनी सम्मति मे सर्व श्री जैनेन्द्रकुमार, भगवती प्रसाद बाजपेयी, भगवतीचरण वर्मा, हीरानन्द सच्चिदानन्द वात्स्यायन अज्ञेय, कमलाकान्त वर्मा, उपेन्द्रनाथ अश्क, यशपाल, सुभद्राकुमारी चौहान, राहुल, सांस्कृत्यायन, सुमित्रानन्दन पन्त, महादेवी वर्मा और पहाड़ी होंगे। उच्च कोटि के इतने लेखकों का एक युग में उत्पन्न होना हिन्दी कहानी के उज्ज्वल भविष्य का द्योतक है किन्तु हिन्दी के सौभाग्य से इतने ही नहीं इनके साथ और भी अनेक उत्तम कलाकार हम कहानी क्षेत्र में देख रहे हैं, जिनमें स्त्री लेखिकाओं मे श्रीमती सत्यवती मलिक, ऊषादेवी मित्रा, होमवती, चन्द्रकिरण, कमलादेवी चौधरी शिवरानी आदि का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

इनके अतिरिक्त सर्व श्री इलाचन्द जोशी, वृन्दावनलाल वर्मा, प्रतापनारायण श्रीवास्तव ने उपन्यास क्षेत्र में अपनी कला का अच्छा परिचय देकर कहानी में भी अपनी कलम का चमत्कार दिखाया है। इन तीनों लेखकों का क्षेत्र प्रमुख रूप से उपन्यास ही है फिर भी कहानी कला में भी इन्हें अच्छी सफलता मिली है। श्री राजेश्वरप्रसाद सिंह, राधाकृष्ण, भैरवप्रसाद गुप्त, विष्णुप्रभाकर, रामचन्द्र तिवारी आदि नई पीढ़ी के लेखक हैं जिन्होंने अच्छी संख्या में कहानियाँ लिखकर अच्छी ख्याति पाई है। हास्यरस की कहानियां लिखने में प्रेमचन्द काल में भी जी०पी०श्रीवास्तव की धूम रही किन्तु उनकी कहानियों का हास्य निम्न कोटि का रहा। गम्भीर पाठक के लिये उसमें कोई आकर्षक तत्व नहीं है श्री अन्नपूर्णानन्द तथा कृष्णदेवप्रसाद की हास्यरस की कहानियाँ अच्छी बन पड़ी हैं। इधर कतिपय लेखकों ने आध्यात्मिक विषयों को भी अपनी कहानी का विषय बनाया है। 'सवेरा' और संघर्ष

श्री भगवत शरण उपाध्याय की इसी शैली की रचनाओं के संग्रह हैं।

तृतीय उत्थान के लेखकों में कतिपय प्रसिद्ध कलाकारों की संक्षेप में समीक्षा भी प्रस्तुत करना हम आवश्यक समझते है। इस युग के लेखकों में श्री भगवतीप्रसाद बाजपेयी ने युग की समस्याओं को चित्रित करने का प्रयत्न प्रेमचन्द सम्प्रदाय के अनुसार ही किया है। आपकी रचनाओं के मूल में सेक्स-सम्बन्धी भावना स्थान स्थान पर देखने में आती है। वाजपेयी जी आदर्श और यथार्थ का संमिश्रण अपनी कहानी में अंकित करते हुये आये, किन्तु क्रमशः प्रगतिशील साहित्य की आवाज के साथ उन्होने भी विद्रोह और सामाजिक वैषम्य को दूर करने का घोष अपनी कहानी का विषय बनाया। आज वे अपेक्षाकृत पुराने होने पर भी नई पौध के लेखकों के साथ प्रगति की पुकार लगाने वालों में हैं। श्री भगवतीचरण वर्मा मूलतः कवि हैं। कवि के रूप आपकी भावनायें अधिक मार्मिक एवं तीव्र होती हैं कहानी के क्षेत्र मे आपने सामाजिक आचार-विचार पर तीक्ष्ण व्यंग को अपना विषय बनाया। सामाजिक एवं धार्मिक व्यवस्थाओं पर प्रश्नवाचक चिन्ह लगाकर वर्मा जी ने पाठक को सजग और सशङ्क बनाया।

वर्माजी की भाषा कहानियों में सरल तथा मर्म स्पर्शी रही है। श्री हीरानन्द सच्चिदानन्द वात्स्यायन अज्ञेय हिन्दी के प्रतिभा सम्पन्न कुशल कलाकार हैं। कविता कहानी उपन्यास और निबन्ध सभी क्षेत्रों में आपकी नूतन शैली और मौलिकता को स्थान मिला है। मनोवैज्ञानिक शैली पर चरित्र-चित्रण तथा कथोपकथन की सृष्टि अज्ञेय की कला की विशेषता है। कभी-कभी आप भी गहन गुत्थियों को सुलझाने लग जाते है। श्री उपेन्द्रनाथ अश्क ने अपनी कहानियों में भी नाटकीय तत्वों का अच्छा संमिश्रण किया है जिसके फलस्वरूप कहानी में प्रवाह स्फूर्ति एवं चमक बढ़ गई है। भाषा में लोच उर्दू की तड़क-भड़क

मुहावरों की चमक और गठन की मनमोहक छटा आप सुदर्शन के अनुरूप दीख पड़ते हैं। सामाजिक कुरीतियों को केन्द्रविन्दु बना कर उनके चारों ओर अपनी कला का जाल बुनना उनकी चातुरी का द्योतक है। रोमांटिक कहानियों में हृदय को कचोटने वाली नूतन उद्भावनायें अश्क जी की कलाचातुरी का सुन्दर निदर्शन है।

इस उत्थान के अन्य लेखकों में श्री यशपाल का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। यशपाल की कला में दृश्यों का अवतरण तथा रीति-नीति पर भंडाफोड़ जिस कौशल से होता है वैसा हिन्दी के कम लेखकों में पाया जाता है। यशपाल की भावना कम्युनिस्ट है। समाज के भीतर छिपे अत्याचार तथा शोषण के साथ ही वे नैतिक मर्यादाओं पर भी तीक्ष्ण व्यंग करने में नहीं चूकते। आपकी कहानियों में मार्क्सवादी दृष्टिकोण का अंकन अधिक रहता है। उनमें इसी कारण कहीं कहीं प्रचार भावना इतनी उग्र हो जाती है कि कुछ खटकने लगती है अन्यथा हिन्दी साहित्य में यशपाल की कहानियां उच्चकोटि की है। आज सम्प्रदायिक विरोध के कारण कुछ आलोचक उनकी कला की उपेक्षा करते हैं किन्तु तथ्य यह है कि यशपाल हिन्दी कहानी साहित्य के अमर कलाकार हैं। श्री राहुल सांस्कृत्यायन की कहानियों में भी प्राचीन भारतीय वर्णाश्रम धर्म तथा आस्तिक भावनाओं पर कटाक्ष दीख पड़ते हैं। सोशलिस्ट भावना आपकी कहानियों में मुखर हो गई है। समाज रचना के नूतन सिद्धान्तों का प्रवर्तन जैसे राहुलजी की कहानियों का उद्देश्य हो।

इन लेखकों के अतिरिक्त और भी कितने ही लेखक उत्तम शैली से हिन्दी में कहानियां लिख रहे हैं। आज के उदीयमान लेखकों में विष्णु प्रभाकर श्रीराम शर्मा तथा भैरवप्रसाद गुप्त का नाम उल्लेखनीय है। श्री केशवदेव शर्मा और श्री रामकृष्णदेव गर्ग का कलम थाम कर बैठ

जाना हिन्दी का दुर्भाग्य है। इन दोनों लेखकों की कहानियाँ संख्या में कम होने पर भी कहानी जगत मे अपना अमर स्थान रखती हैं।

कहानी की नवीन दिशा

संक्षेप में आज हिन्दी में कहानी साहित्य का बाहुल्य है। आज कहानी जीवन के बहुत निकट आ गई है और वह जीवन की बड़ी ही मनमोहक शैली से व्याख्या करने में व्यस्थ है। आधुनिक युग के नवीन लेखकों ने कहानी को केवल मनोरंजन का ही साधन नहीं बनाया अपितु वे समाज के उद्बोधन से भी कहानी को ही माध्यम बना रहे हैं।

कला का जीवन के साथ सीधा सम्बन्ध स्थापित करके कला के लिये वाली बात से मानों उन्होंने कुछ निषेध भर किया हो। उनकी दृष्टि मे मनोवैज्ञानिक आधार पर तथ्य चित्रण करने वाली कहानी ही सर्वोत्तम कहानी है। आज का लेखक आंख खोलकर समाज और उसके संघर्ष को देखता है और अपनी आख्यायिका में उसके चित्र • जीव शैली में अनुभूति कल्पना तथा भावुकता के संमिश्रण के क्षेत्र से उतारता है। आज कला लेखक मानव मन की दुर्बलता और क्षमता दोनों के सुन्दर दृश्य उपस्थित करके प्रकृत चित्रण का विश्वासी है। मानवीय शक्ति पर दैवीय या आध्यात्मिक विभूति की पताका फहराना उसे आज अभीष्ट नहीं। आज प्राणी और प्रेरणा में उसे जीवन दीखता है। पुरातन तथा रूढ़ि जर्जर परम्पराओं को लादकर वह चलना नहीं चाहता।

सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक तथा मानसिक सभी प्रकार के संघर्ष और अन्तर्द्वन्द्व के चित्र आज भी कहानियो में देखने को मिलते हैं। यही कारण है कि कहानी साहित्य की मात्रा सबसे अधिक रही। कहानियों के बाहुल्य का कारण है आज कल का जीवन संग्राम और

समयाभाव। अब वह समय नहीं रहा कि हम भूतनाथ या चन्द्रकान्ता सन्तति जैसा विशाल उपन्यास लेकर बैठ जायें और सारे दिन उसी के चक्कर में पडे समय गंवा दें। कार्य संकुल होने के कारण आज हम चाहते हैं कि थोड़े समय में अधिक से अधिक मनोरंजन कर लें। आज हम लम्बा चौड़ा उपन्यास नहीं चाहते। आज हमें ऐसी कहानी चाहिये जो पन्द्रह बीस मिन्ट में पढी जा सकें। हम चाहते हैं कि वह कहानी थोड़े से थोड़े शब्दों में कही जाय। उसमें एक भी वाक्य क्या एक शब्द भी व्यर्थ न हो। उसका पहला वाक्य ही मन को आकृष्ट कर ले और अन्त तक अपने में मुग्ध किये रहे। उसमें कुछ ताजगी हो कुछ विश्वास हो कुछ विश्लेषण हो साथ ही कुछ जीवन तत्व भी हों।

आधुनिक हिन्दी कहानी में हम उपर्युक्त सूक्ष्म तत्वों का सुन्दर समावेश पाकर उसके उज्ज्वल भविष्य की आशा करते हैं। आज का युग प्रगति और चेतना का युग है। प्रगतिवाद को लेकर आज साहित्य के प्रत्येक विभाग में नये प्रयोग हो रहे हैं। कला और साहित्य का मापदंड जीवनोपयोगी दृष्टि से बन रहा है। मार्क्स और फ्रायड की विचार धारा अद्यतम हिन्दी कहानी में भी स्थान पा रही है। सामाजिक विषमता और वर्ग भेद मिटाने के लिये कहानी भी मुखरित हो उठी है अतः केवल मनोरंजन या रोचक कहानियों की अवतारणा ही आज कहानी के विषय नहीं हो सकते।

स्थूल सौन्दर्य से आज का लेखक प्रेरणा नहीं पाता। उसे सौन्दर्य की झलक मात्र से ही पाठक की भावनाओं को स्पर्श करना होता है। फलतः सेक्स और समाज वैषम्य वर्गभेद और शोषण रोटी और रुदन आज की कहानी के प्रमुख विषय बनें हुये हैं। किन्तु इन्हीं विषयों में लीन रह कर साहित्य का सर्वाङ्गीण विकास सम्भव नहीं। आशा है आज के लेखक देश की स्वातन्त्र्य भावना से उद्‌बुद्‌ होकर राष्ट्रीय चेतना तथा साहित्य-विकास को लक्ष्य करके भी अपनी कहानी को

अनुप्राणित करेंगे फिर भी आज की हिन्दी कहानी साहित्य समृद्ध है और उसके उज्ज्वल भविष्य की आशा सहज ही में की जा सकती है।

आधुनिक हिन्दी साहित्य में निबंध

आधुनिक हिन्दी साहित्य में **नूतनता की दृष्टि से निबन्ध-साहित्य** अपेक्षाकृत अधिक नवीन है। निबंधों का प्रारम्भ एवं प्रचार मासिक तथा साप्ताहिक पत्रों द्वारा हुआ। वस्तुतः निबंध का आधुनिक रूप पश्चिम की देन है। आधुनिक काल में पाश्चात्य साहित्य के प्रभाव के कारण लेखकों की व्यक्तिगत विशेषता, भाषा की स्वच्छन्द अबाध गति और नवीन शैली के संम्मिश्रण से निबंधों पर साहित्यिकता की छाप लगी और धीरे धीरे इसका व्यापक प्रचार होता गया।

नाटकों की भांति निबंधों का आविर्भाव भी भारतेन्दुकाल में ही हुआ। बालकृष्ण भट्ट हिन्दी के सर्वप्रथम निबंध लेखक माने जाते है। प्रथम उत्थान के लेखकों में प्रतापनारायण मिश्र, बालमुकुन्द गुप्त, प्रेमधन, जगमोहनसिंह, अम्बिकादत्त व्यास, पं० माधवप्रसाद मिश्र आदि का नाम लिया जा सकता है। इन लेखकों के विषय और उपादान बहुत ही सीमित थे अधिकांश लेखक साहित्यिक, सामाजिक तथा कुछ अन्य विशेष विषयों पर ही लिखते थे। होली, विजयादशमी, दीपावली, रामलीला आदि पर लिखे प्रबंधों में जनता के जीवन का सर्वांगीण चित्र प्रस्तुत करना इन निबंधों की विशेषता थी। इसके लिये वे वर्णनात्मक एवं भावात्मक दोनो शैलियों का सुन्दर संम्मिश्रण करते थे। बालकृष्ण भट्ट ने "कवि और चितेरे की डांडामेदी", 'मुग्धमाधुरी' 'चन्द्रोदय' एवं 'आंसू' आदि निबंध लिखे। प्रतापनारायण मिश्र ने कुछ सामान्य विषय--'बुढ़ापा', 'मां', 'होली' आदि पर भी लिखा किन्तु जीवन का सर्वांगीण पता वे भी न देख सके। इस काल के निबंध—साहित्य का उदय किसी बाहरी प्रेरणा

से नहीं हुआ वरन् उसका जन्म परिस्थिति की आवश्यकता और हृदय की उमंग से हुआ। अतः निबंध-साहित्य वाणी का विकास अवश्य था किन्तु साथ में ही उसका संबन्ध तत्कालीन राजनीतिक एवं सामाजिक परिस्थितियों से था। उसमें निर्वैयक्तिकता न थी—कहीं कहीं तो उनकी स्वच्छन्दता और वैयक्तिकता दोष की सीमा तक पहुँच गई थी।

द्वितीय उत्थान काल के आरम्भ में ही निबंध का मार्ग प्रदर्शन करने वाले दो ग्रन्थ प्रकाशित हुए— "बेकन विचार रत्नावली" और "निबन्ध मालादर्श।" पहली पुस्तक पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी की थी और दूसरी पं० गंगाप्रसाद अग्निहोत्री की। यह युग भाषा के परिमार्जन का था। भाषा के शुद्ध और व्याकरण सम्मत होने पर द्विवेदी जी ने अधिक बल दिया। उनके समय में निबंध का विषय समाज, राजनीति तथा चटपटेपन में ही सीमित न रहा। द्विवेदी जी के समय में उपयोगिता के साथ ज्ञान विस्तार की प्रवृत्ति जाग्रत हुई और उनकी प्रेरणा से ऐतिहासिक, पुरातत्व संबन्धी एवं आलोचनात्मक लेख लिखे गये। दूसरी भाषाओं से जो अनुवाद हुए उससे भी साहित्य समृद्ध हुआ और हिन्दी लेखकों में जाग्रत हुई किन्तु वह कबीर के शब्दों में "जूठी पत्तल" की ही बात रही।

द्विवेदी जी के वात्सल्यमत प्रोत्साहन के कारण बहुत से नये लेखक भी प्रकाश में आये और कुछ लोगों ने नवजागरण की चहल-पहल में स्वयं ही लिखना आरम्भ किया। स्वयं द्विवेदी जी के अतिरिक्त उस समय लेखकों में पं० गोविन्दनारायण मिश्र, पं० माधव-प्रसाद मिश्र, पं० चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, बा० गोपालराम गहमरी, बा० ब्रजनन्दन सहगल, पं० पद्मसिंह शर्मा प्रभृति प्रमुख हैं। पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी ने सन् १९०२ में 'सरस्वती' के सम्पादन का भार लिया और अपना सारा समय लिखने में लगाया। लिखने

की सफलता इस बात में मानते थे कि कठिन से कठिन विषय भी ऐसे सरल रूप में रख दिया जाय कि साधारण समझने वाले पाठक भी उसे बहुत कुछ समझ जाँय। इनके लेख अधिकतर बातों के संग्रह रूप में ही हैं। भाषा के नूतन शक्ति चमत्कार के साथ नये नये विचारों की उद्भावना वाले निबंध बहुत कम मिलते हैं। स्थायी निबंध बहुत कम मिलते हैं। स्थायी निबंधों की श्रेणी में तो दो ही चार लेख जैसे 'कवि और कविता' 'प्रतिभा' आदि आ सकते हैं। यद्यपि यह निबंध विचारात्मक श्रेणी में आयेंगे, किन्तु विचारों की प्रौढ़ता उनमें नहीं मिलती। पं० माधवप्राद मिश्र ने "सुदर्शन" नामक पत्र के संपादन काल में साहित्य सम्बन्धी बहुत से लेख समीक्षाएं एवं निबंध लिखे। पर्व त्यौहारों तथा भिन्न भिन्न ऋतुओं में पड़ने वाले उत्सवों पर निबंध लिखने की जो परम्परा भारतेन्दु के सहयोगियों ने चलाई थी वह द्वितीय उत्थान में आकर इन्हीं पर समाप्त हो गई। लोकसामान्य स्थाई विषयों पर मिश्र जी के केवल दो लेख मिलते हैं, 'धृति' और 'क्षमा'। इनके निबंध प्रायः भावात्मक होते थे और धारा शैली पर चलते थे। बाबू गोपालराम गहमरी के निबंधों की भाषा बडी चंचल, चटपटी प्रगल्भ और मनोरंजक होती थी। विलक्षण रूप खड़ा करना उनके निबंधों की विशेषता है। बाबू बालमुकुन्द गुप्त (१९२२—१९६४) ने सामयिक और राजनीतिक परिस्थिति को लेकर कई मनोरंजक प्रबंध लिखे जिनमें 'शिवशंभु का चिट्ठा' बहुत प्रसिद्ध है। गुप्त जी की भाषा बहुत चलती विनोदपूर्ण एवं सजीव थी। क्योंकि पहले वे उर्दू के लेखक थे इसलिए उनकी हिन्दी बहुत चलती और फड़कती हुई होती थी। पं० गोविन्दनारायण मिश्र की लेखशैली का पता इनके सम्मेलन भाषण और "कवि और चित्रकार" नामक लेख से लगता हैं। मिश्र जी के निबंधों को समास अनुप्रास में गुंथे शब्द गुच्छों का एक अटाला ही कहा जा सकता है। पं० चन्द्रधर गुलेरी

ने 'समालोचक' नामक एक पत्र में बहुत ही अनूठी लेखनशैली का परिचय दिया। अनेक गूढ़ शास्त्रीय विषयों तथा कथा प्रसंगों की ओर विनोदपूर्ण संकेत करती हुई इनकी वाणी चलती थी। शैली की जो विशिष्टता और अर्थगर्भित वक्रता गुलेरी जी में मिलती है वह और किसी लेखक में नहीं। इसके अतिरिक्त पूर्णसिंह जी के लेखों में भाषा की नई गति विधि तथा आधुनिक जगत की विचारधारा से उद्दीप्त नूतन भाव-भंगी के दर्शन होते हैं। उनकी लाक्षणिकता हिन्दी गद्य साहित्य को एक नई देन थी। योरप के जीवन क्षेत्र की अशांति से उत्पन्न आध्यात्मिकता की, किसानों और मजदूरों की महत्व भावना की जो लहरें उठीं उनमे वे बहुत दूर तक बहे। 'आचरण की सभ्यता' 'मजदूरी और प्रेम' और 'सच्ची वीरता' उनके उल्लेखनीय निबंध हैं। बाबू गुलाबराय ने भावात्मक एवं विचारात्मक दोनों प्रकार के निबंध लिखे। जैसे कर्त्तव्य संबन्धी रोग निदान और चिकित्सा, समाज और कर्त्तव्य पालन आदि।

बाबू गुलाबराय और पदुमलाल पन्नालाल बख्शी की विचारधारा औ शैली दोनों के क्षेत्र में द्विवेदी युग तथा समसामयिक युग की बीच की कड़ी हैं। गुलाबराय के निबंधों में साधारण हास परिहास से लेकर गंभीर विवेचना प्रधान साहित्यिक निबंध तक लिखे गये। पदुमलाल पन्नालाल बख्शी ने 'सरस्वती' द्वारा हिन्दी लेखकों को प्रथम बार विदेशी साहित्य की ओर आकर्षित किया। हिन्दी आलोचना में नए तथ्यों का समावेश करने में प्रथम हैं। उनकी भाषा उनके साहित्य और अध्ययन के प्रतिरूप है। भावुकता पूर्ण लेखकों में वियोगी हरि तथा माखनलाल चतुर्वेदी प्रमुख हैं। वियोगी हरि का प्रधान क्षेत्र भक्ति और अध्यात्म है। कवित्व और पांडित्य का अपूर्व सम्मिश्रण कर शैली को इन्होंने मनोरंजक बना दिया है। उनकी कोमल सानुप्रास प्रवाहमयी वाग्धारा पाठक को दूर तक बहा ले जाती

है। चतुर्वेदी जी के गद्य में हमें गद्य के काव्यात्मक रूप का चरम उत्कर्ष मिलता है। हृदय के समस्त रस से सिक्त उनकी लेखनी साधारण से साधारण विषय को मूर्तिमान करने में सफल है। गद्य गीतों की एक नई शैली का प्रवर्त्तन रायकृष्णदास ने किया। प्रादेशिक (बनारस) शब्दों का पुट उनके गद्य में मिलता है—वाच्यार्थ की अपेक्षा पदार्थ को प्रधानता देने के कारण भाव सहज गम्य नहीं हैं।)

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल (सं० १९४१—१९९७) के निबंध क्षेत्र में पदार्पण करने से निबंध साहित्य में एक नया जीवन आया। द्विवेदी युग में विषय विस्तार और परिमार्जन तो पर्याप्त हुआ किन्तु उस काल में उतना विश्लेषण और गहराई में जाने की प्रवृत्ति न उत्पन्न हो सकी। आचार्य शुक्ल के मनोवैज्ञानिक निबंध बेकन (Bacon) के निबंधों से टक्कर ले सकते हैं और साथ ही उनमें हास्य व्यंग्य की भी झलक दिखाई देती है जो उन्हें लोहे के चने होने से बचाये रखती है। आचार्य शुक्ल के गंभीर निबंध 'चिंतामणि' में संग्रहीत हैं। भावों के विश्लेषण से संबंध रखने वाले निबंध भाव विषयक होते हुए भी कोरे भावात्मक ही नहीं, वरन् उच्च कोटि के विचारात्मक हैं। दूसरे साहित्यिक निबंध जिनमें कुछ सैद्धांतिक आलोचना से संबंध रखते हैं जैसे साधारणी काव्य और व्यक्ति वैचित्र्यवाद, और कुछ व्यावहारिक आलोचना के हैं, जैसे भारतेन्दु हरिश्चन्द्र आदि। शुक्ल जी के मनोवैज्ञानिक निबंधों की भी अन्विति उनकी आलोचनाओं से की जा सकती है ये भारतीय रस-सिद्धांत पर अविलंबित हैं और उनका संबंध जीवन सागर का निजी अवगाहन से है। 'लज्जा और ग्लानि' का आधार भरत की आत्मग्लानि है। लोभ और प्रीति का उत्तर समझ लेने पर जायसी के रत्नसेन के प्रेम की आलोचना भली प्रकार समझी जा सकती है। शुक्ल जी के निबंधों में विषय की प्रधानता है अथवा व्यक्ति की, इनका निर्णय उन्होंने पाठकों पर छोड़ा है। इन निबंधों में

शैली का ही व्यक्तित्व है।

डा० श्यामसुन्दर दास की लेखनी ने आधुनिक सभ्यता के विधानो के बीच की लिखा पढ़ी के ढंग पर हिन्दी को ले चलने में बहुत कुछ योग दिया। भाषा संबंधी अनेक लेख उनकी 'हिन्दी भाषा और साहित्य' मे मिलते है। हास्य विनोदपूर्ण लेख लिखने वालो में प० जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी का नाम उल्लेखनीय है।

विश्व विद्यालयों के उच्च शिक्षा क्रम के भीतर हिन्दी साहित्य का समावेश हो जाने के कारण उत्कृष्ट कोटि के निबन्धों की आवश्यकता की पूर्ति करने का प्रयत्न किया जा रहा है। नई पीढ़ी के लेखको ने निबन्ध को कला बना दिया है। जहाँ एक ओर निबधो मे वैज्ञानिक संतुलन और एक सूत्रता की प्रवृत्ति बढ़ी है जैसा डा० धीरेन्द्र वर्मा के निबन्धो तथा विश्व-विद्यालयों से प्रकाशित गवेषणा पूर्ण लेखो से प्रकट होता है वहाँ दूसरी ओर निबन्ध भावना प्रधान, रसात्मक। कलात्मक एवं कथात्मक भी हो गया है। भावना प्रधान निबन्धो के लिखने वालो में माखनलाल चतुर्वेदी, उग्र एवं वियोगी हरि प्रमुख हैं, चतुर्वेदी के गद्य में हमें गद्य के काव्यात्मक रूप का चरम उत्कर्ष मिलता है यहाँ तक कि कहीं कहीं तो उनका गद्य विनोद छन्द का पद्य बन जाता है। हृदय के समस्त रस मे सिक्त उनकी लेखनी से साधारण से साधारण विषय मूर्तिमान हो जाता है। उग्र की शैली मुख्यतः काव्यात्मक और प्रेरणात्मक है। वियोगी ही के अधिकांश निबन्ध साहित्य या अध्यात्म की सीमाएँ होती है। उनकी कोमल, सानुप्रास और भावमयी भावधारा पाठक को दूर तक बहा ले जाती है। आलोचना को कलात्मक रूप में प्रस्तुत करने वालों में डा० नगेन्द्र, राय कृष्णदास, सिया राम शरण गुप्त, अज्ञेय, हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, महादेवी वर्मा और डा० रघुवीरसिंह के निबन्ध विशेष महत्व पूर्ण हैं। डा० नगेन्द्र 'वाणी के न्याय मन्दिर में' 'यौवन के द्वार पर', 'हिन्दी

उपन्यास' आदि निबन्धो और रेखा चित्रों में एक उत्कृष्ट कलाकार के रूप मे हमारे समक्ष आते हैं। गम्भीर विवेचना को इतना आकर्षक रूप पहले नहीं मिला था। राय कृष्णदास की रचनाएँ निबन्ध की अपेक्षा गद्य गीत के अधिक निकट है। पं० हज़ारी प्रसाद द्विवेदी के अधिकांश निबंध साहित्यिक एवं सांस्कृतिक है। उनमें तत्सम शब्दों और पांडित्य पूर्ण वाक्य खंडो की प्रधानता है, परन्तु 'अशोक के फूल' में संग्रहीत निबंधों में उनका कलापक्ष भी पूर्ण रूप से पुष्ट है। महादेवी वर्मा ने 'श्रृंखला की घडियां', 'अजीत की चल चित्रो' में काव्यात्मक रेखा चित्रो एवं हृदयग्राही अभिव्यक्ति का पूर्ण परिचय दिया है। ये चित्र इतने सहृदय, संवेदनशील तथा काव्यात्मक हैं कि वे सहज ही मुग्ध कर लेते हैं। कवि और काव्य की समीक्षा प्रस्तुत करने वाले लेखकों में श्री शान्ति प्रिय द्विवेदी, नन्द दुलारे वाजपेयी, विनय मोहन शर्मा, बख्शी, आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

वर्तमान युग में निबन्ध साहित्य ने बहुत थोड़े ही समय में आशातीत सफलता प्राप्त की है। निबन्ध साहित्य का भविष्य उज्ज्वल प्रतीत होता है। निबन्ध के विषयों का क्षेत्र विशाल, व्यापक, एवं समृद्ध हो गया है। अनागत भविष्य साहित्य में एक समृद्ध निबन्ध साहित्य का अवलोकन करेगा।

प्रमुख निबंधकार

श्री महावीर प्रसाद द्विवेदी का जन्म दौलतपुर ग्राम (जि० रायबरेली) में सम्वत् १६२१ में हुआ। कुछ समय तक रेल-विभाग में सरकारी नौकरी करने के उपरान्त आप साहित्य सेवा के विचार से 'सरस्वती' पत्रिका का सम्पादन करने के लिए प्रयाग आगये और उसी के द्वारा हिन्दी भाषा की बीस वर्ष तक निरन्तर नाना प्रकार से सेवा करते रहे।

द्विवेदी जी की शैली की कई विशेषताएँ हैं। पहली विशेषता तो उनकी शैली की यह है कि उसमें शब्दों का चयन विषयानुकूल और सुरुचिपूर्ण होता है। मिश्रजी या भट्टजी की तरह ग्रामीणता या प्रान्तीयता को द्विवेदी जी ने बड़ी सतर्कता से बचाया है। साथ ही विषय तथा परिस्थिति के अनुकूल वे अपनी भाषा और पदावली का स्वतन्त्र रूप खड़ा करने में समर्थ होते हैं। इसी कारण उनके लेखो में शैली की विविधता परिलक्षित होती है। विचारात्मक और गम्भीर विषयों पर लिखे लेख तत्सम प्रधान शब्दो से परिपूर्ण होते हैं तो व्यंगात्मक और व्यावहारिक विषयो पर लिखे गये लेख सरल तद्भव शब्दो में गुम्फित रहते हैं। संस्कृत के काव्यों का अनुवाद करके हिन्दी मे लाने की द्विवेदी जी को धुन थी अतः संस्कृत साहित्य की अभिव्यंजना शैली भी द्विवेदी जी के निबन्धो में देखी जाती है। आपने अंग्रेजी की कई पुस्तकों का अनुवाद हिन्दी में किया था, अतः व्यावहारिक विषयो के लेखों पर अँग्रेजी की भी छाप पड़ गई है।

द्विवेदी जी ने भारतेन्दु युग के बाद साहित्यिक आलोचना को नवीन रूप से जीवित किया। संस्कृत कवियों के गुण दोष दर्शन से प्रारम्भ करके उनके भाव पक्ष की ओर भी आपने संकेत किया। इन आलोचनाओ मे यद्यपि गहराई नहीं पाई जाती किन्तु उनका स्थान इस दृष्टि से महत्व पूर्ण है कि उनके द्वारा एक नवीन पद्धति का सूत्रपात हुआ और उनके समय में ही और लेखकों का ध्यान इस दिशा में गया।

सरदार पूर्णसिंह का जन्म सन् १८८२ में एवटाबाद में हुआ था। इन्टरमीजिएट तक शिक्षा प्राप्त कर आप व्यावहारिक रसायन शास्त्र का अध्ययन करने जापान की टोकियो इम्पीरियल यूनिवर्सिटी मे चले गये। वहाँ से लौटने पर आप देहरादून के फौरेस्ट कालेज में इम्पीरियल केमिस्ट के पद पर नियुक्त हुए। वहीं कार्य करते हुए आपका मार्च सन् १९३१ में देहान्त हुआ। आप अपने नाम के आगे अध्यापक

शब्द का प्रयोग करते थे।

सरदार साहब की शैली की विशेषताएँ उनके व्यक्तित्व से सीधा सम्बन्ध रखती हैं। आपके जीवन पर स्वामी रामतीर्थ का गहरा प्रभाव था। उनके प्रमुख शिष्य होने के नाते वेदान्त दर्शन की 'फिलासफी' को आपने अपने जीवन में क्रियात्मक रूप से स्थान दिया हुआ था।

भावुकता के आवेश में जैसे कंठ गद्गद् होकर आँखों से अश्रु झरने लगते है वैसे ही आपकी लेखनी से भावनाओं का स्रोत उमड़ा पड़ता है। लिखते समय आप लेखनी को पूरी छूट देकर विषय की विस्तृत परिधि में विचरने की स्वतन्त्रता दे देते हैं। एक ही बात को हेर-फेर कर नये रूप में प्रस्तुत करने का मोह आपकी शैली में चमत्कार और नूतन आकर्षण उत्पन्न पैदा करके पाठक को मनोरंजक कहानी के वातावरण में ले जाकर मस्त कर देता है। पंजाबी होने पर भी आपकी भाषा में अनूठा लोच और जादू है जो सरलता और सरसता के साथ प्रवाह का सुन्दर निदर्शन बनकर पाठक के सामने आता है। वाक्यों का गठन कहीं चुस्त और कहीं बिखरा हुआ, वाक्य कहीं बहुत छोटे और कहीं बहुत बड़े—शब्दों में कहीं उर्दू-फारसी का पुट और कहीं संस्कृत की छाप, एक साथ ये सब बातें उनकी शैली को नूतन और चित्ताकर्षक बना देती हैं। भावों में दार्शनिकता का पुट रहने से गंभीरता और उदारता का जो वातावरण लेखक उत्पन्न कर लेता है वह कई दृष्टियों से सराहनीय है। आपके निबंधों को पढ़ते समय पाठक की मनोदशा ठीक वैसी ही हो जाती है जैसी लेखक की लिखते समय रही होगी। निश्चय ही लेखक की यह महान् सफलता है और यदि इसको शैली का एक विशेष गुण माना जाय तो उचित ही है। आपके निबन्धों को पढते समय लगता है कि लेखक जो कुछ लिख रहा है वह उसकी अन्तरतम की सच्ची आवाज़ है जिसे कृत्रिमता से दूर ही वह सीधे-सादे रूप में ध्वनित करना चाहता है।

बाबू श्यामसुन्दर दास का जन्म सम्वत् १९३२ में काशी के एक खत्री घराने में हुआ था। प्रयाग विश्वविद्यालय से बी. ए. पास करने के बाद आप सेंट्रल हिन्दू स्कूल में अध्यापक हुये। उसके बाद लखनऊ में कालीचरण हाई स्कूल के प्रधानाध्यापक व और काशी विश्व-विद्यालय में हिन्दी प्रारम्भ होने पर वहां अध्यक्ष पद पर रह कर आजीवन कार्य करते रहे। आपकी अध्यक्षता में नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा हिन्दी शब्द सागर नाम का बृहत्कोश प्रकाशित हुआ। विश्व विद्यालयों की उच्च कक्षाओं के अनुकूल पाठ्य ग्रन्थों का आपने निर्माण किया। साहित्यालोचन, रूपक रहस्य, हिन्दी भाषा और साहित्य और भाषा विज्ञान इसी कोटि के हैं।

अध्यापक होने के नाते आपकी शैली में सुबोधता, सरलता और विषय प्रतिपादन क्षमता का आना नैसर्गिक है। भावाभिव्यक्ति के अनुरूप भाषा का निर्माण कार्य भी बाबू जी ने किया। उनका कहना था कि विकास शील साहित्य को नूतन शब्द निर्माण की ओर से उदासीन नहीं रहना चाहिए। भाषा विज्ञान जैसे गम्भीर और शास्त्रीय विषय पर ग्रन्थ लिखते समय आपने अनेक शब्दों का निर्माण किया। यद्यपि आपने संस्कृत के तत्सम शब्दों पर ही अधिक बल दिया किन्तु विषय प्रतिपादनार्थ सरल भाषा का प्रयोग करना ही आप आवश्यक मानते थे। शास्त्रीय गहन विषयों के प्रतिपादन में आपकी भाषा भावों के भार से आक्रांत हो कहीं कहीं अस्पष्ट भी हो गई है। ऐसे स्थलों पर आपका प्रयत्न रहता है कि एक ही बात को दो तीन बार घुमा फिरा कर कह दे ताकि पाठक को उलझन या भ्रांति न रहे किंतु कुछ स्थल फिर भी उलझे हुये रह जाते हैं। कदाचित अंग्रेजी के ग्रन्थों से सामग्री चयन करने के कारण यह स्थिति उत्पन्न होती है।

साधारणतः आपकी शैली परिमार्जित और प्रांजल है। भाषा गठित और विषयानुरूप सुसम्बद्ध होती है। विषय प्रस्फुटन के बाद

अंत में लिखते हैं कि 'सारांश यह है' 'संक्षेप में' 'इसका निष्कर्ष यह निकला कि—'इस प्रकार पुनरावृत्ति द्वारा फिर कथित विषय को चर्वित रूप में प्रस्तुत कर देते हैं। भावों के स्पष्टीकरण की ओर आप का विशेष ध्यान रहता है। उर्दू, फारसी के शब्दों का प्रयोग आपकी रचनाओं में प्रायः नहीं हुआ है— फारसी का तत्सम रूप तो आप ग्रहण करते ही नहीं। मुहावरों और लोकोक्तियों का भी प्रायः अभाव ही है। इस प्रकार की शैली स्वीकार करने में कदाचित प्रमुख कारण विषय-वस्तु की गंभीरता ही है। संक्षेप में आपकी गद्यशैली मौलिकता का कोई अनुकरणीय आदर्श प्रस्तुत न करके विषय प्रतिपादन के अनुरूप भाषा का पथ प्रशस्त करती है।

श्री पदुमलाल पन्नालाल बख्शी का जन्म मध्य प्रदेश के जबलपुर जिले में सन् १८९४ ई० में हुआ। आपने बी० ए० तक शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त साहित्य साधना को ही अपना ध्येय बनाया। बहुत समय तक आप प्रयाग में रहकर ही सम्पादन तथा स्वतंत्र लेखन कार्य करते रहे। आपके लगभग एक दर्जन निबन्ध संग्रह अबतक प्रकाशित हो चुके हैं। इस समय आप अपने घर पर रहकर ही साहित्य-साधना करते रहते हैं।

बख्शीजी की शैली में अपनी मौलिकता की छाप दो रूपों में दृष्टिगत होती है-एक तो अध्ययन की पृष्ठ भूमि पर सिद्धान्तों की अवतारणा करने में, दूसरे अपने मनन और चिन्तन के द्वारा साहित्यिक मत-वादों के विषय में नवीन तथ्यों के समावेश करने में। उनकी भाषा शैली उनके अध्ययन और मनन का अच्छा परिचय देती है। वाक्य-विन्यास में लाघव के साथ सरलता और प्रसाद गुण उनके गद्य की प्रमुख विशेषता हैं। बख्शीजी ने इतिहास, दर्शन, आलोचना कला, राजनीति आदि सभी विषयों पर निबन्ध लिखे हैं। सामयिक विषयों पर लिखे उनके लघुकाय निबंधों का संग्रह 'कुछ' तथा 'और कुछ' अपनी अभिनव

शैली के परिचायक हैं। दैनिक जीवन की क्षणिक प्रियतम अनुभूतियाँ तथा मन पर पड़े अमिट संस्कारों का साहित्यिक लेखा-जोखा रखने की जो शैली बख्शी जी की है वह अंग्रेजी निबन्धकारों में उपलब्ध होती है हिन्दी में इस कोटि के निबन्धकार विरल हैं। द्विवेदी युग का प्रभाव विरासत के प्राप्त करने के कारण भाषा परिष्कार और भाव सारल्य ही होना आपके लिए अनिवार्य है। बख्शी जी ने विपुल निबंध साहित्य का सृजन कर हिन्दी साहित्य को समृद्ध बनाया है।

श्री वियोगी हरि का जन्म संवत् १९५३ में छतरपुर में हुआ। आप मूलतः कवि हैं। आठ वर्ष की अल्पावस्था में ही श्रीगणेश पर एक कुण्डलिया रची। इसी कविता प्रेम ने इनकी गद्य शैली को भी पूर्णतः प्रभावित किया है। 'अंतर्नाद' और 'भावना' नामक दो गद्य-काव्य ग्रंथ आपके प्रसिद्ध हैं। आपको 'वीरसतसई' नामक ओजस्वी ग्रंथालकार में जड़ित सातसौ दोहों के उपलक्ष में मंगलाप्रसाद पारितोषिक मिला। वियोगीजी ने वीर रस को ही सब रसों का आत्मा माना है। इन्होंने 'विरह-वीर' की कल्पना कर शृङ्गार (संयोग-शृङ्गार) काव्य के रचयिताओं की रचनाओं से मलिन सरस्वती के अंचल को धोने का अनोखा प्रयत्न किया है। जन-सेवा आपकी संस्कृति की एक सहज प्रेरणा है। 'पतित-बन्धु', 'हरिजन सेवक' आदि कई पत्रों का सम्पादन भी किया और अब १९३८ ई० से 'हरिजन-उद्योगशाला' के व्यवस्थापक के रूप में हरिजनों की सेवा में संलग्न हैं।

आन्तरिक भावनाओं की तीव्रता, सघनता और गहनता में परिवर्तन के अनुसार इनकी शैली में भी पविर्तन हो जाता है। इसलिए वियोगी जी की विभिन्न रचनाओं की शैली में भी अन्तर आ गया है। जहाँ गद्य-काव्य की पाण्डित्यपूर्ण उद्‌भावना ही अभिप्रेत होती है उस समय हृद्‌गत भावनाओं की बाह्यजगत में वस्तुतः सम्यक्, स्पष्ट व्यंजना हो; इसकी इन्हें विशेष चिन्ता नहीं रहती। वहाँ इनकी

अधिकांश भाव-व्यंजना दुरूह, संस्कृत तत्समता लिए हुए समासांत पदावली में हुई है।

संस्कृत शैली के अनुशीलन के कारण स्वभावतः भाषा स्थान स्थान पर सानुप्रासिक दिखाई देती है। वह अनुप्रास कृत्रिम नहीं वरन् प्रकरण प्राप्त तथा अर्थ व्यंजक होने के कारण सहज हैं, अतएव सुन्दर और स्निग्ध भी।

वियोगी जी अपने कथनों में व्यावहारिकता लाने के लिए वाक्य व्यक्तिक्रम भी ले आए हैं। 'आखिर' 'कैद' 'दर्द' 'खुदा' 'आफत' आदि उर्दू के तत्सम शब्दों का प्रयोग भी स्थान-स्थान पर किया है। यह विशेष खटकने वाली बात नहीं परन्तु जहाँ संस्कृत की घोर तत्समता के बीच ऐसे शब्द आ गए हैं वहाँ मानो यह फूल के बीच शूल से लगते हैं। पर जब इसी उर्दू शब्दावली का व्यवहार कुछ वाक्यों में होता है तो उसमें स्वाभाविक सरलता और चमत्कार आ जाता है। वस्तुतः ऐसी ही भाषा शैली में इनके प्राणों का स्वर सुनाई देता है इस शैली के अनुसरण में इन्होंने भावावेश की परिमार्जित व्यंजना के साथ धारा-प्रभायुक्त छोटे-छोटे वाक्यों का प्रयोग किया है।

बाबू गुलाबराय का स्थान हिन्दी साहित्य के निबन्ध लेखकों में बहुत ऊँचा है। बाबू जी उस समय से लिखने का कार्य करते आ रहे हैं जब कि आजकल के बहुत से ख्यातिप्राप्त लेखक या तो उत्पन्न ही नहीं हुए थे या बहुत छोटी अवस्था के थे। उस समय से लेकर अब तक बाबू जी समय के साथ चल रहे हैं।

बाबू जी ने साहित्य के कई अंगो पर सफलता के साथ लिखा है। साहित्य के मार्मिक विद्वान् होने के साथ साथ ये दर्शनशास्त्र, तर्कशास्त्र और मनोविज्ञान के भी पण्डित हैं। इनकी दर्शन-विषयक विद्वता के कारण ही हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन ने इन्हें पूना अधिवेशन में दर्शनपरिषद् का सभापति बनाकर सम्मानित किया था।

ये साहित्य-शास्त्र के आचार्य हैं। इनका लिखा हुआ "नव रस" बहुत काल से हिन्दी के छात्रों तथा विद्वानों को रस-सम्बन्धी ज्ञान की सामग्री देता आ रहा है। साहित्य-शास्त्र-सम्बन्धी दो अन्य महत्वपूर्ण ग्रन्थ भी हाल में ही प्रकाशित हुए हैं—एक है 'सिद्धान्त और अध्ययन' तथा दूसरा है "काव्य के रूप"।

अब तक आपने जो निबन्ध लिखे हैं उनकी संख्या बहुत अधिक है। 'प्रबन्ध-प्रभाकर' नाम से आपके निबन्धों का संग्रह प्रकाशित हो चुका है। इसके अब तक अनेक संस्करण छप चुके हैं। इसमें विचारात्मक तथा आलोचनात्मक लेख ही अधिक हैं। "फिर निराशा क्यों?" नामक पुस्तक में भावात्मक और आभास-पूर्ण लेख हैं।

बाबू जी हास्यपूर्ण लेख लिखने में भी बहुत सिद्ध-हस्त हैं। आपने अपने आपको ही हास्य का आलम्बन बना कर 'मेरी असफलताएँ' नामक सुन्दर रचना प्रस्तुत की है। इसमें स्थान २ पर सुन्दर हास्य के दर्शन होते हैं।

इनकी भाषा प्रायः संस्कृत-पदावली युक्त होती हैं। संस्कृत के छोटे छोटे उदाहरण का भी ये बहुत प्रयोग करते हैं। आपकी मुहाविरों और अलंकारों के प्रयोग से अलंकृत भाषा में संजीवता के दर्शन होते हैं।

श्रीमती महादेवी वर्मा का जन्म संवत् १९६४ में फर्रुखाबाद जिले के एक सम्पन्न एवं कलाप्रेमी परिवार में हुआ। प्रारम्भिक शिक्षा घर पर माता जी के निरीक्षण में हुई। बाद में प्रयाग आकर संस्कृत में एम० ए० किया। आजकल प्रयाग महिला विद्यापीठ की प्रिन्सिपल हैं। साहित्यिकों के हितों की रक्षा और साहित्य-समृद्धि को लक्ष्य में रखकर आपने साहित्यकार संसद् स्थापित की। गृहस्थ-जीवन के प्रति शैशव से वैराग्य होने के कारण आपने काव्य-कला को अपनी साधना का लक्ष्य बनाया। चित्रकला, संगीतकला आदि में भी

प्रवीणता प्राप्त करके जीवन को कलामय बनाने में आप पूर्णरूप से सफल हुईं। बौद्धदर्शन और उपनिषदों के अध्यात्मतत्त्व की ओर अभिरुचि होने से रहस्यात्मक रचना की ओर आपकी निसर्गतः प्रवृत्ति हुई और वर्तमान युग के कवियों में आप रहस्यभावना का अंकन सर्वश्रेष्ठ रीति से करने में समर्थ हैं।

महादेवी के काव्य को मूलतः रहस्यभावनाओं से पूर्ण कहा जाता है। कविता के क्षेत्र से बाहर आने पर आपने गद्य में भी अनेक अभिनव प्रयोग किए। 'यामा' और 'दीपशिखा' की भूमिका मे जिस गद्य का दर्शन होता है वह चिन्तन-पूर्ण परिष्कृत गद्य का सुन्दर निदर्शन है। उनका सहज संवेदनशील, संघर्षमय जीवन उनके गद्य मे वाणी का वर्चस्व लेकर प्रतिध्वनित होता है। 'शृंखला की कड़ियाँ' 'अतीत के चलचित्र', 'स्मृति की रेखाएँ,' इस कथन के प्रमाण है कि अपने प्राणों के उत्पीड़न को भाषा के माध्यम से इससे सुन्दर ढंग से प्रकट नहीं किया जा सकता। साहित्यिक विषयों पर लिखे उनके निबन्ध गंभीर विवेचनात्मक शैली के परिचायक होने के साथ मौलिकता की दृष्टि से एकदम नूतन कहे जा सकते हैं।

महाराज कुमार रघुवीरसिंह का जन्म मध्यभारत की रियासत सीतामऊ मे हुआ। आपने प्रयाग विश्वविद्यालय से इतिहास विषय में एम० ए० किया, तदनन्तर वहीं से अनुसंधान कार्य करके डी० लिट० की उपाधि प्राप्त की। भारतीय वैभव के ध्वंसावशेष सुन्दर नगरों की यात्रा करके आपने उन स्थानों का वर्णन प्रस्तुत किया और पाठक को फिर से एक बार उसी युग में कल्पना द्वारा विचरण करने का अवसर प्रदान किया है।

आपकी लेखन कला में अद्भुत भावुकता और सहृदयता प्रचुर परिमाण में दृष्टिगत होती है। भावात्मक सरस प्रवाह में आप इतने बह जाते हैं कि आपके अधिकांश निबन्ध गद्य-काव्य जैसे प्रतीत होते

है। पाठक के मन में अपेक्षित प्रभावोत्पादन की आपमें विलक्षण क्षमता है। मानसिक उतार-चढ़ाव और हार्दिक अनुभूतियों की अभिव्यक्ति आपकी रचनाओं में बड़े ही कलात्मक ढंग से हुई है। प्राकृतिक दृश्यों की झांकी प्रस्तुत करने में भी आप स्वाभाविक शैली का प्रयोग करते हैं। इन दृश्यों का वर्णन कितना रोचक और नैसर्गिक होता है यह ताज, फतहपुर सीकरी आदि के वातावरण-सृष्टि में प्रयुक्त शब्द-शिल्प को देखने से विदित होगा। भाषा में प्रवाह चंचलता, माधुर्य और स्फूर्ति की सृष्टि करने के साथ आप प्रभाव को नष्ट नहीं होने देते। अतीत का दृश्य प्रस्तुत करते समय लेखक का ध्यान उन घटनाओं की ओर रहता है जिनसे मानव का शाश्वत रागात्मक सम्बन्ध है और जो घटनाएं देश-काल का अतिक्रमण कर अनन्तकाल तक मानव-मन को आन्दोलित करने में समर्थ है। मुगल वैभव के स्मारक विशाल भवन अपने साथ केवल शक्ति-दर्प को ही नही वरन् प्रेम और ममता की भी कुछ मनोमुग्धकारी चंचल स्मृतियाँ छिपाये हुए हैं। लेखक ने अपनी कल्पना शक्ति से उन मादक स्मृतियों का चित्रण बड़ी ही मार्मिक शैली से किया है कुछ स्थलों पर नवीन उद्भावनाओं द्वारा लेखक ने अपनी सूझ-बूझ और सुहृदयता का अच्छा परिचय दिया है।

'शेष स्मृति' निबन्ध आपकी परिमार्जित गद्य-शैली का स्निग्ध, मादक और तरल निदर्शन है। इसमें इतिहास की घटनाओं के चित्रण के साथ लेखक की हार्दिक अनुभूति का भी सुन्दर पुट है।

आधुनिक हिन्दी साहित्य में समालोचना

आधुनिक परिभाषा में जिसे आलोचना कहा जाता है उसकी कोई निश्चित परम्परा प्राचीन हिन्दी साहित्य में नहीं मिलती। जिस प्रकार एक कवि संसार से उत्पन्न अपनी भावात्मक और विचारात्मक प्रतिक्रिया को प्रकाश में लाता है और अपने सहृदय पाठक को रस

मग्न करने का प्रयत्न करता है उसी प्रकार आलोचक कवि की कृति से उद्बुद्ध अपनी प्रतिक्रियाओं को, चाहे उनका शास्त्रीय आधार हो और चाहे उसकी सूझ बूझ गहरी पैंठ और वैयक्तिक रुचि का प्रकाश में लाकर दूसरों को अपने भावों विचारों से अवगत करा देना चाहता है। किन्तु प्रायः प्राचीन साहित्य में समालोचना का उद्देश्य हमारे यहाँ गुण दोष विवेचन ही समझा जाता रहा है। संस्कृत साहित्य में समालोचना का ढंग यह था कि जब कोई आचार्य या मीमांसक कोई नया सिद्धान्त ग्रन्थ लिखता था तब जिन काव्य रचनाओं को वह उत्कृष्ट समझता था उन्हें रस, अलंकार आदि के उदाहरण के रूप में उद्धृत करता था और जिन्हें दोषयुक्त समझता था उन्हे दोषों के उदाहरण मे देता था। इसके अतिरिक्त दूसरा उद्देश्य था वह कवियों की अलग अलग विशेषताओं का दिग्दर्शन उसकी पूर्ति किसी कवि की स्तुति मे दो एक श्लोक बद्ध कह कर ही आलोचना की जाती थी। "सूर सूर तुलसी ससी" या नाभादास के छप्पय आदि में आलोचक की अन्तर्दृष्टि तो अवश्य मिलती है किन्तु उसमे वैज्ञानिकता का प्रायः अभाव ही है।

वर्तमान हिन्दी साहित्य में समालोचना पहले पहल गुण दोष दर्शन के रूप में प्रकट हुई। लेखों के रूप में इसका सूत्रपात भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के समय मे ही हुआ। कुछ पुस्तकों की विस्तृत समालोचना उपाध्याय पं० बदरीनारायण चौधरी की 'आनन्द कादम्बिनी' में मिलती हैं। भारतेन्दु की 'नाटक' नामक पुस्तक में प्राचीन नाटक शास्त्र और समसामयिक रंग मंच की अच्छी विवेचना है। 'अथ नवीन भेद' शीर्षक के अन्तर्गत उन्होंने पश्चिमीय नाट्य सिद्धान्तों को भी उपस्थित किया है। किन्तु खेद है कि २० वीं शती के पहले दशक के अन्त तक हिन्दी के प्राचीन कवियों और लेखकों के विषय में कोई पूर्ण और सुव्यवस्थित अध्ययन प्राकाशित नहीं हुआ। फिर भी कुछ

इतिवृत्त अवश्य लिखे गये और कवियों और लेखकों के जीवन और कृतियों के स्फुट पक्षों पर विचार और तथ्यपूर्ण सामग्री सामने आने लगी।

पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी की 'हिन्दी में कालिदास की आलोचना द्वितीय उत्थान के आरंभ में निकली। इसमें लाला सीताराम बी० ए० के अनुवाद किए हुए नाटकों के भाषा तथा भाव सम्बन्धी दोष बड़े विस्तार से दिखाए गये हैं। यह अनुवादों की समालोचना थी अतः भाषा की त्रुटियों और मूल भाव के विपर्य्यय आदि के आगे नहीं जा सकी। दूसरे ढंग की आलोचना में 'विक्रम के देव चरित चर्चा' और नैषध चरित चर्चा, मुख्य हैं। इसमें कुछ पंडित मंडली में प्रचलित रूढ़ि के अनुसार चुने हुए श्लोकों की खूबियों पर साधुवाद है। कालिदास की निरंकुशता में भाषा और व्याकरण के वे व्यतिक्रम इकट्ठे किए गये हैं जिन्हें संस्कृत के विद्वान् कालिदास की कविता में बताते हैं। इसी समय प्राचीन तथा समसामयिक लेखकों के जीवन चरित की ओर ध्यान गया। इनमें कार्तिक प्रसाद खत्री कृत 'मीराबाई का जीवन चरित', देवी प्रसाद मुंसिफ कृत 'सूरदास का जीवन चरित्र।' और राधाकृष्ण दास कृत कविवर बिहारीलाल आदि का जीवन चरित उल्लेखनीय है। इनमें कदाचित सबसे महत्त्वपूर्ण रचना यमुना शंकर नागर की 'रामायण के अध्यात्म विचार' शीर्षक रचना है।

इसके अतिरिक्त कवियों का एक विशाल इतिवृत्त संग्रह 'मिश्र बंधु विनोद' तैयार करने के बाद मिश्र बंधुओं ने हिंदी नवरत्न' नामक समालोचनात्मक ग्रन्थ निकाला। इस समय तक नागरी प्रचारिणी पत्रिका और सरस्वती के पृष्ठों में आलोचना सम्बंधी अनेक महत्व पूर्ण लेख प्रकाशित हो चुके थे। इसके उपरांत पं पद्मसिंह शर्मा ने बिहारी पर एक अच्छी समालोचनात्मक पुस्तक निकाली। आर्य्या सप्तशती और गाथा सप्तशती के बहुत से पद्यों के साथ बिहारी के दोहों

का पूरा पूरा मेल दिखा कर शर्मा जी ने बड़ी विद्वत्ता के साथ साहित्यिक परम्परा में बिहारी का महत्वपूर्ण स्थान निश्चित कर दिखाया। इसके उपरांत तुलनात्मक आलोचना की बाढ सी आती दिखाई दी। इस प्रसंग में पं० कृष्णबिहारी मिश्र की 'देव और बिहारी', मतिराम ग्रंथावली-ला० भगवानदीन की 'बिहारी और देव' आदि समालोचनात्मक रचनाएँ उल्लेखनीय हैं। इस द्वितीय उत्थान के भीतर समालोचना की यद्यपि बहुत कुछ उन्नति हुई किंतु उसका स्वरूप प्रायः रूढ़िगत ही रहा। कवियों की विशेषताओं का अन्वेषण और उनकी अंतः प्रकृति की छान बीन करने वाली उच्चकोटि की सामालोचना का प्रारंभ तृतीय उत्थान में जाकर हुआ।

तृतीय उत्थान में आकर समालोचना का आदर्श बदला। गुण दोष के कथन के आगे बढ़कर कवियों की विशेषताओं और उनकी अंतः प्रवृत्ति की छान बीन की ओर भी ध्यान दिया गया। तुलसी, सूर, जायसी, दीनदयाल गिरि और कबीर आदि की विस्तृत आलोचनाएँ पुस्तकाकार और भूमिकाओं के रूप में निकलीं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने तुलसी, सूर, जायसी पर विस्तृत समीक्षाएं लिखीं। प्रायः सभी कवियों के काव्य के साथ उसका जीवन चरित्र, वह समाज जिसमें वह रहता था, साहित्यिक परम्परा जिसे वह मानता था, समय और वातावरण जिसमें वह पैदा हुआ था तथा उनके प्रभाव इत्यादि बातों का भी अध्ययन किया। आचार्य शुक्ल वैज्ञानिक पद्धति के अतिरिक्त प्राचीन पद्धति के भी पूर्ण ज्ञाता थे अतः उनमें इन दोनों पद्धतियों का सुन्दर सामंजस्य मिलता है।

डा० श्यामसुन्दरदास की समालोचनाओं में भी इन दोनों पद्धतियों का समुचित सामंजस्य मिलता है। उनकी समालोचना पक्षपातविहीन, समुचित और सुसंगत होती है। इनका 'साहित्यालोचन' आलोचना क्षेत्र में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। पं० अयोध्यासिंह

उपाध्याय की कबीर समीक्षा उनके द्वारा संग्रहीत 'कबीर वचनावली' के रूप में सन्निविष्ट है। इसके उपरांत तो 'कला' और 'साधना' का तांता बंध गया और "केशव की काव्य कला" "कविवर रत्नाकर" कृष्णशंकर शुक्ल की, प्रो० सत्येंद्र की गुप्त जी की कला, प्रसाद की नाट्यकला पद्माकर की वाक्य साधना अखौरी गंगप्रसादसिंह कृत, श्री रामनाथ "सुमन" कृत प्रसाद की काव्य साधना आदि अनेकों पुस्तकें निकलीं। इनमें कुछ पुस्तकें (केशव की काव्य कला, गुप्त जी की कला आदि) समालोचना की असली पद्धति पर निर्णयात्मक एवं व्याख्यात्मक दोनों ढंग लिये हुये चलीं। पं० गिरिजादत्त शुक्ल गिरीश कृत गुप्त जी की काव्य धारा में भी मैथिलीशरण गुप्त की रचना के विविध पक्षों का सूक्ष्मता और मार्मिकता के साथ उद्घाटन हुआ है। पं० शांतिप्रिय द्विवेदी ने 'हमारे साहित्य निर्माता' तथा 'संचारिणी' सामयिका' आदि नामक पुस्तकें लिखकर हिन्दी के कई वर्तमान कवियों और लेखकों की प्रवृत्तियों और विशेषताओं का अपने ढंग पर अच्छा आभास दिया है।

साहित्यकार के जीवन अथवा उसकी रचना के किसी विशेष पक्ष को लेकर अनुसंधान एवं आलोचना करने की प्रवृत्ति यत्र तत्र ही दृष्टिगत होती है। इस प्रसंग में 'कबीर का रहस्यवाद' के रचयिता डा० रामकुमार वर्मा, 'तुलसी दर्शन' के रचयिता बलदेवप्रसाद मिश्र, कबीर और सूरदास के विषय में लिखी हुई पं० हजारीप्रसाद द्विवेदी की आलोचनाएँ सारगर्भित और प्रामाणिक कृतियाँ हैं, तुलसीदास के लेखक श्री माताप्रसाद गुप्त तथा 'देव' के रचयिता नगेंद्र का नाम उल्लेखनीय है। प्राचीन कृतियों के सम्पादन में बहुत दूर तक वैज्ञानिक सिद्धांतों को नहीं अपनाया जा सका। साहित्य की विभिन्न धाराओं और प्रवृत्तियों की आलोचनाओं में डा० रामविलास शर्मा, शिवदानसिंह चौहान, 'अंचल', नंददुलारे

बाजपेयी आदि के नाम महत्वपूर्ण हैं। हमारे यहां की सैद्धांतिक आलोचना पाठ्य पुस्तकों और मासिक पत्रों में प्रकाशित होने वाले लेखों तक ही सीमित हैं। यह हिन्दी आलोचना साहित्य का अत्यंत दुर्बल पक्ष है। दो चार आचार्य शुक्ल के लेखों को छोड़ कर, 'कविता' जैसे साहित्य के महत्व पूर्ण अंग पर कोई सर्व ग्राही-मौलिक, गवेषणात्मक पुस्तक हमारे यहाँ नहीं है। साहित्यालोचन की शैली पर बा० गुलाबराय का सिद्धान्त और अध्ययन तथा काव्य के रूप उल्लेखनीय ग्रन्थ हैं। अतः यह अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा कि हिंदी में समालोचना साहित्य का समुचित विकास न हो सका। इधर कुछ वर्षों में उल्लेखनीय प्रकाशित पुस्तकें गिनती में थोड़ी ही होंगी। यह सत्य है कि विकास के इस युग में जब कि कविता, नाटक, उपन्यास, कहानी आदि सभी क्षेत्रों में मौलिक रचनाओं का क्रम चल रहा है समालोचना के क्षेत्र में भी वृद्धि होनी आवश्यक है।

इसके अतिरिक्त पिछले बीस वर्षों में हिन्दी साहित्य के अनेक छोटे बड़े इतिहास हमारे सामने आये हैं जिनमें हिन्दी भाषा और साहित्य (श्याम सुन्दरदास) हिन्दी साहित्य का इतिहास (रामचन्द्र शुक्ल) हिन्दी साहित्य का इतिहास (ब्रजरत्न दास), हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास (डा० रामकुमार वर्मा), हिन्दी साहित्य की भूमिका (हज़ारी प्रसाद द्विवेदी), आधुनिक हिन्दी साहित्य (लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय) आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास (डा० कृष्णलाल) रीतिकाल की भूमिका (नगेन्द्र) आदि महत्वपूर्ण हैं। हिन्दी साहित्य की विभिन्न धाराओं, युगों और प्रवृतियों पर लिखने का प्रयत्न हुआ। गद्य और पद्य के इतिहास को भी अलग अलग लिखने का प्रयत्न हुआ। हिन्दी भाषा और उसकी बोलियों, गद्य शैली के विकास और इसी प्रकार के अन्य विषयों को भी गवेषणा का विषय बनाया गया, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि इतिहास लेखक की शैली और

विषय विस्तार, वैज्ञानिक और मौलिकता की दृष्टि से अभी हम आचार्य शुक्ल से बहुत आगे नहीं बढ़ पाये हैं।

प्रमुख आलोचक

मिश्र-बन्धु पंडित-प्रवर श्यामबिहारी मिश्र, शुकदेवबिहारी मिश्र एवं गणेशबिहारी मिश्र हिन्दी-जगत् में 'मिश्र-बन्धु' नाम से सुपरिचित हैं। भारतेन्दु युग में जब हिन्दी-गद्य की प्रगति विकास की प्रथम अवस्था को पार कर चुकी, तब उसे और भी द्रुत गति से विकास की ओर ले जाने के लिये जिन महानुभावों ने प्रशंसनीय प्रयत्न किया उनमें मिश्रबन्धुओं का नाम चिरस्मरणीय रहेगा।

यद्यपि इन्होंने काव्य, आलोचना तथा साहित्यिक निबन्ध सभी में अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है परन्तु प्रधानतः इनका क्षेत्र आलोचना ही है। हिन्दी में जब अलोचना-साहित्य की आरम्भिक अवस्था ही थी, तभी इन्होंने 'हिन्दी-नवरत्न' एवं 'मिश्रबन्धु-विनोद' जैसे दो महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिख कर आलोचना साहित्य के बड़े अभाव को पूर्ण करने का यत्न किया। यद्यपि इनके परवर्ती आलोचक एवं विद्वानों को इनकी बहुत-सी मान्यताओं से विरोध हैं, और हम भी इनको अनेक साहित्य-सम्बन्धी धारणाओं से सहमत नहीं तथापि ऐसे युग में, जब कि इन्हें आज के समान पूर्ववर्ती लेखकों का लिखा हुआ विशेष साहित्य उपलब्ध नहीं था, इनका कार्य समादरणीय ही माना जायगा।

इनके लेखों में संस्कृत के तत्सम शब्दों की अधिकता रहती है। उर्दू-शब्दों के प्रयोग की ओर इनका झुकाव नहीं परन्तु यथास्थान उनका प्रयोग भी पाया जाता है। इनके विषय-चयन में नवीनता विचित्रता और एक प्रकार विलक्षणता पाई जाती है। कहीं २ भाषा में पुरानी शैली का पंडिताऊपन झलकता है आप लोग

भाषा में व्याकरण के विशेष बंधन को भाषा-हित की दृष्टि से उचित नहीं मानते। विषय के अनुरूप भाषा लिखने के आप लोग पूर्ण पक्षपाती हैं।

हिन्दी साहित्य के गुण दोष-दर्शन पर निर्भर करने वाली समीक्षा का प्रचार मिश्रबन्धुओं द्वारा हुआ और हिन्दी नवरत्न इस प्रकार की आलोचना का अच्छा उदाहरण है।

श्री रामचन्द्र शुक्ल का जन्म अगोना ग्राम (जिला बस्ती) में संवत् १९४१ में हुआ। शुक्ल जी की प्रारम्भिक तथा माध्यमिक श्रेणी तक की शिक्षा मिर्जापुर में हुई। वकालत पढ़ने के विचार से आप प्रयाग भी रहे किन्तु उसमें सफलता न मिलने पर मिर्जापुर के मिशन स्कूल में ड्राइंग शिक्षक के रूप में कार्य करने लगे। हिन्दी-प्रेम की लगन से आप नागरी प्रचारिणी सभा काशी में कार्य करने आये और बाद में काशी विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग में अध्यापक हो गये। आपका सारा जीवन इस प्रकार साहित्य साधना में ही व्यतीत हुआ। शुक्ल जी कवि, आलोचक, अध्यापक और सम्पादक सभी रूपों में विलक्षण प्रतिभा का परिचय देने में समर्थ हुए।

शुक्ल जी की गद्य-शैली का दो रूपों में वर्गीकरण करके निरूपण किया जा सकता है। उनकी गंभीर, अध्ययनपूर्ण, विवेचनात्मक शैली का निखरा हुआ प्रौढ़ रूप यदि देखना हो तो जायसी, सूर और तुलसी पर लिखे उनके आलोचनात्मक दीर्घकाय निबंधों पर दृष्टिपात करना चाहिये। उनकी गद्य-शैली इन निबंधों में तत्सम प्रधान शब्दों के साथ दीर्घ समास और वस्तु-विन्यास-परक दृष्टिगत होती है। भूमिका रूप में लिखे गये ये प्रबंध शुक्ल जी के अगाध पांडित्य के साथ उनकी विश्लेषणात्मक सूझ बूझ का अच्छा परिचय कराते हैं। उनकी गद्य-शैली का दूसरा रूप उनके भाव या मनोविकारों पर लिखे गये निबंधों में देखने में आता है।

व्यक्तित्व की अमिट छाप लेकर वस्तु या भाव की अभिव्यंजना इन निबंधों मे चरम उत्कर्ष के साथ हुई है। शुक्ल जी के इन भावात्मक निबंधों मे भाषा की पूर्ण शक्ति का विकास तथा लाघव (चुस्ती) देख कर पाठक विस्मय विमुग्ध हुए बिना नहीं रहता। यदि निबंध-साहित्य का सूक्ष्म रूप से विवेचन किया जाय तो उसके प्रमुख दो ही रूप ठहरते हैं विचारात्मक और भावात्मक शुक्ल जी ने इन दोनों रूपों मे उच्च कोटि का आदर्श प्रस्तुत किया है। विचारात्मक निबंधो मे भावों के प्रस्फुटन की दो शैलियां प्रचलित हैं। एक आगमन शैली और दूसरी निगमन शैली। आगमन शैली में निबंध-कार विषय वस्तु की व्याख्या करके अन्त में सूत्र रूप से उसका निष्कर्ष प्रस्तुत करता है, निगमन शैली में प्रारम्भ ही सूत्र द्वारा भावाभिव्यक्ति मे होता है। इसे समास शैली भी कहते हैं। शुक्ल जी मे सूत्र रूप से वर्ण्य विषय को कहने की प्रवृत्ति अधिक मात्रा मे देखी जाती है। भावात्मक लेखों मे तो इसकी प्रधानता है। इन निबंधो में तर्क, युक्ति, प्रमाण और साम्य आदि का पूरा पूरा उपयोग करके शुक्लजी अपनी बात को पूरी मुहर लगा देते हैं।

स्पष्टता तथा रोचकता के लिए आचार्य शुक्ल अपने निबंधों में ऐतिहासिक तथ्यों तथा घटनाओं का भी संकेत करते चलते हैं। यह प्रसंग-गर्भत्व शैली आपके पांडित्य का फल है। भावों पर लिखे गये निबंधों की भाषा समीक्षात्मक निबंधों की अपेक्षा सरल है। उसमे तद्भव शब्दों तथा प्रचलित मुहावरों की प्रधानता है। उनकी भाषा बड़ी ही गठी, मंजी, प्रौढ़ और विषय प्रतिपादन क्षम है। उनका एक एक वाक्य मोतियों की लड़ी की भाँति स्निग्ध और कान्तिमय है, उसमे न तो कर्ण कटुता है और न रूक्षता। यथार्थ में आचार्य शुक्ल ने ही अपने निबंधों द्वारा हिन्दी साहित्य को पूर्ण रूप से समृद्ध किया और उसमें अभिव्यंजना की प्रौढ़ता पैदा की।

पण्डित पद्मसिंह शर्मा का नाम हिन्दी-साहित्य में तुलनात्मक

आलोचना के सूत्रधार के रूप में लिया जाता है। आपका जन्म नायक नगला जि० बिजनौर में हुआ था। महाविद्यालय ज्वालापुर और गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार मे आपने हिन्दी अध्यापन का कार्य किया। उनमें काव्य के मर्म तक पहुंचने की जो ग्राहिकाशक्ति थी, वह उल्लेखनीय है। इसी कारण शर्मा जी ने बड़ी विद्वत्ता के साथ 'बिहारी' के अनेक दोहों की 'देव' के कवित्त और सवैयों से तुलना करके बिहारी की श्रेष्ठता सिद्ध की। साथ ही इन्होंने 'आर्या सप्तशती' और 'गाथा सप्तशती' के बहुत से श्लोकों के साथ बिहारी के दोहों की तुलना करके उस साहित्यिक परम्परा का प्रचलन किया, जिसके लिए बिहारी ने अपनी सतसई की रचना की थी। साथ ही अपनी आलोचना मे उन्होंने उन अनेकों आक्षेपों का भी निराकरण किया जो विभिन्न आलोचकों के कारण बिहारी पर किये जाते थे।

शर्माजी ने आलोचना के अतिरिक्त गम्भीर एवं स्थायी उपयोगिता के विषयो पर भी अनेक सुन्दर तथा विश्लेषणात्मक निबन्ध लिखे हैं। आपने संस्मरण तथा व्यंग्य-विनोद के भी बहुत से लेख लिखे थे, जिनमें उनकी गहन विद्वत्ता, अपार पाण्डित्य तथा अद्भुत कला-चातुरी का परिचय पाठको को मिलता है।

शर्माजी की भाषा और शैली उर्दू और हिंदी भाषाओं के समान ज्ञाता होने के कारण बड़ी ही सरल और रोचक है। भाषा के परिष्कार-आन्दोलन के आप भी आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के समान ही कट्टर समर्थक थे। आपकी भाषा में उर्दू और हिन्दी के शब्दों का ऐसा अद्भुत सम्मिश्रण देखने को मिलता है कि पाठक दंग रह जाता है। आपका शब्द संयोजन एवं वाक्य-गठन देखते ही बनता है।

आपकी शैली की सर्वप्रथम विशेषता यह है कि वह उर्दू-मिश्रित शब्दों के आधार पर गम्भीर-से-गम्भीर विषय और व्यंग्य तथा हास्य-प्रधान विषय को भी ऐसी खूबी से प्रस्तुत करते हैं कि वह पाठक को

मन्त्र-मुग्ध-सा कर लेता है। शैली को आकर्षक बनाने के लिए उन्होंने सुविधानुसार इङ्गलिश के चलते हुए शब्द भी प्रयुक्त करने में संकोच नहीं किया।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी आलोचक तथा निबन्धकार की दृष्टि से आधुनिक हिन्दी साहित्य में विशेष विख्यात हैं।

आपने काशी में रहकर संस्कृत साहित्य का गम्भीर अध्ययन किया और काशी विश्वविद्यालय से 'साहित्य शास्त्राचार्य' की उपाधि प्राप्त की। शिक्षा के उपरान्त द्विवेदी जी 'शांति निकेतन' में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष हो गये और वहाँ श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर तथा आचार्य क्षितिमोहन सेन के सम्पर्क में आकर साहित्य की साधना को अपना लक्ष्य बनाया और वहीं बंगला साहित्य का भी व्यापक अध्ययन किया। द्विवेदी जी के अध्ययन में एक ओर संस्कृत के विशाल साहित्य-भंडार का ज्ञान है जिसके अन्तर्गत भारतीय संस्कृति, इतिहास, ज्योतिष, साहित्य, और विभिन्न धर्मों तथा सम्प्रदायों आदि का गहन अध्ययन है। इस विस्तृत अध्ययन के परिणामस्वरूप इन्होंने साहित्यिक, सांस्कृतिक शोध सम्बन्धी तथा शिक्षा सम्बन्धी विचार प्रधान निबन्ध लिखे हैं। 'विचार और वितर्क', 'अशोक के फूल' आदि ऐसे ही निबन्ध संग्रह हैं। 'हिन्दी साहित्य की भूमिका' 'कबीर' 'सूर' आदि इनकी प्रसिद्ध पुस्तकें हैं।

इनके निबंधों में शास्त्रीय विवेचन तथा ठोस बौद्धिक चिंतन की छाप मिलती है, कविता की कमनीयता नहीं। आपकी शैली में भावुकता और चमत्कार न होकर बौद्धिकता है। गवेषणा और विवेचना इनकी शैली की प्रमुख विशेषता हैं। विचारों के प्रभाव में तरलता है। शुक्ल जी की शैली में जहाँ गुम्फन है वहाँ द्विवेदी जी में विशद व्यापकता। इसी व्यापकता के कारण वर्णन शैली की बोध गम्यता एवं सरलता में विशेष वृद्धि हो जाती है। पाठक के मन में इनके निबन्धों से आचार्यत्व की छाप पड़ती है।

द्विवेदी जी की शैली में अद्भुत स्वाभाविकता है। जहाँ व्यंग्य भी किया है तो आत्मीय ढंग से। इस प्रकार कौशल से अपने विषय को हृदयंगम कराने में पूर्णतः समर्थ हैं। द्विवेदी जी किसी भी विषय के ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक दृष्टिकोण पर प्रकाश डालने का मोह संवरण नहीं कर सकते इसलिए विषयान्तर लाने से शैली में तारतम्य का अभाव हो जाता है। परन्तु यह इनके विषय प्रतिपादन की एक प्रकार की विशेषता ही है विषय को समझाने के उपरान्त पाठक को एक नाटकीय चरमसीमा पर ला स्वयं धीरे से अलग हो जाते हैं। पाठक के लिए चिन्तन, मनन की सामग्री भी आप प्रस्तुत करते हैं।

इनकी भाषा, भाव और अभिव्यक्ति में एक ऐसा अनूठा तारतम्य है कि पाठक स्वयं ही विषय की ओर आकृष्ट हो जाता है। भाषा संस्कृत प्रधान है परन्तु कहीं कहीं अत्यन्त प्रचलित देशज शब्दों का प्रयोग भी मिलता है। उर्दू और अंग्रेजी के शब्द विरल हैं। संस्कृत के उद्धरण अवश्य बीच-बीच में मिलते हैं। शब्द-चयन और वाक्य-विन्यास सुन्दर है। छोटे और बड़े दोनों प्रकार के वाक्यों पर आपका समान अधिकार है। विचार विवेचन के स्थल पर मिश्रवाक्य और भावपुष्टि के समय सरल वाक्यों का प्रयोग किया गया है। वस्तुतः गम्भीर भावों के लिए भी सरल भाषा का इस विद्वत्ता के साथ निर्वाह किया गया है कि प्रभाव में कहीं शिथिलता नहीं आती। मुहावरों का प्रयोग अति न्यून है पर भाषा-सौष्ठव में इससे कमी नहीं आई।

द्विवेदी जी से अभी बड़ी-बड़ी आशाएँ हैं। आजकल आप 'काशी हिन्दू विश्वविद्यालय' के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष हैं और खोज सम्बन्धी कार्यों में व्यस्त हैं।

श्री नन्ददुलारे वाजपेयी जी का जन्म उत्तर प्रदेश में हुआ। शिक्षा-दीक्षा हिन्दू विश्व विद्यालय काशी में हुई। आपने एम. ए. करने के बाद से ही कलम को अपनी जीविका बना लिया। पहले

'भारत' का सम्पादन किया और उसी समय से छायावादी कवियों की रचनाओं पर अपनी पांडित्यपूर्ण शैली से प्रकाश डालना प्रारम्भ किया। आचार्य शुक्ल की छायावाद के प्रति जो मान्यतायें थीं उसका आपने बड़ी योग्यता और विद्वत्ता के साथ खंडन किया। आपकी रचनाओं ने हिन्दी के साहित्यिकों का ध्यान एक साथ आकृष्ट किया और आप प्रथम श्रेणी के समालोचक गिने जाने लगे। सम्प्रति आप मध्य प्रान्त के सागर विश्व विद्यालय में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष पद पर आसीन है। आपके अनेक आलोचनात्मक ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं।

वाजपेयी जी की शैली विश्लेषण प्रधान होने के कारण विषय के साथ गहरा सम्बन्ध रखती है। कृति के आभ्यन्तर में प्रवेश करके उसकी नाप जोख या मूल्याङ्कन करने में आपकी क्षमता अद्भुत है। छायावादी कवियों का कृतित्व परखने मे आप सबसे अधिक सहायक हुए हैं। प्रेमचन्द, प्रसाद, आचार्य शुक्ल और महादेवी वर्मा का साहित्यिक मूल्य निर्धारण करके वाजपेयी जी ने निश्चय ही आगे आने वाले आलोचकों के लिए यथार्थ समीक्षा का पथ प्रशस्त किया है। पाश्चात्य समीक्षा सिद्धान्तों का सन्तुलित एवं समीचीन प्रयोग आपकी समीक्षा में कहीं कहीं दृष्टिगत होता है। शैली पर शुक्लजी की छाप है किन्तु उनमें दुरूहता का दोष नहीं पाया जाता। कहीं कहीं वाक्य-विन्यास में विषय-वस्तु की गहनता के कारण क्लिष्टता अवश्य परिलक्षित होती है। भाषा तत्सम प्रधान, मुहावरे रहित, प्रौढ़ एवं प्रांजल है।

श्री रामकृष्ण शुक्ल 'शिलीमुख' जी युक्त प्रान्त में मुरादाबाद जिले के रहने वाले हैं किन्तु चिरकाल से राजस्थान के सुप्रसिद्ध नगर जयपुर में निवास कर रहे हैं। आप राजपूताना विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष हैं। आपके पुरातत्व, कवि समालोचना, निबन्ध समीक्षा आदि के आधे दर्जन से अधिक संग्रह अब तक प्रकाशित हो

चुके हैं। 'शिलीमुखी' नाम से आपके लेखों का एक बड़ा महत्वपूर्ण संकलन अभी हाल में प्रकाशित हुआ है।

शुक्ल जी की शैली की विशेषता उनके मौलिक रूप में है। शुक्ल जी को समीक्षक की वह दिव्य दृष्टि प्राप्त है जिसके द्वारा आलोच्य कृति के भीतर बैठकर उसके यथार्थ रूप की झाँकी पाई जाती है। बहुधा आलोचक गुण दोष की तालिका बनाकर ही अपने समालोचक-धर्म की इति श्री समझ बैठते हैं—शुक्ल जी इतने से कहीं सन्तुष्ट नहीं होते। उनका प्रयत्न रहता है कि कृतित्व की नाप जोख के लिए शास्त्र और परम्परा का आश्रय लेते हुए स्वमन्तव्य का प्रयोग भी किया जाय। उनकी आलोचनाओं मे मूल्याङ्कन का मान दंड बहुत ही प्रमाणिक एवं तर्कपूर्ण रहता है। 'प्रेमचन्द' की कृतियों की जो आलोचना आपने आज से पच्चीस वर्ष पहले लिखी थी उसे पढ़कर आपकी निर्भीकता और स्पष्टवादिता का अच्छा परिचय मिलता है। आलोचना शास्त्र का प्रयोगपक्ष में जैसा निखरा रूप आप प्रस्तुत कर सके वह यदि परवर्त्ती आलोचकों द्वारा अपनाया गया होता तो निश्चय ही हिन्दी में मौलिक सूझ-बूझ के विचारक उत्पन्न होते।

शिलीमुखी जी की शैली में अभिव्यंजना की वक्रता या भाषा का मनोमुग्धकारी लालित्य नहीं है। सरल भाषा में स्पष्ट कथन उन्हें अधिक रुचिकर लगता है। कहीं कहीं वाक्य-विन्यास अभिव्यक्ति को लक्ष्य रखकर एक दम नये रूप में रखा गया है। शब्दों के रूप संस्कृत व्याकरण के वैकल्पिक रूप के आधार पर प्रयुक्त हुए हैं जैसे उद्देश्य के लिए उद्देश, अर्द्ध के लिए अर्ध, उर्दू शब्दों का प्रयोग विरल है अंग्रेजी के शब्द कहीं कहीं पर्याय के रूप में अवश्य काम में लाये जाते हैं ताकि समानार्थक शब्द से भाव को हृदयंगम करने में अड़चन न हो। सामान्यतः शैली सीधी-सादी और सरल है।

श्री डा० नगेन्द्र का जन्म अतरौली (जि०अलीगढ़) में सन् १९१४

में हुआ। आगरा विश्वविद्यालय से अंग्रेजी विषय लेकर एम० ए० तथा नागपुर विश्वविद्यालय से हिन्दी में एम० ए० किया। दस वर्ष तक कालेज आफ कामर्स, दिल्ली में अंग्रेजी के अध्यापक रहे। आगरा विश्वविद्यालय से १९४६ में 'रीतिकाव्य और कवि देव' विषय पर निबंध लिखकर डी० लिट्० की उपाधी प्राप्त की। सम्प्रति दिल्ली विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष पद पर कार्य कर रहे हैं। आपका साहित्यिक जीवन कवि के रूप से प्रारम्भ होता है। 'वनबाला' और 'छन्दमयी' दो कविता संग्रह प्रकाशित हुए हैं। आलोचना क्षेत्र में आपकी 'रीति-काव्य की भूमिका' 'देव और उनकी कविता' 'विचार अनुभूति' 'विचार और विवेचन' 'साकेत एक अध्ययन' 'सुमित्रानन्दन पन्त' 'आधुनिक हिन्दी नाटक' 'आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ' नामक ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं।

डा० नगेन्द्र की शैली अत्यन्त प्रौढ, गम्भीर, तथ्य प्रधान और वैज्ञानिक सतर्कता से पूर्ण है। विषय-निरूपण के लिए जैसी भाषा और अभिव्यक्ति अपेक्षित होती है आपके निबंधों में वैसी ही दृष्टिगोचर होती है। गंभीरता के साथ हास-परिहास, चुहल, व्यंग्य, संलाप और स्वप्न के मनोरम वातावरण की सृष्टि करके आपने समीक्षा जैसे शास्त्रीय विषयों को कथा-कहानी का आकर्षक परिधान पहनाया है। आलोचना लिखने में इतनी स्पष्टता, स्वच्छता और गंभीरता का प्रयोग हिन्दी आलोचकों में कम ही दिखाई देता है। तत्सम शब्दों का प्रयोग बाहुल्य होने पर भी भाषा कहीं भी भाराक्रान्त या अस्वा-भाविक नहीं है। अंग्रेजी काव्य सिद्धान्तों का प्रयोग यथास्थान आपकी समीक्षा में रहता है किन्तु वह प्रकरण के साथ सुसम्बद्ध होकर ऐसा घुल मिल जाता है कि उसे हृदयंगम करने में पाठक को कोई बाधा नहीं आती। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की परम्परा के वर्तमान युग के आप सर्वश्रेष्ठ रसवादी समीक्षक कहे जाते हैं।

जीवनी तथा अन्य विषय

जीवनी लिखने का प्रचलन बहुत प्राचीन काल से दिखाई देता है। गोस्वामी गोकुल नाथ जी लिखित चौरासी वैष्णवों की वार्त्ता तथा दो सौ बावन वैष्णवों की वार्त्ता और नाभादास कृत भक्त माल में अनेक वैष्णव भक्तो की जीवनी संगृहीत हैं। आधुनिक काल में अनेक सुन्दर जीवन चरित एवं आत्मकथाएँ लिखी गई हैं। बाबू ब्रजरत्नदास ने भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र का तथा पं० बनारसी दास चतुर्वेदी ने पं० सत्यनारायण कविरत्न का जीवन चरित्र लिखा है। डा० श्यामसुन्दर दास, वियोगी हरि, स्वामी श्रद्धानन्द, डा० राजेन्द्र-तथा श्री भवानी दयाल सन्यासी, महावीर प्रसाद द्विवेदी आदि अनेक विद्वानो ने अपनी आत्म कथाएँ लिखी हैं। महादेवी वर्मा के "अतीत के चल-चित्र" उनके सुन्दर संस्मरण हैं।

साहित्य के इन अङ्गों के अतिरिक्त विज्ञान, राजनीति, अर्थ शास्त्र, वैद्यक, तर्क शास्त्र इत्यादि विषयो पर भी अब तक अनेक पुस्तकें लिखी गई हैं। यद्यपि उनकी संख्या आवश्यकता को देखते हुए बहुत कम है। इसका मुख्य कारण यही है कि अब तक हमारे भारतीय विश्व-विद्यालयो मे उच्च शिक्षा का माध्यम हमारी भाषा न थी, इससे लेखकों को इन विषयो पर लिखने के लिए उत्साह और प्रेरणा ही न मिलती थी; किन्तु अब हिन्दी के राष्ट्रभाषा घोषित हो जाने पर तथा कुछ विश्व विद्यालयों के द्वारा हिन्दी को उच्च कक्षाओ के अध्ययन का माध्यम घोषित कर दिये जाने के कारण शासकों की ओर से तथा जनता की ओर से भी विभिन्न विषयों पर महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ लिखने की प्रवृत्ति बढ़ रही है।

पत्र पत्रिकायें

पत्र पत्रिकाओं का चलन भारत में ब्रिटिश राज्य की स्थापना के अनन्तर और भारतेन्दु के पूर्व हो चुका था। सन् १७८० के 'हिकीज़ गज़ट

(Hickey's Gazette) के बाद बंगला में और बंगला के बाद सन् १८२६ ई० में युगलकिशोर द्वारा "उदन्त मार्तण्ड" नामक पत्र का प्रकाशन हिन्दी में सबसे पहली बार हुआ। १८५० ई० में राजा शिवप्रसाद के "बनारस अखबार" की भाषा नीति के विरुद्ध आवाज़ उठाने वाले पत्र "सुधाकर" का संपादन तारामोहन मैत्र ने किया। सन् १८५२ में मु० सदासुखलाल के सम्पादन में "बुद्धिप्रकाश" नामक पत्र का जन्म हो चुका था। इसके उपरान्त १८५४ में हिन्दी का सर्वप्रथम दैनिक समचार सुधावर्षण का सम्पादन श्यामसुन्दर सेन द्वारा हुआ।

भारतेन्दु ने कार्यक्षेत्र में आते ही अपना ध्यान पत्र पत्रिकाओं की ओर आकर्षित किया। उन्होंने सन् १८६८ ई० में 'कवि वचन सुधा' नामक मासिक पत्र प्रकाशित किया जो आगे चलकर साप्ताहिक पत्र के रूप में परिणत हो गया। सन् १८७४ ई० में दिल्ली से ला० श्रीनिवासदास ने "सदादर्श" पत्रिका निकाली। भारतेन्दु के दूसरे मासिक पत्र "हरिश्चन्द्र मैगजीन" में भारतेन्दु मण्डल के अन्य लेखकों की रचनाओं के साथ अंग्रेजी के लेख भी छपते थे। भारतेन्दु के उद्योग से ही बाबू बालेश्वरप्रसाद बी० ए० ने काशी से "काशी साप्ताहिक पत्रिका" निकालना आरम्भ किया। इस पत्र की शैली वस्तुतः भारतेन्दु की शैली ही है। इसमें उनकी बहुत सी रचनाएं प्रकाशित हुईं। इस प्रकार एक ओर भारतेन्दु के उद्योग और प्रोत्साहन से तथा दूसरी ओर विविध आन्दोलनों के परिणाम स्वरूप हिन्दी गद्य में पत्र पत्रिकाओं की बाढ सी आ गई। यथार्थ में हिन्दी गद्य की उन्नति का श्रेय उस समय की पत्र पत्रिकाओं को ही है। अधिकांश लेखक अपने साथ एक-एक पत्र लेकर आये। शुद्ध साहित्यिक दृष्टि से यदि विचार किया जाय तो बालकृष्ण भट्ट द्वारा सम्पादित "हिन्दी प्रदीप" बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन द्वारा सम्पादित "आनन्द

कादम्बिनी" प्रतापनारायण मिश्र का "ब्राह्मण" एवं अम्बिकादत्त व्यास का "पीयूष प्रवाह" आदि पत्र विशेष महत्व के हैं। "प्रेमधन" अपने पत्र में साधारण से साधारण सूचना तक में संस्कृत मिश्रित भाषा का प्रयोग करते थे! पंडित अम्बिकादत्त व्यास का पीयूष प्रवाह यद्यपि अधिक दिनों तक नहीं चल सका तथापि उसके द्वारा हिन्दी गद्य को सहायता अवश्य पहुंची।

साहित्य को शिक्षित जनता की वस्तु बनाने में इस प्रकार इन पत्र पत्रिकाओं ने पर्याप्त सहयोग दिया। भाषा की अस्थिरता का विकट प्रश्न जो द्विवेदी युग के प्रारम्भिक वर्षों में दृष्टिगत होता है पत्र पत्रिकाओं द्वारा ही सुलझाया गया। वैसे तो भारतेन्दु युग में पत्रों का जमघट लग गया था किन्तु उनका सम्बन्ध एक सीमित वर्ग से ही था। अतः आरम्भ में जो उत्कर्ष परिलक्षित होता है उसका सफल निर्वाह न हो सका। द्विवेदी युग में देश में शांति थी, विद्या का प्रचार उत्तरोत्तर बढ़ रहा था, इसलिए उत्कृष्ट कोटि के पत्र पत्रिकाओं का चलन होने लगा। इनके द्वारा एक ओर भाषा को स्थिरता मिली और दूसरी ओर अच्छी अच्छी पुस्तकों का प्रचार और विज्ञापन होने लगा। मुख्य मुख्य पत्रिकाओं में विशाल भारत, सरस्वती, नया समाज, विश्वामित्र, प्रतीक, आजकल, हंस, नया साहित्य, भारती, कल्पना, अजन्ता आदि उल्लेखनीय हैं। कहानी की पत्रिकाओं की भी इस युग में बाढ़ है—माया, मनोहर कहानियाँ, सरिता, सरगम आदि का बहुत प्रचार है। दैनिक पत्रों में हिन्दुस्तान, आज, विश्वामित्र, वीर अर्जुन, नवभारत टाइम्स, मिलाप, अमृत पत्रिका, भारत, नवजीवन आदि प्रमुख हैं। इन पत्रों के साप्ताहिक संस्करण भी प्रकाशित होते हैं। प्रायः सभी साहित्यिक पत्रों द्वारा हिन्दी की सेवा हुई किन्तु इन सब में द्विवेदी युग का सर्वश्रेष्ठ और लोकप्रिय मासिक पत्र "सरस्वती" था जिसके द्वारा द्विवेदी जी के सम्पादन काल में गद्य का इतना प्रसार हुआ।

हिन्दी गद्य के धुरन्धर विद्वानों के निबन्ध, कहानी, समालोचनाएं आदि का प्रकाश इसी में होता था। इन मासिक पत्रों की भाषा विशुद्ध हिन्दी थी। व्याकरण सम्बन्धी त्रुटियाँ हटाने का श्रेय इन्हीं पत्रों को है। इन से ही हिन्दी गद्य सीमित वर्ग से बाहर निकल कर व्यापक होने लगा।

इन पत्र पत्रिकाओं के अतिरिक्त जन साधारण की सहायता के लिए हिन्दी कोष भी तैयार किये गये। इस प्रकार इस युग में राष्ट्र भाषा हिन्दी का प्रचार भी खूब हुआ। हिन्दी भाषा की विभिन्न संस्थाओं द्वारा समय समय पर महत्त्वपूर्ण साहित्यिक समारोह होते रहे। 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन' का नाम इन सब में विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इस सम्मेलन के द्वारा उच्चकोटि की साहित्यिक पुस्तकों का प्रकाशन हुआ। १९२१ ई० से अबतक के समय को हम हिन्दी पत्र कला के विकास का तृतीय अथवा आधुनिक युग कह सकते है। इस युग में पत्रकला ने चतुर्दिक उन्नति की है और वह साहित्य एवं सामयिक राजनीति के श्रेष्ठतम अंक के रूप में प्रतिष्ठित है। साहित्य, राजनीति, कथा कहानी, उपयोगी विषयों एवं ज्ञान विज्ञान को लेकर स्वतंत्र रूप से मासिक और साप्ताहिक पत्र निकले। राजनीति के विभिन्न वादों को लेकर अलग से कुछ पत्र चल रहे हैं। सच तो यह है कि पिछले ३० वर्षों में हिन्दी पत्रकला जहाँ अनेक धाराओं आन्दोलनों और व्यक्तिगत अभिरुचि से प्रभावित है, वहाँ उसने अपने लिए स्वतंत्र रूप से भी अनेक अंग विकसित किये हैं और हिन्दी साहित्य तथा हिन्दी प्रदेश के राजनीतिक विकास में उसका भाग अत्यन्त महत्त्व पूर्ण रहा है तथा रहेगा।

आधुनिक हिन्दी कविता

हिन्दी साहित्य के इतिहास में आधुनिक काल 'गद्य काल' के नाम से प्रसिद्ध है। यद्यपि पद्य लिखने की प्रवृत्ति इस युग में भी थी और

पद्यात्मक रचनाएं गद्य से न्यून मात्रा में न थीं किन्तु गद्य का प्रचार और प्रसार होने से उसकी परिधि, पद्य की अपेक्षा व्यापक हो गई। रीति एवं भक्ति काल की परम्पराओं को स्वीकार करके उस युग में भी अनेक कवियों ने पद्य-रचना की थी। सेवक, महाराज रघुनाथसिंह, रामसनेही, लछीराम, राजा लक्ष्मणसिंह और नवनीत चौबे आदि उसी पुरातन रीतिकालीन परम्परा के कवि हैं। इन्हीं कवियों में भारतेन्दु बाबू के पिता गिरधरदास भी आते हैं। इन कवियों की कविता में काल-भेद के अतिरिक्त कोई ऐसा विशेष भेद परिलक्षित नहीं होता जो उसे रीति काल से पृथक् करके स्वतन्त्र व्यक्तित्व प्रदान कर सके।

भारतेन्दुजी ने गद्य के क्षेत्र में नवीनता और व्यापकता लाने के साथ गद्य में परिष्कार और नूतन भावनाओं का संचार करना प्रारम्भ किया। सबसे पहले उन्होंने काव्य-भाषा के परिष्कार के लिए अपने कवित्त और सवैयों से उन शब्दों का बहिष्कार किया जो पुरातन होने के साथ अपने अभीष्ट अर्थ का सम्पर्क त्याग चुके थे। काव्य-विषय को नवीन भावनाओं से परिपूर्ण करने के लिए आपने कवि समाज स्थापित किये और समस्या-पूर्ति के द्वारा कवियों को प्रेरणा देने की सुन्दर योजना रखी। भारतेन्दु की कविता में गद्य की भाँति नूतनता का समावेश न होने पर भी उन्होंने रीतिकालीन काव्य-परम्परा को विषय और भाषा की दृष्टि से कुछ नूतनता अवश्य प्रदान की। स्वदेश, स्वभाषा, स्वधर्म और स्वसंस्कृति का गौरव-वर्णन करने के लिए सब से पहले इस युग में कविता को माध्यम बनाया गया। राष्ट्रीयता की प्रसुप्त भावनाएं भारतेन्दु की वाणी से मुखरित हो उस युग के समसामयिक लेखकों और कवियों की टेक बनकर गूंजने लगीं। श्री पण्डित अम्बिकादत्त व्यास, प्रतापनारायण मिश्र, प्रेमधन, जगमोहनसिंह आदि कवियों ने भारतेन्दु को काव्य-रचना में पूरा सहयोग दिया और हिन्दी कविता को उर्दू शायरी के समान

आकर्षक बनाने में इस काल के कविगण बहुत अंश मे सफल हुए ।

इस परम्परा के बाद ब्रज भाषा में कविता करने वाले और भी अनेक कवि हुए। यदि इस धारा को पुरानी धारा मानकर वर्गीकरण किया जाय तो लाला सीताराम बी० ए०, अयोध्यासिंह उपाध्याय, श्रीधर पाठक, जगन्नाथदास 'रत्नाकर' राय देवीप्रसाद 'पूर्ण', वियोगी हरि, दुलारेलाल भार्गव, रामनाथ ज्योतिषी, हरदयालु सिह आदि को रखा जा सकता है। काल-क्रम से ये लोग बाद मे आते हैं किन्तु इनकी रचना-पद्धति ब्रज भाषा के अनुकूल होने से उन्हें इस श्रेणी में गिना जाता है।

आधुनिक युग की नवीन धारा मे उन कवियों की रचनाएं आती हैं जिन्होने विषय-वस्तु के साथ प्रक्रिया मे भी नूतनता का संचार किया। भारतेन्दु बाबू को ही हम इस धारा का प्रवर्तक मान सकते हैं। भारतेन्दु की वाणी का सबसे ऊंचा स्वर देश-भक्ति का था। नवीन विषयों के विधान के कारण उनके साथियो ने भी इस ओर ध्यान दिया। इस काल के कवियो को आचार्य शुक्ल ने 'नर प्रकृति' का कवि कहा है, क्योंकि वाह्य प्रकृति की अनेकरूपता के साथ उनके हृदय का सामंजस्य नही हो पाया था। इस नवीन धारा का यथार्थ रूप में उदय पं० श्रीधर पाठक की कविता मे समझना चाहिए। पाठक जी ने 'एकान्तवासी योगी' में सीधी-सादी शैली में जिस मार्मिक भाव को अभिव्यंजित किया वह आगे आने वाले 'स्वच्छन्दता वाद' का सूचक कहा जा सकता है। अंग्रेजी कविता में जिस प्रकार 'काउपर' 'वर्न्स' 'स्काट' आदि ने 'रोमाण्टिसिज्म' का आधार पाकर सरस भावाभिव्यक्ति की, हिन्दी में भी वैसी ही भाव-धारा का सूत्रपात इस युग में हुआ। छन्दों में विविधता, भावो में अनेक-रूपता, अभिव्यक्ति में स्वच्छन्दता, प्रकृति के प्रति ममत्व तथा विषय-वस्तु मे दिव्यता को स्थान देने के कारण श्रीधर पाठक ही हिन्दी मे सच्चे

'स्वच्छन्दतावाद' के प्रवर्त्तक ठहरते हैं। खेद है कि इस स्वाभाविक स्वच्छन्दता का मार्ग हिन्दी-काव्य-क्षेत्र में लम्बे समय तक चल न पाया। श्री महावीरप्रसाद द्विवेदी के आगमन से संस्कृत छन्दों के साथ संस्कृत पदावली का प्रचार हुआ और विषयो की नवीनता को अतीत-कथाओं ने इस प्रकार आवृत कर लिया कि उसे हिन्दी के समालोचक 'इतिवृत्तात्मक कविता' के नाम से व्यवहृत करते हैं।

द्विवेदी युग के कवियों मे श्री मैथिलीशरण गुप्त तथा अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। गुप्तजी ने 'भारत भारती' से काव्य-रचना आरम्भ करके आज तक अनेक रूप में अपना साहित्य प्रस्तुत किया है। गुप्तजी की प्रतिभा की सबसे बड़ी विशेषता कालानुसरण की क्षमता और उत्तरोत्तर परिवर्तित होती हुई भावनाओं और काव्य-प्रणालियों को ग्रहण करने में है। इस दृष्टि से उन्हें आज हम 'प्रतिनिधि कवि' के नाम से पुकार सकते हैं। उपाध्याय जी ने अपनी काव्य-प्रतिभा का परिचय 'प्रिय प्रवास' और 'वैदेही वनवास' में दिया है। राम और कृष्ण की पुरातन गाथाओं को नवीन शैली से प्रस्तुत करने का यह प्रयास इतना सफल हुआ कि बाद में और कवियों का ध्यान भी इस ओर गया। पं० रामचरित उपाध्याय, नाथूराम शंकर शर्मा, सनेही, रूपनारायण पांडेय, सियरामशरण गुप्त आदि कवियों ने खड़ी बोली को अभिव्यक्ति का सरस माध्यम बनाकर इस काल में उत्तम कोटि का काव्य-प्रणयन किया।

द्विवेदी युग की छाप बाद में भी कुछ कवियों पर दृष्टिगत होती है। ठाकुर गोपालशरणसिंह, अनूप शर्मा, हितैषी, श्यामनारायण पांडेय; पुरोहित प्रतापनारायण आदि इसी कोटि में आते हैं।

द्वितीय उत्थान के समाप्त होने पर खड़ी बोली में कविता का परिमाण पर्याप्त हो चुका था। साथ ही अभिव्यक्ति की क्षमता भी पूर्ण रूप

से भाषा मे आ गई थी। छन्दों में परिवर्तन, लय, गति, यति आदि की स्वच्छन्द योजना तथा वस्तु-विधान और अभिव्यंजन शैली में नूतन प्रवृत्तियों का समावेश इस युग मे हुआ। राष्ट्र-प्रेम का जो स्वर भारतेन्दु युग मे सुनाई पड़ा था वह भी इस युग मे नूतन ध्वनि के साथ गुञ्जित हुआ। साम्राज्यवाद और सामन्तशाही के विरुद्ध आवाज उठाने वाले अनेक आन्दोलन काव्य-क्षेत्र में सुनाई दिए। इसके साथ ही द्विवेदीयुगीन् इतिवृत्तात्मकता से निष्कृति पाने के लिये कवियों ने एक साथ नवीन भावनाओं, विचारों, कल्पनाओं और अनुभूतियों को काव्य में स्थान देना प्रारम्भ किया। कविता में पद-लालित्य, कल्पना की उड़ान, भाव की वेगवती व्यंजना, वेदना की विवृति, प्रतीक प्रयोग की विलक्षणता उत्पन्न करने की बलवती इच्छा कवियों में अंकुरित हुई और उसके फल स्वरूप काव्य की समस्त पुरातन प्रक्रिया और विषय-वस्तु परिवर्तित हो गई। इस काल की प्रारम्भिक कविताओं मे एक प्रकार की अव्यक्त रहस्य-भावना अन्तर्निहित रहती थी। गुप्त, प्रसाद और मुकुटधर पांडेय को इसका मूल प्रेरक कहा जा सकता है।

इस युग में ही 'छायावाद' नाम से एक स्वतन्त्रवाद हिन्दी-कविता मे आया। आचार्य शुक्ल ने 'छायावाद' शब्द का दो अर्थों में प्रयोग स्वीकार किया है। एक तो 'रहस्यवाद' के अर्थ में जहां उसका सम्बन्ध काव्य वस्तु से होता है और दूसरा प्रयोग काव्य शैली या पद्धति-विशेष के व्यापक अर्थ में। प्रतीकवादी कवियों को छायावादी कवि का नाम देकर छायावाद की सीमा-मर्यादाएं निर्धारित हुईं। यथार्थ में छायावाद का यह अर्थ बहुत सीमित और अपूर्ण है। इसी अर्थ के आधार पर शुक्ल जी ने अपने इतिहास में लिखा है कि 'प्रस्तुत के स्थान पर उसकी व्यंजना करने वाली छाया के रूप में अप्रस्तुत का कथन' छायावाद कहलाता है। अतः अन्योक्ति-पद्धति भी छायावाद का एक विशेष लक्षण हुआ। किन्तु इतना कह देने से छायावाद की परिपूर्ण व्याख्या

नहीं होती। छायावादी कवियों में रहस्यात्मकता का होना स्वाभाविक है, इस दृष्टि से श्रीमती महादेवी वर्मा और श्री जयशंकर 'प्रसाद' का स्थान बहुत ऊँचा है। स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह भावनाओं को वायवी रूप देकर छायावाद की शैली से सँजोने वाले कवियों में श्री सुमित्रानन्दन 'पन्त' तथा श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। छायावाद यथार्थ मे एक प्रक्रिया-विशेष ही न होकर विषय या भाव की दृष्टि से भी नूतन सरणि का अनुगमन करने वाला काव्य-पथ है, जिसने हिन्दी-साहित्य की सम्पत्ति को कई गुना बढ़ाया है। रहस्यवाद की भावना को अस्पष्ट रूप से व्यंजित करने वाले कवियों में श्री माखनलाल चतुर्वेदी 'एक भारतीय आत्मा' हैं। राष्ट्र-प्रेम के आधार पर सूक्ष्माभिव्यक्तिपरक कविता लिखने मे श्री रामधारीसिंह 'दिनकर' और श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' का नाम भी स्मरणीय है। श्रीरामकुमार वर्मा ने भी कुछ कविताएं रहस्यमयी छाया में गुम्फित की हैं। संक्षेप में, छायावाद को स्वीकार करके श्री जयशंकर प्रसाद, पन्त, निराला, महादेवी, रामकुमार वर्मा आदि कवियों ने उच्च कोटि का काव्य-सृजन किया।

प्रगतिवाद छायावाद की इस काव्य-धारा में जगत् के स्थूल विषयों की उपेक्षा इस कोटि तक पहुँच गई कि कुछ आलोचकों को इस 'वाद' में जीवन के यथार्थ संघर्ष से पलायन दृष्टिगोचर होने लगा। दूसरी ओर जीवन की भौतिक एवं यथार्थ समस्याओं ने एक बार फिर कवि के मानस को मथकर संसार के प्रति उन्मुख किया और छायावादी कवियों की कोमल कान्त, प्रतीक-पद्धति से विलग होकर बहुत से कवियों ने जीवन, जागृति, बल और बलिदान की भावना को काव्य का मेरुदंड बनाया। इस कोटि के कवि 'प्रगतिवादी' कहलाए। आश्चर्य यह है कि प्रगति की यह प्रेरणा हिन्दी में राजनीतिक आन्दोलन के प्रभाव से आई, किन्तु उसे साहित्यिक रूप दिया कविवर पन्त ने ही। पन्त ने युगवाणी 'युगान्त,

ग्राम्या आदि रचनाओं मे प्रगतिवाद के स्वर को इतनी संयमित वाणी में प्रतिध्वनित किया कि छायावाद का सर्वश्रेष्ठ कवि ही प्रगतिवाद का साहित्यिक उन्नायक बना। छायावाद कवि-समाज का अंग न रहकर अपने ही व्यक्तित्व की सीमाओं में समाकर रह गया था। उसकी कविता व्यष्टिपरक थी—समष्टि की उपेक्षा उसका स्वभाव था। किन्तु प्रगतिवाद के आते ही कवि पुनः समाज की एक इकाई बनकर आया। उसने अपने जीवन-दर्शन को परिवर्तित करने के साथ-साथ कला का मापदंड भी परिवर्तित किया। कोयल की कुहू के स्थान पर उसने मिल के भोपूँ और खेत-खलिहान के पीड़ा भरे हाहाकार और क्रन्दन सुनना पसन्द किया। प्रगतिवादी कवि स्वर्गीय कमनीय कल्पना से नीचे उतरकर लोहे मिट्टी—पदार्थ की वास्तविकता को समझना चाहता है। बुर्जुआ अर्थात् सामन्तशाही वाणी का परित्याग करके जन साधारण की राज्य-स्थापना को प्रगतिवादी कवि ने अपनी कविता की पुकार माना। यह पुरोगामी वाङ्मय या प्रोग्रेसिव लिटरेचर हिन्दी में छायावादी कविता के प्रति विद्रोह लेकर आया था। इस 'वाद' में एक जागरण था, अतः इसका जादू सब पर चल गया। इस वाद का मूल आधार मार्क्स का द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद 'डाइलेक्टिकल मैटेरियलिज्म' था। मार्क्सवाद की मूल प्रेरणा पर आधारित यह वाद रोटी, कपड़ा, अर्थात् आर्थिक समस्याओं के समाधान का ही राग अलापता है। धर्म, ईश्वर तथा आध्यात्मिकता में इसकी आस्था नहीं। इसलिए इस साहित्य का बहिर्मुखी होना स्वाभाविक है। ऐहिकता की प्रधानता के कारण इस साहित्य में रूक्षता और शुष्कता है, भावुक व्यक्ति को यह द्रवित नहीं करता। वर्ग-संघर्ष में विश्वास रखने के कारण अर्थ-मूलक समस्याओं का ही इस वाद में स्थान है। कहीं-कहीं काम-मूलक समस्याओं का भी चित्रण है, किन्तु उसका समाधान अर्थ के वैषम्य को दूर करने में ही निहित है। नरेन्द्र शर्मा, शिवमंगलसिंह 'सुमन',

केदारनाथ अग्रवाल, अज्ञेय, अंचल, भारतभूषण अग्रवाल, गजानन, मुक्तिबोध, गिरजाकुमार माथुर आदि कवियों ने प्रगतिवादी साहित्य का सृजन किया।

इस युग में प्रगतिवादी कैम्प में पारस्परिक संघर्ष से बड़ा मत-भेद पैदा हुआ है और 'प्रयोगवाद' के नाम से एक स्वतंत्र वाद उठ खड़ा हुआ है। प्रगतिवादी कवियों में कुछ कला और शिल्प के प्रति जागरूक हैं और कुछ साम्यवाद के प्रभाव को ही व्यंजित करने में अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझते हैं। प्रयोगवादी कवि शैली और वस्तु दोनों में ही चिर-प्रयोगशीलता को प्राथमिकता देता है। यद्यपि यह छायावादी कविता के विरुद्ध प्रतिक्रिया-मात्र है। श्री नागार्जुन, रामविलास शर्मा, केदारनाथ अग्रवाल, माचवे आदि कवि अपने दृष्टि-कोण को अधिक-से-अधिक वस्तुगत बनाने मे लीन है। यही प्रयोगवादी कविता है।

श्री हरिवंशराय 'बच्चन' ने अनुभूतिपरक सुन्दर गीत लिखकर हिन्दी-कविता में एक नूतन भाव-दिशा का प्रवर्त्तन किया। इस युग के कवियों में श्री उदयशंकर भट्ट, नेपाली, आरसीप्रसादसिंह आदि भी उल्लेखनीय हैं। संक्षेप में हिन्दी-कविता का भविष्य नूतन प्रयोगो के घटाटोप में छिपा नहीं है। पद्मावत, रामचरित मानस, सूर सागर, बिहारी सतसई, प्रिय प्रवास, साकेत, कामायनी, पल्लव, उत्तरा, यामा, दीपशिखा, कुरुक्षेत्र आदि काव्यों के साथ हिन्दी-कविता अपना पथ प्रशस्त करती हुई निरन्तर आगे बढ़ती चली जा रही है। प्रबन्ध काव्य, मुक्तक, गीत, प्रगीत, अतुकान्त आदि सभी नवीन और प्राचीन प्रयोग हिन्दी-काव्य की अभिवृद्धि कर रहे हैं।

भारतेन्दु युग का पद्य

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र हिन्दी साहित्य-गगन में भारतेन्दु के उदय होते ही एक नवीन आलोक सभी ओर फैल गया था और साहित्य के सभी अंगों में परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगा था किन्तु भारतेन्दु ने पद्य या कविता के क्षेत्र में भाव-विषयक क्रान्ति उत्पन्न करने पर भी भाषा और शैली विषयक उल्लेखनीय परिवर्तन नहीं किया। प्राचीन परिपाटी की ब्रजभाषा कविता किसी न किसी रूप में भारतेन्दु के युग में भी जारी रही और स्वयं भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तथा उनके साथी उसी परम्परा गत भाषा-शैली को स्वीकार कर काव्य रचना करते रहे।

भारतेन्दु युग के प्रारम्भ में ब्रजभाषा पद्य की परम्परा को अविच्छिन्न रूप से आगे बढ़ाने वाले कवियों में महाराज रघुराज सिंह, सेवक, सरदार लछराम ब्रह्म भट्ट आदि का नाम विशेष रूप से लिया जा सकता है। सेवक कवि ठाकुर के प्रपौत्र थे और रीति कालीन परम्परा का पूर्ण से निर्वाह करते हुए इन्होंने 'वाग्विलास' नामक नायिका भेद का विशाल काव्य-ग्रन्थ रचा। रीवां नरेश महाराज रघुराज सिंह (जन्म सं० १८८० मृत्यु स० १९३६) अपने 'राम स्वयंवर' नामक वर्णनात्मक प्रबंध काव्य के लिए पर्याप्त प्रसिद्ध हैं। इसके अतिरिक्त दो-तीन और भी ब्रजभाषा के सुन्दर काव्य आपने बनाये। कवि सरदार ने आशु कवि के रूप में अच्छी ख्याति पाई। ये काशी नरेश के आश्रित थे। रीति कालीन काव्य शैली को स्वीकार करके आपने चार-पांच ग्रन्थ लिखे जिनमें आपकी चतुरता और काव्य मर्मज्ञता का अच्छा परिचय मिलता है। प्राचीन कवियों के काव्य पर टीका लिखने के लिए भी सरदार कवि को अच्छी ख्याति मिली है। ब्रजभाषा काव्य शैली परम्परा को अपनाकर लिखने वाले में भारतेन्दु-मंडल से बाहर के कवियों में राजा लछमण सिंह, नवनीत चौबे, राय देवी प्रसाद पूर्ण, जगन्नाथ दास रत्नाकर, सत्यनारायण कवि रत्न

और वियोगी हरि का नाम विशेष रूप से लिया जा सकता है। भारतेन्दु-मंडल के कवियों में प्रताप नारायण मिश्र, अम्बिकादत्त व्यास, बदरी नारायण चौधरी 'प्रेमघन' और बालमुकुन्द गुप्त विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

राजा लक्ष्मण सिंह गद्य लेखकों में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। हिन्दी-उर्दू के विवाद के समय राजा शिव प्रसाद सितारे हिन्द से मोर्चा लेने वाले आप पहले व्यक्ति थे। ठेठ हिन्दी को अपनाकर उसमें गद्य का जो रूप आपने रखा वह आपकी निष्ठा और हिन्दी प्रेम का अच्छा निदर्शन है। ब्रजभाषा-काव्य पर आपका असाधारण अधिकार था। ब्रजभाषा तो आपकी प्रिय भाषा थी। महाकवि कालिदास के मेघदूत और शकुन्तला नाटक का आपने संस्कृत से हिन्दी में बड़ी ही सुन्दर और समीचीन अनुवाद ब्रजभाषा-पद्य में किया। ब्रजभाषा पद्य को स्थिर रखने को आपकी बलवती स्पृहा थी और इसी कारण आपने श्लोकों के समकक्ष ब्रजभाषा के पद्य रखे। ब्रजभाषा का पद लालित्य, माधुर्य और प्रवाह आपकी रचनाओं में आदि से अन्त तक ओत प्रोत है। ब्रजभाषा के अन्य कवियों का वर्णन हम आगे प्रमुख कवियों में यथा स्थान कर देंगे।

भारतेन्दु युग के प्रमुख कवि

भारतेन्दु बाबू का जन्म सं० १९०७ में काशी के एक प्रतिष्ठित परिवार में हुआ था। इनके पिता का नाम था गोपालचन्द्र उपनाम गिरधरदास। इस जन्मजात कवि में पिता के सभी संस्कार पूर्णरूप से वर्तमान थे। ३४ वर्ष के छोटे से जीवन में भारतेन्दु ने साहित्य के सभी अंगों को समृद्ध किया। उन्होंने गद्य साहित्य का सूत्रपात किया, सर्वप्रथम नाटक-रचना की, अन्य भाषाओं की साहित्यिक कृतियों के अनुवाद किए, पत्रकारिता को जन्म दिया और काव्य-क्षेत्र में नवयुग का प्रवर्त्तन कर उसे नए आदर्श और नए मूल्य प्रदान किए।

जीवन और साहित्य के पारस्परिक सम्बन्धों की शिथिलता को दूर कर उन्हें फिर से दृढ़ करने का श्रेय भारतेन्दु को ही है।

भारतेन्दु काल उग्र राष्ट्रीयता का युग नहीं था। इसकी सबसे महत्त्वपूर्ण प्रवृत्ति यही थी कि जनता में राजनीतिक चेतना जाग्रत हो उठी थी। यह सत्य है कि इस चेतना का श्रीगणेश राजभक्ति के रूप में हुआ पर यह भी सत्य है कि इसी ने विकसित होकर देशभक्ति का रूप धारण किया।

देश की आर्थिक स्थिति भी बहुत गिरी हुई थी। भारतेन्दु ने इस दुरवस्था के बड़े करुणोत्पादक चित्र प्रस्तुत किए हैं और आर्थिक स्वाधीनता के महत्त्व पर ज़ोर दिया है।

सामाजिक दुरवस्था के मूल कारणों को समझते हुए भारतेन्दु ने समाज-सुधारों पर भी बराबर ज़ोर दिया। उनकी दृष्टि व्यापक और उदार थी।

इस तरह भारतेन्दु काव्य में हमें सर्वतोमुखी जाग्रति की प्रेरणा मिलती है। वह यथार्थवादी है और उसमें हमें भावानुभूति की सचाई के दर्शन होते हैं। इसके साथ ही साथ भक्ति और शृंगार को लेकर भी भारतेन्दु ने जो कुछ लिखा है, वह कम महत्त्वपूर्ण नहीं। राजनीतिक कविताओं में काव्य-प्रतिभा के प्रदर्शन के लिए बहुत स्थान नहीं था। लेकिन उनकी शृंगार सम्बन्धी सूक्तियाँ उनके सामने ही हृदयों का कण्ठहार हो गई थीं। उनके कृष्ण भक्ति के पदों में अष्ट-छाप के कवियों जैसा माधुर्य और तन्मयता दिखाई देती है। उनकी कविता में चटक-मटक नहीं, सीधी-सादी भाषा में उन्होंने अपने आंतरिक उद्गार व्यक्त कर दिए हैं। उनके कवित्त सवैयों में रीति कालीन रूढ़िबद्ध काव्य की जड़ता नहीं वरन् जीवन का स्पन्दन है। उनके सवैये घनानन्द की टक्कर के हैं। भावानुभूति की सचाई के कारण उनमें नव जीवन का स्फुरण हुआ है।

भारतेन्दु ने भाव क्षेत्र में क्रान्ति को जन्म दिया लेकिन अपनी भाषा वही रखी जो परम्परा से चली आ रही थी। किन्तु उनकी भाषा में दुरूहता नहीं; कृत्रिम शब्दों का उन्होंने बहिष्कार किया है। उनका ध्यान भाव-प्रदर्शन पर केन्द्रित था। उक्ति वैचित्र्य और चमत्कार प्रियता उनमें नहीं थी—गम्भीर व्यक्ति की इस ओर रुचि हो भी कैसे सकती है? अलंकार-भार से दबी हुई भाषा को उन्होंने मुक्ति दिलाई। जहाँ तहाँ उन्होंने खड़ी बोली का भी प्रयोग किया है पर वह केवल प्रयोग के लिए।

हिन्दी-साहित्य के आधुनिक-काल के प्रथम उत्थान सन् १८६५—१९०० पर इस क्रान्तिचेता युग प्रवर्त्तक कवि का व्यक्तित्व पूरी तरह छाया हुआ है। इस ३५ वर्ष की अवधि को भारतेन्दु-काल का नाम देकर हिन्दी-साहित्य के इतिहासकारों ने उसका आभार स्वीकार किया है और उनका उचित सम्मान किया है।

उदाहरण—

कहाँ करुनानिधि केसव सोये।
जागत नेक न यद्यपि बहु बिधि भारतवासी रोये॥
इक दिन वह हो जब तुम छिन नहिं भारत हित बिसराये।
इतके पसु गज को आरत लखि आतुर प्यादे धाये॥
इक इक दीन हीन नर के हित तुम दुखतैं अकुलाई।
अपनी संपति जानि इनहि तुम रक्ष्यो तुरन्तहि धाई॥
प्रलयकाल सम जौन सुदरसन असुर प्रान संहारी।
ताकी धार भई अब कुण्ठित हमरी बेर मुरारी॥
आजु लौं जो न मिले तो कहा
हम तो तुमरे सबभाँति कहावैं।
मेरो उराहनो है कछु नाहिं
सबै फल आपुने भाग को पावैं॥

जो हरिचन्द भई सो भई
अब प्रान चले चहैं तासों सुनावैं।
प्यारे जू है जग की यह रीति
बिदा की समै सब कंठ लगावैं॥

पं० प्रतापनारायण मिश्र—मिश्र जी कविता को जीवन की अभिव्यक्ति का साधन मानते थे। वर्णनात्मक कविताओं में दृश्यों की अवतारणा और भावों की जैसी सफल अभिव्यक्ति आपने की वैसी उस समय के कवियों में दृष्टिगत नहीं होती। आपकी 'बुढ़ापा' शीर्षक कविता पर्याप्त प्रसिद्ध है। भारत के अतीत गौरव और वर्तमान काल की दीनता आदि का जैसा सजीव चित्र आपने अपनी 'तृप्यन्ताम्' कविता में किया वह इस बात का साक्षी है कि मिश्र जी वस्तु स्थिति का हृदयंगम कर उसकी व्यंजना की अपूर्व क्षमता रखते थे। भारत की स्थिति का प्रस्तुत करने में सरल भाषा का आपने विशेष ध्यान रखा है। कविता में गम्भीर विचार धारा और काव्य प्रतिभा का अभाव होने पर भी आकर्षण तथा सजीवता का अभाव नहीं है।

पं० अम्बिका दत्त व्यास—भारतेन्दु मंडल के लेखकों और कवियों में व्यास जी का स्थान कई दृष्टियों से उल्लेखनीय है। आपका जन्म सं० १६१५ में हुआ। आपकी शिक्षा दीक्षा काशी में हुई और संस्कृत साहित्य का आपने उच्चकोटि का ज्ञान उपार्जित किया था। विहारी की कविता पर आपने अच्छी टीका टिप्पणी की। व्यास जी में आशुकवि जैसी प्रतिभा थी। भारतेन्दु जी की 'कविता वर्धिनी सभा' मे आप विशेष रूप से भाग लिया करते थे। प्राचीन संस्कृति और सभ्यता में विश्वास रखने के कारण अंग्रेजी सभ्यता की पोल खोलने और उसका उपहास करने के लिये आपने कई सुन्दर कविताएँ

लिखी। कविताओं की भाषा सरल और सीधी सादी है। ब्रजभाषा का परिधान वह छोड़ नहीं सकी है, संस्कृत का प्रभाव आपकी कविता पर नहीं पड़ा यह आश्चर्य की बात है।

पं० बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमधन' — आपका जन्म सं० १९१२ में मिर्जापुर मे हुआ। भारतेन्दु जी के परम हितैषी तथा मित्रों में प्रेमधन का नाम लिया जाता है। साहित्यिक गद्य लिखने वालों में आपका अपना विशिष्ट स्थान है। संस्कृत की अनुप्रास बोली आपको बहुत प्रिय थी। 'आनन्दकादम्बिनी' पत्रिका द्वारा आपने गद्य के प्रचार और प्रसार में बहुत योग दिया। साथ ही हिन्दी में आलोचना का एक प्रकार से सूत्रपात भी आपकी इसी पत्रिका से समझना चाहिए। गद्य लेखक के साथ आप सरस कोटि के कवि भी थे। ब्रज भाषा मे आपकी पद्य रचना भी मिलती है। आपकी कविता का विषय भी प्राचीन गौरव-गान तथा वर्तमान दुर्दशा-रुदन ही था। हिन्दी में 'एलेजी' शोक गीत की परम्परा सब से पहले आपने ही प्रचलित की। भारतेन्दु बाबू की मृत्यु पर आपने अत्यधिक प्रभावोत्पादक शोक गीत लिखा था। 'जीर्णजनपद' आपकी एक सुन्दर वर्णनात्मक कविता है जिसमें आपने अपने ग्राम की स्थिति का बड़ा ही मार्मिक और हृदयग्राही चित्र प्रस्तुत किया है।

श्री बालमुकुन्द गुप्त—गद्य-लेखकों मे गुप्त जी अपनी शैली की तीव्र अभिव्यंजना के लिए जिस प्रकार प्रख्यात है उसी प्रकार कविता में भी आपकी वाणी का स्वर सबसे अधिक व्यंग्य पूर्ण और संवेदनशील है। ब्रजभाषा की प्राचीन परिपाटी को पार करके आप खड़ी बोली की रचनाएं करने लगे थे। देश की स्थिति तथा विदेशी शासन आदि ही आपकी कविता के प्रमुख विषय थे। समाज में फैले हुए वर्ग-वैषम्य के प्रति सबसे पहले आपने ही अपनी

वाणी का स्वर उद्घोषित कर पूंजीवाद को ललकारा था। यथार्थ मे गुप्त जी अपनी विचारधारा मे बहुत ही प्रगतिशील और सुधार वादी थे। निर्भीकता और साहस उनको कलम के साथ रहे। गद्य की भांति पद्य में भो गुप्त जी यशस्वी कलाकार मानें जायगे।

द्वेदी युग

पं महावीर प्रसाद द्विवेदी जी का जन्म सं० १९२३ और मृत्यु सं०१९९५ में हुई थी। ये हिन्दी-साहित्य मे एक युग-प्रवर्तक के रूप मे अवतरित हुए।गद्य के परिष्कार के साथ २ उन्होने इस आन्दोलन को भी चलाया कि गद्य और पद्य की भाषा एक ही होनी चाहिये। जब गद्य खड़ी बोली मे लिखा जाता है तो पद्य की रचना भी खड़ी बोली मे होनी चाहिये। इन्होने 'सरस्वती' के सम्पादन-काल मे खड़ी बोली कविता के विकास के लिये बहुत प्रयत्न किया। खड़ी बोलीकी कविता लिखने वाले ब्रज और अवधी की शब्दावली का भी मिश्रण कर देते थे। द्विवेदी जीने उसका परिष्कार करके उसे एक ऐसा आदर्शरूप प्रदान किया जिससे उसके आधार पर अनेक कवि सुन्दर रचना करने लगे।

भाषा परिष्कार के साथ २ विषय-निर्वाचन तथा अभिव्यक्ति की शैली के परिवर्तन पर भी उन्होने बल दिया। संस्कृत वृत्तों के समान अतुकान्त छन्द लिखने की प्रेरणा भी दी। स्वयं संस्कृत छन्दो मे पद्य रचना करके उसका उदाहरण उपस्थित किया—

सुरम्य रूपे, रसराशि रन्जिते,
विचित्रवर्णाभरणे कहाँ गई ?
अलौकिकानन्द विधायिनी महा
कवीन्द्र कान्ते कविते ! अहो कहां ?
मांगल्यमूलमय वारिद्-वारि-वृष्टि।

उन्हें तत्कालीन हिन्दी-साहित्य में सुन्दर कविता का अभाव बहुत खटकता था। उन्होंने कवियों को काव्य का वास्तविक स्वरूप इन पंक्तियों द्वारा दिखलाया—

सुरम्यता ही कमनीय कान्ति है
अमूल्य आत्मा रस है मनोहरे।
शरीर तेरा सब शब्द मात्र है
नितान्त निष्कर्ष यही, यही, यही ॥

द्विवेदी जी केवल संस्कृत-गर्भित भाषा तथा संस्कृत वृत्तों में ही काव्य रचना न करते थे अपितु उन्होंने चलते हुए छन्दों मे बोलचाल की भाषा का प्रयोग करते हुए भी काव्य रचना की है। 'कुमार संभव-सार नाम से उन्होंने 'कुमार संभव' का अनुवाद बहुत ही सफलता पूर्वक किया है। द्विवेदी जी की कविताओं के संग्रह 'काव्य मंजूषा' तथा 'सुमन' नाम से प्रकाशित हो चुके हैं।

इनकी कविताओं में इतिवृत्तात्मकता की प्रधानता थी। काव्य-रचना के लिये अपेक्षित भावुकता और तन्मयता का इन मे अभाव था। स्वयं वे बहुत बड़े कवि नहीं थे किन्तु उन्होंने अनेक श्रेष्ठ कवियों का निर्माण अवश्य किया। श्री मैथिली शरण गुप्त, रामचरित उपाध्याय तथा लोचन प्रसाद पाँडेय उन में मुख्य हैं। इनकी कविता का एक उदाहरण देखिये —

इन्द्रासन के इच्छुक किसने, करके तप अतिशय भारी,
की उत्पन्न असूया तुझ मे, मुझ से कहो कथा सारी।
मेरा यह अनिवार्य शरासन पांच-कुसुम-शायक धारी,
अभी बना लेवे तत्क्षण ही उसको निज आज्ञाकारी ॥

पं श्रीधर पाठक इनका जन्म सं० १९३३में हुआ था। यह आगरा के निवासी थे। ब्रज भाषा एव खड़ी बोली दोनों मे समान रूप से इन्होंने अपनी प्रतिभा का परिचय दिया है। यद्यपि प्रधान रूप से इनकी गणना खड़ी बोली के कवियों में ही की गई है। ब्रज भाषा के प्राचीन कवियों के समान यद्यपि इन्होंने नायिका भेद और समस्यापूर्ति की ओर ध्यान

नहीं दिया, फिर भी उनके सवैयों में एक अपूर्व माधुर्य है। ब्रज भाषा में किये गये 'ऋतुसंहार' के अनुवाद मे उन्हें पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है।

यद्यपि भारतेन्दु बाबू के समय से काव्य-धारा को नवीन गति मिल गई थी फिर भी भाषा ब्रज हो रही और पद्य के ढांचों, अभिव्यंजना के ढंग तथा प्रकृति के स्वरूप निरीक्षण आदि में स्वच्छंदता के दर्शन न हुए। इस स्वच्छंदता का आभास सर्व प्रथम पंडित श्रीधर पाठक मे ही मिलता है। इन्होंने प्रकृति–चित्रण के सम्बन्ध मे प्राचीन रूढियों को तोड़ कर उसे नवीनता प्रदान की। खड़ी बोली पद्य के लिये सुन्दर लय और चढ़ाव-उतार के कई ढांचे भी उन्होने निकाले। यह खेद का विषय है कि इस सच्ची स्वाभाविक स्वच्छंदता का यह मार्ग काव्य-क्षेत्र में अधिक समय तक न चल सका।

'एकान्तवासी योगी', 'जगत सचाई सार', 'स्वर्गीय वीणा' आदि कई सुन्दर कृतियाँ इन्होने प्रस्तुत की, इन्होंने गोल्ड स्मिथ के Traveller का खड़ी बोली मे अनुवाद किया। पुस्तकों के अतिरिक्त फुटकर कविताएं भी इन्होंने बहुत लिखीं।

पाठक जी बहुत ही प्रतिभा-सम्पन्न कवि थे। छंद, पद-विन्यास वाक्य-विन्यास आदि के संबंध में नए-नए मार्ग निकाला करते थे। अंग्रेजी तथा संस्कृत दोनो के ही काव्य-साहित्य का अच्छा अध्ययन करने के कारण इनकी रुचि बहुत ही परिष्कृत थी। शुक्ल जी के शब्दों में– 'ये वास्तव मे एक बड़े प्रतिभाशाली, भावुक और सुरुचि-सम्पन्न कवि थे। भद्दापन इन मे न था—न रूप रंग मे, न भाषा मे, न भाव में, न चाल में, न भाषण में।"

अंग्रेजी के समान गद्य के से लम्बे वाक्यों मे लिखे जाने वाले छंद भी इन्होंने लिखे हैं। खड़ी बोली में सवैया लिखने में भी इन्हें अच्छी सफलता मिली। वे कविता के लिये अनेक प्रकार के विषयों

को चुन लेते थे। समाज-सुधार के वे पक्के समर्थक थे। विधवाओं की वेदना तथा शिक्षा-प्रचार आदि विषयों पर इन्होंने अनेक कविताएं लिखी हैं। पाठक जी की वाणी में कुछ ऐसा चमत्कार था कि उनके द्वारा जो कुछ भी अभिव्यक्त किया जाता था, उस में सरसता आही जाती थी। पाठक जी अपने समय के कवियों मे प्रकृति का चित्रण करने में सब से अग्रसर रहे यद्यपि उन्होंने प्रकृति के भव्य और सुन्दर स्वरूप का ही चित्रण किया है।

संवत् १९८५ मे ५२ वर्ष की अवस्था मे पाठक जी की मृत्यु हुई।

पं नाथूराम शंकर शर्मा जी का जन्म संवत १९१६ मे और मृत्यु सं० १९८९मे हुई। ये जिला अलीगढ के अन्तर्गत हरदुआगंज के निवासी थे पं० प्रताप नरायण मिश्र के साथियो मे इनकी गणना होती है। पद्य रचना मे ये बहुत ही पटु थे। समस्यापूर्ति करने में इनकी ख्याति बहुत बढी हुई थी। सभाओं और गोष्ठियों में ये तत्काल समस्या पूर्ति करके सुना देते थे। इसीसे इन्हें काव्य-रसिको ने कविता कामिनि-कान्त की उपाधि से विभूषित किया था।

शंकर जी महर्षि दयानन्द और आर्य समाज के भक्त थे। अत: इनके काव्य मे उपदेशात्मकता की प्रधानता होना स्वाभाविक ही था। भाषा पर तो इनका बहुत ही अधिकार था। ब्रज और खड़ी बोली दोनों मे ही इन्होंने सफलता पूर्वक काव्य रचना की थी। विधवाओं की दुर्दशा और देव-मन्दिरों के अनाचारों का उद्घाटन करने के लिये इन्होंने 'गर्भरंडा-रहस्य' नामक एक प्रवन्ध-काव्य की रचना की थी। उसमें ओजगुण की प्रधानता है। एक उदाहरण देखिये .

फैल गया हुड़दंग होलिका की हलचल मे,
फूल फूल कर फाग फला महिला-मंडल में।

जननी भी तज लाज बनी ब्रज मक्खो सबकी,
पर मैं पिंड छुड़ाय जवनिका में जा दबकी,

श्रृंगार सम्बन्धी अनेक छन्द लिखने में भी इन्हें पूर्ण सफलता मिली है। भाषा में अनुप्रास की छटा देखते ही बनती है। फबतियां और फटकार इन की कविताओं की विशेषता है। वियोग श्रृंगार सम्बन्धी आपकी एक कविता देखिये—

'शंकर नदी-नद-नदीसन के नीरन की,
भाप बन अम्बर ते ऊँची चढि जायगी।
दोनो ध्रुव छोरन लौं पल मे पिघल कर,
घूम घूम धरनी धुरी सी बढि जायगी॥
झारेंगे अंगारे ये तरनि तारे तारापति,
जारेंगे, खमंडल मे आग मढि जायगी।
काहू विधि विधि की बनावट बचेगी नाँहिं,
जो पै वा वियोगिनो की आह कढि जायगी॥

श्रीसत्यनारायन कवि रत्न इनका जन्म सं० १९४१ मे माघ शुक्ला तीज को हुआ। इनके पिता अलीगढ निवासी सनाढय ब्राह्मण थे। इनके माता-पिता इनके बचपन मे ही स्वर्गस्थ हो चुके थे। इनका पालन-पोषण इनकी मौसी ने किया। कुछ काल के अनन्तर वह भी इस संसार से चल बसी। तब आगरा जिलान्तर्गत धांधू पुर के ब्रह्मचारी बाबा रघुनाथ दास जी ने बड़े प्रेम से इनका पालन पोषण किया। सैंट जोंस कोलेज आगरा मे अध्ययन करते हुए इन्होने बी. ए. की परीक्षा दी किन्तु उसमें सफल न हो सके।

बाल्य-काल से ही इनकी काव्य-रचना की ओर प्रवृत्ति थी। बाद में इन्होंने साहित्य-सेवा को ही अपने जीवन का लक्ष्य बना लिया। ये काव्य-रचना करते थे और सभाओं में उन्हें इतने मधुर कण्ठ से सुनाते थे कि प्रत्येक श्रोता सुनते ही मुग्ध हो जाता था।

पंडित मुकुन्द राम जी की पुत्री से इनका विवाह हुआ। यह विवाह उनके जीवन के लिये घातक सिद्ध हुआ। दोनों प्राणियों ने कभी दाम्पत्य-प्रेम की झलक न देखी। कविरत्न जी कभी तो 'भयो क्यों अनचाहत कौ संग' कह कर अपने दुःख की अभिव्यक्ति करते और कभी 'बस अब नहिं जाति सही' कह कर घंटों रोया करते। इस प्रकार वेदना सहते हुए अत्यन्त अल्पायु में १६ अप्रैल १६१८ को यह होनहार कवि स्वर्गवासी हो गये। उनकी मृत्यु किस प्रकार हुई यह एक रहस्य की बात है।

कविरत्न जी 'सादा जीवन उच्च विचार' के सच्चे आदर्श थे। वे कहा करते थे—"कौरौ 'सत्य' गाम कौ वासी कहा तकल्लुफ जानै"। भावुकता, सरलता और अकृत्रिमा उनके स्वाभाविक गुण थे। देश-भक्ति उनमें कूट-कूट कर भरी थी। उनकी लिखी राष्ट्रीय कविताएँ अत्यन्त ओज पूर्ण होती थीं। इनकी 'भ्रमर दूत' रचना में कृष्ण-प्रेम एवं देशभक्ति का अपूर्व सामंजस्य हुआ है। 'उत्तर राम चरित' एवं 'मालती-माधव' के अनुवादों में इतनी सरलता और स्वाभाविकता है कि वे मौलिक से प्रतीत होते हैं। इनकी फुटकर कविताएँ भी अत्यन्त सरल होती थीं। फुटकर कविताओं का संग्रह 'हृदय-तरंग' नाम से प्रकाशित हो चुका है। इनका ये पद बहुत प्रसिद्ध है—

बस, अब नहिं जाति सही।
बिपुल वेदना विविध भांति, जो तन-मन व्यापि रही॥
कब लों सहैं, अवधि सहिबे की, कछु तौ निस्चित कीजै।
दीनबन्धु, यह दीन दसा लखि क्यों नहिं हृदय पसीजै॥
हमसे सरनापन्न दुखी को, जाने क्यों बिसरायौ।
सरनागत–बत्सल 'सत' योंही' कोरो नाम धरायौ॥

राय देवी प्रसाद पूर्ण–द्विवेदी युग में भी ब्रजभाषा की प्राचीन परम्परा को स्वीकार कर पद्य-रचना करने वाले कवियों में पूर्ण जी

का नाम उल्लेखनीय है। आपका जन्म कानपुर में संवत् १६२५ में हुआ और आपकी मृत्यु सम्वत् १६७० में हुई। आपने रीति कालीन शृंगार भावना के साथ राष्ट्र प्रेम की भावना को भी अपनी कविताओं में स्थान दिया। 'ऋतु वर्णन' लिखने में तो आपने बहुत अधिक सफलता पाई है। मेघदूत' का हिन्दी में आपने सुन्दर अनुवाद किया। सरस्वती में आपकी कविताएं प्रकाशित होती थी। आपकी भाषा में ब्रजभाषा का लालित्य और माधुर्य तो था ही साथ ही उसमें भाषा का लोच और प्रवाह भी था। 'पूर्ण' जी अध्ययन शील व्यक्ति थे किन्तु उन्होंने अपनी भाषा को कभी शब्दाडम्बर से भाराक्रान्त नहीं होने दिया। ब्रजभाषा-पद्य की जो छटा परम्परा से चली आ रही थी उसका निर्वाह करने में आपको अच्छी सफलता मिली।

श्रीअयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' का जन्म निजामाबाद जिला आज़मगढ़ में सम्वत् १६२२ में हुआ था। इनके पिता का नाम भोलासिंह था। घर पर ही अध्ययन करके इन्होंने हिन्दी संस्कृत, उर्दू और फ़ारसी भाषाओं का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया था। पहले क़ानूनगो और सदर-क़ानूनगो की हैसियत से कार्य किया। अवकाश ग्रहण करने के बाद फिर जीवन-भर साहित्य सेवा की। काफ़ी समय तक काशी विश्वविद्यालय में अध्यापन कार्य किया। सं० २००२ में आपका स्वर्गवास हो गया।

हरिऔध जी की प्रसिद्धि उनके दो महाकाव्यों - प्रिय-प्रवास और वैदेही-वनवास—के कारण हैं। उन्होंने काव्योपवन, प्रेम-पुष्पोपहार, प्रेम-प्रपंच चोखे चौपदे, चुभते चौपदे, रसकलश आदि स्फुट-काव्यों की भी रचना की है। इसके अतिरिक्त उन्होंने दो उपन्यास, हिन्दी साहित्य का इतिहास और आलोचनात्मक-निबन्ध भी लिखे हैं।

हरिऔध जी की ख्याति का मूल-आधार प्रिय-प्रवास है। वह

खड़ी बोली का प्रथम महाकाव्य है। इसकी रचना भिन्नतुकांत छंदों में हुई है। हरिऔध जी में लोक-संग्रह का भाव बहुत प्रबल है। भारतीय आदर्शों के लिए उनके हृदय में अटूट श्रद्धा है। इस चरित्र प्रधान महाकाव्य में हरिऔध जी ने अपनी समर्थ लेखनी से कृष्ण और राधा का—जिन्हें रीतिकालीन कवियों के हाथों में पड़कर निरंतर विलासिता के पंक में गोते लगाने पड़े थे, उद्धार कर दिया। कृष्ण एक लोकसेवारतआदर्श महापुरुष के रूप में हमारे सामने आए।

प्रिय प्रवास की राधा का चरित्र भी अत्यन्त उत्कृष्ट है। वह वियोग के दिनों में जायसी की नागमती और सूर की गोपियों की तरह रो-पीटकर आसमान सिर पर नहीं उठा लेतीं—उनमें आश्चर्य-जनक सहनशीलता है और लोक-कल्याण की भावना कूट-कूट कर भरी हुई है।

उसकी त्याग-भावना सराहनीय है। राधा का जो अभूतपूर्व चित्र हरिऔध ने उपस्थित किया है उसमें कहीं वासना की गन्ध भी नहीं वरन् उसके आगे आदर से सिर झुक जाता है।

यशोदा के चरित्र में माता के निःस्वार्थ और निश्छल स्नेह का अविरल श्रोत प्रवाहित होता है। कृष्ण के वियोग में उनका विलाप अत्यंत करुणोत्पाक है। प्रिय-प्रवास का प्रकृति-चित्रण भी कहीं-कहीं बड़ा सुन्दर बन पड़ा है।

प्रिय-प्रवास में संस्कृत गर्भित और सरल दोनों तरह की भाषा मिलती है। हरिऔध जी दोनों तरह की भाषा लिखने में सिद्धहस्त हैं। ब्रजभाषा खड़ी बोली, संस्कृत, उर्दू पर उनका समान अधिकार दिखाई पड़ता है। 'वैदेही-बनवास' की भाषा बहुत सरल है। प्रिय-प्रवास की भाषा में माधुर्य भी है और काव्यत्व भी। द्विवेदी-युग के प्रारम्भ में भाषा में जो कर्कशता पाई जाती थी, हरिऔध ने उसे दूर

कर दिया। 'रसकलश' की रचना उन्होंने रीतिकालीन शैली में की है। उन्होंने भाष के क्षेत्र में नए-नए प्रयोग किये और सभी में उन्हें पूरी सफलता मिली।

जगन्नाथ दास 'रत्नाकर' का जन्म सं० १९२३ में काशी के एक सम्भ्रान्त अग्रवाल परिवार में हुआ था। इनके पिता बा० पुरुषोत्तमदास अग्रवाल हिंदी तथा फ़ारसी कविता के प्रेमी थे और उनके यहाँ काव्य-प्रेमियों की बैठकें हुआ करतीं थीं। भारतेन्दु बाबू भी आया करते थे। वातावरण का प्रभाव पड़ा और बाल्यकाल से ही इनके हृदय में कविता के प्रति आकर्षण और रुचि जाग्र हो गई। क्वीन्स कालेज से बी० ए० करने के पश्चात् उन्होंने पहले आवागढ़ में और फिर अयोध्या नरेश के यहाँ नौकरी की। अवकाश ग्रहण करने के बाद शेष जीवन साहित्य सेवा के अर्पण कर दिया। पहले 'ज़की, नाम से उर्दू में कविता शुरू की किन्तु फिर ब्रजभाषा की ओर झुके और अन्त तक उसे ही अपनाए रहे।

'हरिश्चन्द्र' उद्धव-शतक' और 'गंगावतरण' रत्नाकर के प्रबन्ध-काव्य हैं। शृंगार वीर आदि रसों पर इनकी फुटकर रचनाएं भी हैं। नागरी-प्रचारणी सभा ने 'रत्नाकर, नाम से इनकी रचनाओं का संग्रह प्रकाशित कराया है। 'बिहारी-सतसई, पर इनकी टीका 'बिहारी-रत्नाकर, बहुत प्रसिद्ध है और सबसे अधिक प्रामाणिक मानी जाती है।

रत्नाकर में भक्ति और रीतिकालीन काव्य के तत्वों का अद्भुत सम्मिश्रण पाया जाता है। भाव क्षेत्र में उन्होंने भक्ति-कालीन कवियों से प्रेरणा ली है पर उनमें चमत्कार-प्रियता भक्त-कवियों की अपेक्षा अधिक है। उनकी भाषा रीतिकालीन कवियों की टक्कर की है पर वे उनसे कहीं अधिक भावुक हैं। 'उद्धव शतक, के कवि में अष्टछाप के कवियों जैसी भावुकता है जबकि दूसरी ओर 'शृंगार-लहरी, में प्रेम की परिपूर्णतालक्षित होती है। इस तरह दो विभिन्न कालों

के श्रेष्टांश को स्वीकार कर अपनी मौलिक प्रतिभा के योग से उन्होंने जो कुछ भी लिखा है, उसमें जान है, सजग कल्पना का बल पाकर प्राचीन नवीनता का स्फुरण हो उठा है।

रत्नाकर विहारी और पद्माकर से बहुत प्रभावित थे। बिहारी के काव्य का तो उन्होंने बड़ा गहरा अध्ययन किया था। बिहारी अनेक अनुभाव एक ही जगह ला जुटाने में सिद्ध-पस्त हैं; यही बात काफी हद तक रत्नाकर में भी है।

रत्नाकर कोमल भावों को व्यक्त करने में जितने कुशल हैं, उतने ही परुष भावों को व्यक्त करने में। वीराष्टक के छन्दों में वीर रस का अच्छा परिपाक हुआ है और वे अत्यन्त प्रभावपूर्ण हैं।

रत्नाकर जी ब्रज-भाषा को ही काव्योपयोगी भाषा मानते थे, खड़ी बोली को नहीं। उनकी भाषा में बिहारी की भाषा की गठन और मिठास है और पद्माकर जैसा प्रवाह। उन्होंने भाषा को संवार-सुधार कर उसे नई शक्ति दी संस्कृत-गर्भित और सरल दोनों ही तरह की भाषा पर उनका समान अधिकार है। उक्ति-वैचित्रय रत्नाकर की सब से बड़ी विशेशता है। चमत्कार-प्रियता उनमें है अवश्य पर उन्होंने अपनी भाषा को अलंकार-भार से दबने नहीं दिया, न उसमें कृत्रिमता आने दी है।

ब्रज-भाषा के वर्तमान काल के कवियों में रत्नाकर का सर्वोच्च स्थान है।

उदाहरण—

मौर के परिवीवन को मुकट छबीली छोरी,
क्रीट मनि मंडित धराय करिवै कहा।
कहै रत्नाकर त्यों माखन सनैही बनि,
षटरस व्यंज चबाय करिवै कहा।

गोपी ग्वाल बालनि को झोंकि विरहानल में,
हरि सुरवृन्द को बुलाइ करि है कहा ।
प्यारो नाम गोविन्द गुपाल को विहाय हाय,
ठाकुर त्रिलोक के कहाय करि हो कहा ।

गंगावतरण—

निज दर सौं पौंन पटल फहरति फहरावति ।
सुर पुर के अति सघन घोर घनि घसि घहरावति ॥
चली धार धुधकार धरा दिसि काटति कावा,
सगर सुतन के पाप ताप पर बोलति धावा ।
विपुल वेगि सौ कबहुं उमगि आगे को आवति,
सौ सौ योजन लौं सुढ़ार ढरतहि चलि धावति ।
फटकि सिला के वर विसाल मन विस्मय वोहत,
मनहु विसद छद अनाधार अम्बर मे सोहत ।

पं० राम चरित उपाध्याय—उपाध्याय जी का जन्म संवत १६३० में गाजीपुर मे हुआ था । वैसे वे आजमगढ़ के पास एक गाँव में रहने लगे थे । आरम्भ में उन्होंने संस्कृत का विशेष अध्ययन किया और जब हिन्दी में काव्य रचना की ओर उनकी प्रवृत्ति हुई तो संस्कृत के पंडित होने के कारण उन्होंने हिन्दी काव्य की प्राचीन पद्धति को ही अपनाया । बाद में जब द्विवेदी जी के प्रयत्न से सरस्वती में अनेक कवियों की खड़ी बोली की रचनाएं निकलने लगीं तब इन्होंने भी खड़ी बोली में कविता करना आरम्भ कर दिया । इनकी खड़ी बोली की रचनाएं भी प्रसाद गुणमयी और सरस होती थीं । इन्होंने 'राष्ट्र-भारती', 'देवदूत' 'देव सभा' 'देवी-द्रौपदी' 'भारत-भक्ति' 'विचित्र विवाह' इत्यादि अनेक कविताएं खड़ी बोली में लिखी हैं । 'राम चरित-चिंता मणि नामक एक बड़ा प्रबन्ध काव्य भी इन्होंने लिखा है । इसके कुछ प्रसंग

बहुत सुन्दर हैं। एक उदाहरण देखिए:—

कुशल से रहना यदि है तुम्हें, दनुज ! तो फिर गर्व न कीजिए।
शरण में गिरिए रघुनाथ के ; निबल के बल केवल राम हैं।

× × +

सुन कपे ! यम, इंद्र, कुबेर की न हिलती रसना मम सामने।
तदपि आज मुझे करना पड़ा मनुज-सेवक से बकवाद भी।
यदि कपे ! मम राक्षस-राज का स्तवन है तुझ से न किया गया
कुछ नहीं डर है ; पर क्यों वृथा निलज ! मानव-मान बढ़ा रहा ?

लोचन प्रसाद पांडेय द्विवेदी युग के खड़ी बोली के कवियों में पाँडेय जी का नाम सरसता के लिए प्रसिद्ध है 'सरस्वती' में आपकी रचनाओं को अच्छा स्थान मिलता था। 'मृगी दुख मोचन' इनकी एक सरस रचना है जिसमें करुण रस का अच्छा समावेश किया है। खड़ी बोली को कविता के उपयुक्त बनाने का जो आन्दोलन द्विवेदी द्वारा प्रारम्भ हुआ था उसमें पांडेय जो ने अच्छा योग दिया। फुटकर कविताओं के अतिरिक्त प्रबंध-कथा के रूप में भी आपने कविता की।

बा० मैथिलीशरण गुप्त जी का जन्म सन् १८८६ (सं० १९४३) में चिरगाँव (ज़िला झाँसी) में हुआ था। पिता श्री सेठ रामचरण बड़े भगवद्भक्त और काव्य-प्रेमी थे और ये दोनों ही बातें गुप्त जी को विरासत में मिलीं। स्कूली शिक्षा से विशेष दिलचस्पी न होने के कारण घर पर ही अध्ययन करते रहे। काव्य-रचना की ओर प्रवृत्ति थी ही ; द्विवेदी जी के प्रोत्साहन से इस क्षेत्र में धीरे-धीरे आगे बढ़ते गए और आज इनकी गणना युग के सर्वश्रेष्ठ कवियों में होती है।

गुप्त जी के मौलिक और अनूदित ग्रन्थों की संख्या लगभग २९

होगी। इनमें गुप्त जी की कवित्व-शक्ति का क्रमशः विकास होता गया है। प्रारम्भिक रचनाएं काव्य-कला की दृष्टि से विशेष महत्त्व की नहीं लेकिन सोये हुए देश में राजनीतिक चेतना जाग्रत करने में उन्होंने बड़ा योग दिया है। उनमें राष्ट्र-प्रेम और भारतीयता की भावना कूट-कूट कर भरी हुई है और यही गुप्त जी के काव्य की सब से बड़ी विशेषता है। 'भारत-भारती' ने आलस्य-ग्रस्त जाति के रक्त में गर्मी पैदा की और मृतात्माओं में जीवन का संचार किया। गुप्त जी अपने देश की संस्कृति के अमर गायक हैं। 'साकेत' उनका सर्व श्रेष्ठ काव्य है। चरित्र-चित्रण, प्रबन्ध-सौष्ठव, प्रकृति-चित्रण आदि सभी दृष्टि से 'साकेत' की गणना इस युग के सर्वोत्कृष्ट काव्यों में होती है। 'साकेत' में राम मानव रूप में हमारे सामने उपस्थित होते हैं। इसके बाद 'यशोधरा' और 'राधा' काव्य सहित्य की दो और उपेक्षिता नारियों की ओर गुप्त जी ने हमारा ध्यान आकृष्ट किया है। उर्मिला और यशोधरा—गुप्त जी के ये दोनों पात्र हमारे मन और मस्तिष्क पर अमिट प्रभाव छोड़ जाते हैं। उर्मिला एक कर्त्तव्यनिष्ठ पत्नी है ; वह अपने विरहोद्‌गार अपने हा अन्तर में छिपाए रखती है किसी पर प्रकट नहीं करती लेकिन एक क्षण के लिए भी प्रिय मिलन की आशा हृदय से नहीं जाने देती। उधर यशोधरा के चरित्र को तो गुप्त जी ने और भी अधिक निखार दिया है।

'साकेत' में गुप्तजी ने कैकयी का भी बड़ा मनोवैज्ञानिक चित्रण किया है। 'यशोधरा' के कुछ गीत बड़े मार्मिक है। गुप्तजी के गीतों में छायावादी कवियों से भिन्न एक गीत-कला का विकास हुआ है। उनके गीतों मे हमें आँखें बन्द करा आकाश की ऊंचाई में उड़ा ले जाने की क्षमता चाहे भले ही न हो ; पर लोक-गीतों के से सहज सौन्दर्य और माधुर्य के कारण उनमें हमारे अन्तर को छू लेने की क्षमता अवश्य है। उनके गीतों में और उनके समूचे काव्य में—उनके सरल सौम्य व्यक्तित्व का प्रति-विम्ब मिलता है।

भाषा पर गुप्तजी का असाधारण अधिकार है । प्रसाद गुण उनके काव्य की सबसे बड़ी विशेषता है । जितने सुन्दर और स्वाभाविक सम्वाद गुप्त जी के काव्य में हैं, आधुनिक युग के किसी और कवि के काव्य में नहीं । उनकी भाषा प्राञ्जल और सुसंस्कृत है वह कोमल तथा परुष दोनों तरह के भाव व्यक्त करने में सिद्धहस्त हैं । 'जयद्रथ वध' की भाषा में ओज है और इसमें वीर रस का सुन्दर परिपाक हुआ है । अलंकारों का प्रयोग उन्होने बड़े स्वाभाविक ढंग से किया है ।

गुप्तजी का काव्य-क्षेत्र अव्यक्त जगत् नहीं हैं, व्यक्त और दृश्य जगत् है, वर्तमान भारत का और सामयिक राजनीतिक और सामाजिक आन्दोलनों का जैसा जीता-जागता चित्र हमें गुप्त जी के काव्य में मिलता है अन्यत्र असम्भव हैं । गुप्तजी का काव्य हमें कर्मठता, राष्ट्र प्रेम और मानवता का अमर सन्देश देता है ।

पं० गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही' इनका जन्म संवत १९४० में हुआ था । ये हिन्दी के एक बड़े ही भावुक और सरस हृदय कवि हैं । इन्होंने पुरानी और नई दोनों पद्धतियों की कवितायें की हैं । हिन्दी के अतिरिक्त इनकी उर्दू की कविता भी बहुत अच्छी होती है । इनकी पुराने ढंग की कवितायें 'रसिक-मित्र,' 'काव्य - सुधा निधि,' और साहित्य - सरोवर आदि में प्रकाशित होती रहीं । आगे चलकर इन की प्रवृत्ति खड़ी बोली की ओर रही । 'प्रेम - पच्चीसी,' कुसुमांजली ; और 'कृषक – क्रन्दन' खड़ी बोली की प्रकाशित पुस्तकें हैं । इनमें खड़ी बोली का सुन्दर परिष्कृत रूप मिलता है ।

तू है गगन विस्तीर्ण तो मैं एक तारा क्षुद्र हूं ।
तू है महासागर अगम, मैं एक धारा क्षुद्र हूं ।
तू है महानद तुल्य तो मैं एक बूंद समान हूं ।
तू है मनोहर गीत तो मैं एक उसकी तान हूं ।

'सनेही' जी का ध्यान वर्तमान राजनीति की ओर भी गया है। इन्होंने अपनी राष्ट्रीय कवितायें 'त्रिशूल' नाम से लिखी हैं।

"नहीं पद दलित होने, दबने दाँत दिखाने ! आये हैं।
कठिन काम करने आये हैं, मार उठाने आये हैं।
जी न चुराओ जीवन रन से, समर सूरवत डटे रहो।
ईश्वरीय आदेश यही है, निर्बलता से हटे रहो।"

राम नरेश त्रिपाठी जी मूलतः उत्तर प्रदेश के जौनपुर जिले के निवासी हैं। आपका जन्म सम्वत १९४६ में हुआ। प्रारम्भिक शिक्षा के बाद आप प्रयाग आकर बस गए और वहीं पुस्तक प्रकाशन का कार्य करने लगे। हिन्दी भाषा के प्रचार में आपने बड़ा योग दिया है। ग्राम गीतों के संकलन का कार्य तो सब से पहिले आपने ही प्रारम्भ किया और एक उपेक्षित साहित्य को प्रकाश में लाकर हिन्दी की महान् सेवा की। खड़ी बोली के कवियों में त्रिपाठी जी का नाम अपनी सरलता, सुबोधता तथा मार्मिकता की दृष्टि से विशेष रूप से उल्लेखनीय है। संस्कृत पदावली के साथ प्रसाद गुण का सुन्दर निर्वाह करने में आप सफल हुए। 'पथिक' मिलन और 'स्वप्न' आपके तीन छोटे छोटे खंड काव्य हैं जिन में कल्पना ही प्रधानता होने पर भी देश प्रेम त्याग और सचरित्रता का सुन्दर शैली से निर्वाह हुआ है। प्रेम-भावना को विशद रूप में चित्रित करने में आपका स्वप्न नामक काव्य प्रसिद्ध है। त्रिपाठी जी बाद में राजनीतिक कार्यों में संलग्न हो गये। अतः काव्य रचना की ओर आपको विशेष रुचि नहीं रही। यदि आप उसी गति से काव्य रचना में लीन रहते तो आज आपकी देन हिन्दी साहित्य के लिये अपूर्व होती।

सियाराम शरण गुप्त आप हिन्दी के सुप्रसिद्ध राष्ट्रीय

कवि श्री मैथिली शरण गुप्त के अनुज हैं। आपका जन्म सं० १९२३ को चिरगांव, जिला झांसी में हुआ था। आपके पिता सेठ रामचरण का हिन्दी कविता के प्रति विशेष प्रेम था। सियाराम शरण जी की प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा गाँव में ही हुई किन्तु बाद में स्वाध्याय द्वारा आपने अच्छा ज्ञानार्जन किया। कविता लिखना आपने शैशव से ही प्रारम्भ कर दिया था। प्रारम्भिक कविताएं आप अपने ज्येष्ठ भ्राता को दिखाकर शुद्ध कराते रहे बाद में आपकी लेखनी में इतनी क्षमता अगई कि आपकी रचनाओं का विद्वानों में आदर होने लगा।

सियारामशरण जी प्रतिभा भी बहुमुखी हैं। उन्होंने काव्य, उपन्यास, नाटक, निबंध, कहानी सभी अंगों पर लिखा है। आपके काव्य ग्रन्थों मे मौर्य-विजय पहला खंड काव्य है जो द्विवेदी युग की इतिवृत्तात्मक काव्य प्रवृत्ति का अच्छा परिचय देता है। इसके बाद अनाथ, दूर्वादल, विषाद, आर्द्रा, आत्मोत्सर्ग, पाथेय, मृण्मयी, बापू, उन्मुक्त, दैनिकी, नकुल, नोआखाली, जय हिन्द, और गीतासम्बाद नामक छोटे बड़े ग्रन्थ लिखे।

सियाराम शरण की कविता का मूल भाव करुण है। वे मानववाद मे विश्वास रखते हैं, मानववाद की स्थापना ही उनका ध्येय है और उनका मूलभूत जीवन-दर्शन विशुद्ध मानववाद है। गांधीवाद से आपने पर्याप्त प्रेरणा प्राप्त की है और गांधीवाद आपके जीवन का उद्देश्य या साधन बना हुआ है। इनके काव्य को पढ़कर पाठक के मन पर एकान्त सात्विक और शान्तिमय प्रभाव पड़ता है। सांसारिक भोग विलास और वैभव के चित्र आपने अपने काव्य मे प्रस्तुत नहीं किये। जीवन के बाह्य संघर्ष को बचाकर आप मुक्ति-पथ पर अग्रसर होते दीख पड़ते हैं।

व्यक्तिगत जीवन में इन्हें सांसारिक सुख का अभाव ही रहा है। श्वास की बीमारी से शारीरिक कष्ट बहुत अर्से से बना हुआ है।

दाम्पत्य प्रेम और लोकस्वीकृति भी इन्हें उपलब्ध नहीं हुई किन्तु काव्य-प्रतिभा का वरदान इनके पास है और उसीका फल है कि आप सुन्दर काव्य रचना करने में पूर्ण सफल हैं।

अनूप शर्मा: द्विवेदी युग के उत्तरार्ध में अपनी सरस रचनाओं से खड़ी बोली को समृद्ध करने वाले समर्थ कवियों में शर्मा जी का प्रमुख स्थान है। प्रारम्भ में ब्रजभाषा मे ही पद्य-रचना करते थे किन्तु बाद मे खड़ी बोली का प्रचार होते ही आपने हिन्दी के कवित्त और संस्कृत के शिखरिणी मन्दा क्रान्ता, सृग्धरा आदि छन्दों को स्वीकार कर सुन्दर रचना की। संस्कृत के वर्ण वृत्तों का आपने अच्छा अभ्यास प्रदर्शित किया है। फुटकल प्रसंगी केलि कवित्त छन्द को अपना कर आपने अनेक विषयों पर छन्द लिखे हैं जो 'सुमनाजंलि' नामक संग्रह में संगृहीत हैं।

अनूपशर्मा का सिद्धार्थ एक प्रबन्धात्मक काव्य है। इसके अतिरिक्त आपने दो तीन और सुन्दर काव्य लिखे हैं। आपकी लेखनी का प्रवाह अब भी शिथिल नहीं हुआ है आप निरन्तर काव्य रचना करने में लीन रहते हैं। प्रबन्ध-काव्य की परम्परा का निर्वाह भी आप अच्छा कर सके हैं। महावीर स्वामी के चरित्र को लेकर भी आपने सुन्दर काव्य रचा हैं। अनूप जी अध्यापक का कार्य करते हैं और उत्तर प्रदेश के अनेक स्कूल कालेजों में प्रधानाध्यापक पद कर कार्य कर चुके हैं। आपने अंग्रेजी हिन्दी, और संस्कृत की उच्च शिक्षा पाई है। आप एम० ए०, एल० टी० हैं।

वियोगी हरि:—आधुनिक ब्रज - भाषा काव्य के प्राण श्रीयुत वियोगी का जन्म सं० १९५३ में हुआ था। उन्होंने भक्ति - कालीन कृष्ण कवियों की परम्पा को ग्रहण करते हुये अनेक सुन्दर भाव-पूर्ण पदों की रचना की है। प्रेम - पथिक', प्रेम - शतक' एवं 'प्रेमाञ्जलि' शीर्षक काव्य पुस्तकों में उनका भक्त - रूप अत्यन्त

मनोहारी रीति से प्रस्फुटित हुआ है इन ग्रन्थों में समाविष्ट कवितायें भाषा की सरसता तथा विचारों की प्राञ्जलता की दृष्टि से अत्यन्त सुन्दर बन पड़ी हैं।

कविवर वियोगी हरि जी प्रारम्भ में छतर पुर राज्य में निवास करते हुए कविता किया करते थे। किन्तु अपने कवि - जीवन के मध्यम - काल में वे प्रयाग चले गये और वहां राजनीति के क्षेत्र में प्रवेश कर 'चरखा - स्तोत्र', 'चरखे की गूंज' एवं 'असहयोग - वीणा' जैसे राष्ट्रवादी ग्रन्थों का प्रणयण किया। यद्यपि प्रौढ़ भावाभिव्यक्ति के दृष्टि कोण से ये रचनायें अधिकांश में असफल ही हैं, तथापि इनसे वियोगी हरि जी के राष्ट्र - प्रेम का परिचय अवश्य प्राप्त होता है।

हिन्दी में गद्य - काव्य सम्बन्धी कृतियों का अभाव लक्षित कर वियोगी हरि जी ने 'भावना' एवं 'अन्तर्नाद' की रचना द्वारा इस कमी की अत्यन्त उत्कृष्ट रीति से पूर्ति की। गान्धी जी के अहिंसात्मक सिद्धान्तों में आस्था प्रगट करते हुये उन्होंने उनके प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलि समर्पित करने के हेतु अभी हाल ही मे 'श्रद्धा-कण' नामक एक नवीन गद्य-काव्य का सृजन किया है। गान्धी जी के निर्वाणोत्तर साहित्य में अपनी रीति की यह सर्व-श्रेष्ठ पुस्तक है।

ब्रज-भाषा के अनन्य प्रेमी होने के कारण वियोगी हरि जी ने उसके साहित्य का अत्यन्त गम्भीर रूप मे परिशीलन किया है। उसकी काव्य-कृतियों के मार्मिक सौन्दर्य से प्रभावित हो उन्होंने उसके प्रमुख भाग का 'ब्रज-माधुरी-सार' नाम से एक उत्कृष्ट सङ्कलन किया है। पद्य की भाँति गद्य के क्षेत्र में भी उन्होंने 'साहित्य-विहार' तथा 'प्रेम-योग' जैसी कुछ सुन्दर रचनाऐं प्रस्तुत की हैं। उनके गद्यात्मक निबन्धों का प्रवाह-सौष्ठव विशेष रूप से वरेण्य तथा उल्लेखनीय है।

वियोगी हरि जी के ग्रन्थों में 'वीर-सतसई का स्थान सर्व-प्रमुख तथा सर्वाधिक महत्त्व-पूर्ण है। अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन ने इस कृति को १२००) के 'मंगला प्रसाद-पारितोषिक' द्वारा समादृत किया है। इसके अन्तर्गत उन्होंने रीति-काल के शृंगार-भाव का विशेष रूप से निराकरण कर शौर्यान्वेष्टित वीरत्व के उन्मेष का प्रस्थापन किया है। इसमें उन्होंने उत्साह-भाव के प्रति आदर प्रगट करने के हेतु वीर-प्रशस्तियों का आश्रय ग्रहण किया है। यद्यपि इसके कतिपय प्रकरणों में वे वीर रस का वांछित सन्निवेश उपस्थित न कर सके हैं, तथापि अपने युग की मान्यताओं के अनुकूल होने के कारण यह एक सर्वथा सफल काव्य है। उदाहरण के रूप में हम इसमें से दो सुन्दर छन्द उद्धृत करते हैं—

सोभित नील जमीन पै रुधिर-बिन्दु-कृत जाल।
लसति तमाल-लतान पै मनहुं बधूटी-माल॥
सुर-सरि जौ अंत्यज दुहूं अच्युत-पद-संभूत।
भयौ एक क्यों छूत, औ दूजो रह्यौ अछूत!

इनमे से द्वितीय पद में हरिजन-आन्दोलन के प्रति उनकी गहन सहानुभूति की भावना के दर्शन उपलब्ध होते हैं। सामाजिक एवं राजनीतिक क्षेत्रों में अस्पृश्यता-निवारण को सक्रिय-सहयोग प्रदान करने के साथ साथ उन्होंने अपने साहित्य मे भी इस सिद्धान्त को पर्याप्त प्रश्रय प्रदान किया है।

श्रीयुत गोपाल शरण सिंह द्विवेदी युग के कवि हैं। उक्त युग की विशिष्टताओं को ग्रहण करने के साथ साथ उन्होंने उसके पश्चात्वर्ती काव्य - सिद्धान्तों को भी अत्यन्त सहृदयता - पूर्वक स्वीकार किया है। सौजन्य - पूर्ण प्रकृति के होने के कारण उनके काव्य में स्वभाविकता एवं व्यवहारिकता का भी उप-युक्त समावेश हुआ है। 'कादम्बिनी', 'ज्योतिषमती', 'संचिता',

'माधवी' और 'मानवी' उनके पांच उत्कृष्ट काव्य - संग्रह हैं। इन ग्रन्थों में अपनी कविताओं का संचयन करते समय उन्होंने विषय-विभाजन के तत्व पर विशेष रूप से ध्यान दिया है।

कविवर गोपाल शरण सिंह जी को कविताओं में भावनाओं का क्रमिक विकास दृष्टिगत होता है। यद्यपि उन्होने वर्णन के हेतु परम्परागत विषयों को ही स्वीकार किया है, तथापि अपनी सर्वतो मुखी प्रतिभा और असाधारण कल्पना के योग से उन्होंने उन्हीं वर्ण्य - वस्तुओं में एक नूतन सौन्दर्य की सृष्टि कर दी है। मौलिकता के तत्व का उनके काव्य मे पद-पद पर प्रतिष्ठान हुआ है।

गोपाल शरण सिंह जी की कविता का प्रमुख गुण उनकी अभि-व्यञ्जना के निर्बोध - प्रवाह में सन्निहित है। भाषा के माधुर्य ने उनकी शैली की मनोहारिता मे और भी अधिक योग प्रदान किया है। छन्द-बद्ध होने के कारण उनके पद - संयोजन मे गति और उल्लासमयी परिस्थितियों के सर्वत्र दर्शन होते हैं। उनकी भाषा की सरलता और स्पष्टता का एक सुन्दर उदाहरण देखिये:—

मनोहर देह - लता का फूल,
समझ कर उसको शोभा-मूल।
रहे हैं दृग - अलि उस पर भूल,
सरासर है यह उनकी भूल॥

ठाकुर साहब की कविता के प्रौढ़ भाग का प्रणयण सम्बत् १९७१ के पश्चात् ही प्रारम्भ होता है। उन्होंने कविता में खड़ी बोली के प्रारम्भिक स्वरुप को निश्चित करने में हार्दिक सहयोग प्रदान किया-- अपनी सफल अभिव्यञ्जना द्वारा उन्होंने उसके समक्ष एक रमणीय आदर्श स्थापित करने का सफल प्रयत्न किया। जीवन के विभिन्न घात - प्रतिघातों का उन्होंने अत्यन्त गम्भीर अनुभव प्राप्त किया

और उन्हें अपनी काव्य - पंक्तियों में पर्याप्त आकर्षक रूप में उपस्थित किया।

गोपाल शरण सिंह जी ने अपने साहित्य में आस्तिकता के सिद्धान्त का सर्वत्र समान रूप से पालन किया है। उन्होंने ईश्वर को ही सम्पूर्ण सृष्टि का नियन्ता माना है और उसके प्रत्येक तल में एक चिरन्तन आभा का अस्तित्व पाया है। 'माधवी' में उन्होने नारी - जीवन के प्रति अपनी आदर्शात्मिक मान्यताओं को मूर्त रूप प्रदान किया है। मानवीय दुर्बलताओं का निराकरण कर उनके स्थान पर उसके हृदय की सात्विकता को प्रतिष्ठित करना ही उनका प्रमुख लक्ष्य हैं।

प्रकृति के सहज निसर्ग स्वरुप को प्रतिपादित करने में गोपाल शरण सिंह जी अपने युग के कवियों में किसी से पीछे नहीं हैं। उसके अणु - अणु में उनका व्यापक परिचय है और उसकी सुषमा के प्रत्येक कण को उन्होने अपनी कविता में अभिरूपित किया है। ग्रन्थि-विहीन भाव - सौन्दर्य का विधान करने में वे अप्रतिम हैं और इस दृष्टि से हिन्दी की वर्तमान काव्य - धारा में उनकी कविता का एक पृथक एवं महत्व— पूर्ण स्थान है।

छायावाद युग

श्री जयशंकर 'प्रसाद' का जन्म काशी के एक प्रतिष्ठित परिवार में माघ शुक्ला दशमी सं० १९४६ को हुआ था। इनके पिता बाबू देवी प्रसाद 'सुंघनी साहु' के नाम से प्रसिद्ध थे और काशी के एक सुप्रसिद्ध व्यापारी थे। पिता की असमय मृत्यु के कारण उनकी शिक्षा घर पर ही हुई। सत्रह वर्ष की अवस्था में बड़े भाई के स्वर्गवास के बाद 'प्रसाद' का जीवन ही बदल गया। संवत् १९९४ में क्षयरोग से उनका शरीरान्त हो गया।

उनकी आरम्भिक रचनाएं–चित्राधार, कानन-कुसुम, महाराणा का महत्व, करुणालय, प्रेम-पथिक आदि हैं, मध्यकालीन रचनाएं--झरना, आँसू और लहर और कामायनी उनकी अंतिम और सर्वोत्कृष्ट रचना हैं। इनके अतिरिक्त प्रसाद जी के कई नाटक, उपन्यास, कहानी-संग्रह और एक निबन्ध-संग्रह है।

'कामायनी' प्रसाद जी की अंतिम और सर्वश्रेष्ठ काव्य-कृति है। इसका प्रकाशन हिन्दी-साहित्य की एक घटना है। इसकी कथा वैदिक साहित्य के विभिन्न स्थलों से ली गई है। मनु, श्रद्धा और इड़ा इसके प्रमुख पात्र हैं। इसमें जल प्लावन के बाद सृष्टि के पुनर्विकास की कथा वर्णित है। रूपक द्वारा कवि ने जीवन की एक अत्यन्त महत्वपूर्ण समस्या का हल प्रस्तुत किया है। मनु चेतन मन के प्रतीक हैं, श्रद्धा रागात्मिका वृत्ति और इड़ा तर्क-कुतर्क पूर्ण बुद्धि। मनु जब तक इड़ा के आधीन रहते हैं उन्हें शांति नहीं मिलती—वे केवल भौतिक विकास को अपने जीवन का चरम उद्देश्य मान बैठते हैं और निरन्तर इधर-उधर भटकते हैं। अंत में श्रद्धा ही मार्ग प्रदर्शन करके उन्हें उस स्थान पर ले जाती है जहां इच्छा, कर्म और ज्ञान के सामञ्जस्य से उन्हें पूर्ण आनंद की उपलब्धि होती है।

प्रसाद जी की भाषा में माधुर्य का प्राधान्य होने पर भी भाव-गाम्भीर्य के कारण प्रसाद गुण का सर्वथा अभाव है। उनके काव्य को वही भली-भांति समझ सकता है जिसकी कल्पना-शक्ति सजग हो, जिसने जीवन को प्यार किया हो और यौवन के प्रति महत्वपूर्ण दृष्टि-कोण रखता हो!

युगों तक वनों में चक्कर काटने और थोथी भावुकता की आंधियों के थपेड़े खाने के बाद हिंदी-काव्य ने 'कामायनी' में अपनी आत्मा—अपने सच्चे स्वरुप—को प्राप्त किया है। 'कामायनी' के संदेश को राष्ट्रीयता और जातीयता के बंधनों में नहीं बाँधा जा सकता—वह

सम्पुर्ण मानवता का काव्य है और उसका संदेश सार्वभौमिक और सार्वकालिक है।

अरुण यह मधुमय देश हमारा ।
जहां पहुंच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।
सरस तामरस गर्भ विभा पर नाच रही तरुशिखा मनोहर।
छिटका जीवन हरियाली पर-मङ्गल कुंकुम सारा ।
लघु सुरधनु से पंख पसारे-शीतल मलय समीर सहारे।
उड़ते खग जिस ओर मुँह किये—समझ नीड़ निज प्यारा।
बरसाती आँखों के बादल—बनते जहाँ भरे करुणा जल।
लहरें टकराती अनन्त की - पाकर जहां किनारा ।
हेम कुम्भ ले उषा सबेरे—भरती ढुलकाती सुख मेरे।
मन्दिर ऊंघते रहते जब—जग कर रजनी भर तारा।

आंसू

जो घनीभूत पीड़ा थी, मस्तक मे स्मृति-सी छाई,
दुर्दिन में आँसू बनकर, वह आज बरसने आई ॥१॥
मधुराका मुसक्याती थी, पहले देखा जब तुमको।
परिचित से जाने कब के, तुम लगे उसी क्षण हमको ॥२॥
शशि,मुख पर घूंघट डाले अन्तर में दीप छिपाये,
जीवन की गोधूली में कौतूहल से तुम आये ॥३॥
घन में सुन्दर बिजली—सी, बिजली में चपला चमक-सी,
आंखों में काली पुतली, पुतली में श्याम झलक सी ॥४॥
माना कि रूप, सीमा है, सुन्दर, तव चिर-यौवन में,
पर समा गये थे मेरे मन के निस्सीम गगन में ॥५॥

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' जी का जन्म बंगाल के महिषादल राज्य में सं० १९५३ में हुआ। इनके पिता का नाम पं० रामसहाय त्रिपाठी था। मूलरूप में वे उतर प्रदेश उन्नाव ज़िले के निवासी हैं।

बंगाल में शिक्षा प्राप्त करने के कारण बंगला-साहित्य का भी उन्होंने अच्छा अध्ययन किया। संस्कृत साहित्य का निराला जी ने गम्भीर मनन किया है। दर्शन से उन्हें विशेष प्रेम रहा है और इसी दार्शनिक भावना से उनकी मानसिक पृष्ठभूमि तैयार हुई।

निराला की प्रतिभा बहुमुखी है। उन्होंने काव्य-रचनाके अतिरिक्त साहित्य के अन्य अंगो की भी समृद्धि की है। इनके कई उपन्यास, जीवनियां, रेखा-चित्र, कहानी संग्रह और निबन्ध-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। परिमल, गीतिका, तुलसीदास, अनामिका, अणिमा, कुकुरमुत्ता आदि इनके प्रमुख काव्य ग्रंथ हैं।

उनके प्रगीतों (लीरिक-कविताओं) में छायावादी शैली का सफलचित्रण हुआ है। इनमें श्रृंगारिक भावों का प्राधान्य है। जुही की कली' इस ढंग की सबसे प्रसिद्ध और प्रौढ कविता है जिसकी रचना उन्होंने अपने कविता काल के आरम्भ में ही की थी। 'जागो फिर एक बार' 'राम की शक्ति-पूजा' ओजस्विता से ओत-प्रोत रचनाएं हैं। 'जागो फिर एक बार' में कवि ने राष्ट्रीय चेतना को वाणी दी है। वर्णनात्मक कविताओं में 'तुलसीदास' खण्ड काव्य आता है जो निराला जी की सर्वश्रेष्ठ रचनाओं में है। इसमें कवि ने गोस्वामी जी की अध्यात्म परायणता और मनोवैज्ञानिक संघर्ष का सुन्दर चित्र खींचा है।

निराला जी ने अपने प्रगतिशील विचारों और भावनाओं की अभिव्यक्ति 'तोडती पत्थर' आदि कविताओं में की है। 'तोड़ती पत्थर' में कवि ने अपनी लेखनी -तूलिका से एक मज़दूरिन का चित्र उतारा है। निराला जी ने उस वर्ग को अपनी सहानुभूति दी है जिसकी स्थिति अभाव और दुःख दरिद्रता को लेकर है, जिन्होंने शोषण दमन के अतिरिक्त जीवन में कुछ नहीं देखा। इस ढंग की कविताएं 'नए पत्ते' में हैं। इनमें कवि ने ग्रामीणों का बड़ा सजीव चित्रण किया है।

निराला ने समाज और सामाजिक विषमताओं को लक्ष्यकर जो कविताएं लिखी है उनमे बड़े तीखे व्यंग्य और हास्य का पुट है। कुकुरमुत्ता में कवि ने पूंजीपतियों का खाका खींचा है। उनका व्यंग्य बड़ा मार्मिक और चुटीला है। निराला का प्रकृति चित्रण भी परिपाटीबद्ध वर्णनों से भिन्न हैं। संध्या सुन्दरी का उन्होंने जैसा चित्र खींचा है वैसा शायद भारतीय भाषाओं के काव्य मे अन्यत्र नहीं मिल सकता।

निराला जी की भाषा संस्कृत-शब्द बहुला है। लम्बे समास बनाने की प्रवृत्ति उनमे बहुत दिखाई पड़ती है। उसमे यद्यपि माधुर्य की कमी नहीं तथापि निराला के व्यक्तित्व की तरह ओज ही उसका प्रधान गुण है। विषय दुरुहता के कारण कहीं-कहीं प्रसाद गुण का अभाव हो गया है लेकिन बहुत कम। मुक्त छंद निराला जी की अमर देन हैं। संगीतात्मकता भी इनके काव्य की एक विशेषता है। कण्टकाकीर्ण संकीर्ण पथ से कविता कामिनी को निकाल कर प्रशस्त मार्ग पर लाने का सराहनीय प्रयास निराला जी ने किया। निराला की भाषा प्रतीक विधायिनी और भावानुगामिनी है।

उदाहरण –

विधवा

वह इष्ट देव के मंदिर की पूजा सी,
वह दीप शिखा सी शान्त, भाव में लीन,
वह क्रूर काल तांडव की स्मृति रेखा सी,
वह टूटे तरु की छुटी लता सी दीन,
दलित भारत की ही विधवा है।
षड् ऋतुओं का शृंगार,
कुसुमित कानन में नीरव पद संचार,
अमर कल्पना में स्वच्छन्द विहार,

व्यथा की भूली हुई कथा है ।
उसका एक स्वप्न अथवा है ।

जागो फिर एक बार

जागो फिर एक बार !
प्यारे जगाते हुए हारे सब तारे तुम्हें ।
अरुण पंख तरुण किरण
खड़ी खोलती है द्वार

जागो फिर एक बार ।
आँखें अलियों सी
किस मधु की गलियों में फंसीं,
बन्द कर पाँखें
पी रही हैं मधु मौन
या सोई कमल कोरकों में ?
बन्द हो रहा गुंजार

जागो फिर एक बार !
अस्ताचल ढले रवि,
शिशि छवि विभावरी मे
चित्रित हुई है देख
यामिनी गन्धा जगी,
एक टक चकोर दर्शन प्रिय,
आशाओं भरी मौन भाषा बहुभामयी

श्री सुमित्रानन्दन पन्त का जन्म अल्मोड़ा के अन्यर्गत कौसानी ग्राम मे २४ मई सन् १६०० को हुआ । जन्म के ६ घण्टे बाद ही माता का अवसान हो गया किन्तु स्नेहालु पिता को० गङ्गादत्त पन्त ने उन्हें माता का अभाव कभी खटकने न दिया । पन्त जी अपने

कालेज-जीवन में ही काव्य-रचना में प्रवृत्त हो चुके थे। पाश्चात्य साहित्यकारों के तथा संस्कृत के काव्य-ग्रन्थों का अध्ययन और भारतीय दर्शन, उपनिषद् तथा धर्म-शास्त्रों का मनन पन्त जी ने अच्छी तरह किया है।

वीणा, उच्छ्‌वास, ग्रन्थि, पल्लव, गुञ्जन, युगांत, युगवाणी, ग्राम्या, स्वर्ण किरण, स्वर्ण धूलि, उत्तरा, युगपथ आदि पन्तजी की प्रमुख रचनाएँ हैं।

स्वच्छन्दतावाद के दो मुख्य लक्षण हैं—जिज्ञासा और सौन्दर्य-प्रेम। छायावादी काव्य में ये दोनों पूरी तरह विद्यमान हैं। सौन्दर्य-लालसा का सबसे अधिक विकसित रूप पन्त के काव्य में पाया जाता है। पन्त को काव्य प्रेरणा सबसे पहले प्रकृति से मिली। उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है, 'कविता की प्रेरणा मुझे सबसे पहले प्रकृति-निरीक्षण से मिली जिसका श्रेय मेरी जन्मभूमि कूर्माचल-प्रदेश को है।' कबि को प्रकृति के कण-कण में जीवन बिखरा दिखाई देता है, उसे प्रकृति से सहज अनुराग है; उसकी हर बारीकी से कवि अच्छी तरह परिचित है। प्राकृतिक रंग-रूपों को वाणी देकर कवि ने जो चित्र उतारे हैं, वे उसकी असाधारण प्रतिभा के द्योतक हैं। प्राकृतिक-व्यापारों में एक अतीन्द्रिय कोमलता है; उनके प्रति जिज्ञासा-भाव के सबसे मनोहर चित्र पन्त की लेखनी से उद्‌भूत हुए हैं। प्रकृति का ऐसा दिव्य रूप भारतीय साहित्य में कालिदास और भवभूति के बाद शायद पन्त में ही मिलेगा। परोक्ष का आकर्षण कवि को पार्थिव धरातल से ऊपर उठा ले जाता है। प्रकृति के हर व्यापार में परोक्ष सत्ता के रहस्यमय-स्पर्श की अनुभूति होती है—"अहे! सुख-दुःख के सहचर मौन? नहीं कह सकता तुम हो कौन!"

प्रेम-भावना के अन्तर्गत कवि ने मन की वेदना की अनुभूतियों के चित्र खींचे हैं। वियोग-जनित वेदना की आँच में तपकर ही कविता

का जन्म होता है। कवि की ये पंक्तियाँ बड़ी लोकप्रिय हैं:—

"वियोगी होगा पहला कवि, आह से उपजा होगा गान;
उमड़कर आँखों से चुपचाप, बही होगी कविता अनजान।"

'गुञ्जन' में पन्त ने मानव जीवन के प्रति एक दार्शनिक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। जीवन के लिये सुख-दुःख दोनों ही आवश्यक हैं—'सुख-दुःख के मधुर मिलन से यह जीवन हो परिपूरण।' फिर वह कहता है कि ये सुख-दुःख तो अस्थिर हैं लेकिन जीवन नित्य है—चिरन्तन !

युगवाणी और ग्राम्या में बुद्धि तत्त्व की प्रधानता के कारण कवि का विचारक रूप ऊपर उभर आया है। कवि ने उसे 'गीतगद्य' कहा है। इसमें कवि राजनीतिक वादों में उलझ गया है और उसने गांधीवाद और मार्क्सवाद के बीच एक स्वतन्त्र मार्ग निर्धारित किया है। 'ग्राम्या' में हम कवि को देश की प्रगति विरोधी शक्तियों से मोर्चा लेते हुए पाते हैं। वह व्यंग्य, परिहास और कटुसूक्तियों से काम लेता है। कवि समूचे विश्व को ग्रामीण नयन से देखता है—'देख रहा हूं निखिल विश्व को मैं ग्रामीण नयन से।' उसने ग्रामीणों को अपनी बौद्धिक सहानुभूति दी है।

भाषा और भाव का जैसा सुन्दर समन्वय पन्त में पाया जाता है, वैसा विश्व-साहित्य के इने गिने कवियों में ही मिलेगा। खड़ी बोली के काव्योपयोगी भाषा न होने के आरोप उन्होंने निर्मूल सिद्ध कर दिए। 'प्रसादजी' की तरह उनमें भी तत्सम शब्दों के प्रयोग के प्रति काफी आग्रह दिखाई पड़ता है। शब्द-चयन उनकी परिष्कृत रुचि का परिचायक है। उन्होंने विशेषण-विपर्यय, मानवीकरण और लाक्षणिक प्रयोगों द्वारा भाषा को समृद्ध किया है। वह शब्दों द्वारा वर्णित विषय का चित्र-सा उतार देते हैं। उनकी शब्द-योजना में संगीतमय-लालित्य होता है। अपनी सब कविताओं में उन्होंने मात्रिक छन्दों का प्रयोग

किया है जिनमें लय का विशेष ध्यान रखा जाता है। इस काल में नूतन अभिव्यञ्जना-शैली और अभिनव-छन्द-विधान की उद्भावनाएं हुई हैं और इन में पंत जी का महत्त्वपूर्ण योग रहा है।

पन्त के काव्य में काव्य, चित्र और संगीत का मनोहारी सामञ्जस्य है। वे इस युग के सर्वश्रेष्ठ कवियों में हैं।

उदाहरण—

स्तब्ध ज्योत्स्ना में जब संसार
चकित रहता शिशु सा नादान,
विश्व के पलकों पर सुकुमार
विचरते हैं जब स्वप्न अजान,
न जाने, नक्षत्रों से कौन
निमन्त्रण देता मुझको मौन !
सघन मेघों का भीमाकाश
गरजता है जब तमसाकार,
दीर्घ भरता समीर निःश्वास,
प्रखर झरती जब पावस धार,
न जाने, तपत तड़ित में कौन
मुझे इंगित करता तब मौन !
देख वसुधा का यौवन भार
गूंज उठता है जब मधुमास,
विधुर उर के से मृदु उद्‌गार
कुसुम जब खुल पड़ते सोच्छ्वास,
न जाने, सौरभ के मिस कौन
संदेशा मुझे भेजता मौन !

(बालापन)

वह ज्योत्स्ना से हर्षित मेरा
कलित कल्पनामय संसार,
तारों के विस्मय से विकसित
विपुल भावनाओं का हार;
अहो कल्पनामय ! फिर रच दो
वह मेरा निर्भय अज्ञान,
मेरे अधरो पर वह माँ के
दूध से धुली मृदु मुसकान ।
इस अभिमानी अंचल में फिर
अंकित करदो, विधि ! अकलंक,
मेरा छीना बालापन फिर
करुण ! लगादो मेरे अंक !
विहग बालिका का सा मृदु स्वर,
अर्ध खिले, नव, कोमल अंग,
क्रीड़ा कौतूहलता मन की,
वह मेरी आनन्द उमंग,

महादेवी वर्मा—सुश्री महादेवी वर्मा का जन्म फर्रुखाबाद में सं० १९६४ वि० सन् (१९०७) में हुआ था । पिता श्री० गोविन्द प्रसाद वर्मा एक कर्मनिष्ठ दार्शनिक व्यक्ति थे और कालेज में अध्यापन-कार्य करते थे । माता हेमरानी देवी एक भक्त और भावुक नारी थीं। इन्हीं के स्नेहाञ्चल की छाया में पलकर महादेवी की प्रवृत्ति काव्योन्मुखी हुई । छोटी-अवस्था में इनका विवाह हो गया और ससुराल में पहुंचते ही इनकी पढ़ाई बन्द हो गई । पर बाद में श्वसुर की मृत्यु के पश्चात् इन्होंने फिर अध्ययन प्रारम्भ किया और संस्कृत लेकर एम० ए० किया। इस समय ये प्रयाग-

महिला-विद्यापीठ की प्रिन्सिपल हैं और हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कवियों में इनकी गणना होती है। 'नीरजा' पर पांच सौ का सेकसरिया-पुरस्कार और 'यामा' पर बारह सौ का मंगला प्रसाद-पारितोषिक प्राप्त कर चुकीं हैं।

नीहार, रश्मि, नीरजा, सान्ध्यगीत, यामा, दीपशिखा—इन कविता संग्रहों के अतिरिक्त महादेवीजी का निबन्ध संग्रह 'शृंखला की कड़ियां' और संस्मरण 'अतीत के चल-चित्र' नाम से प्रकाशित हो चुके हैं। महादेवीजी की काव्य-प्रतिभा विकासोन्मुख है। हिंदी-साहित्य अभी उनसे बहुत कुछ पाने की आशा कर सकता है।

महादेवीजी का भाव-क्षेत्र सीमित है। उनके गीतों मे सर्वत्र एक ही भावना व्याप्त है और वह है उस अव्यक्त और असीम के प्रति प्रेमाराधन, जिसे पाने के लिए सारी सृष्टि अभिसार कर रही है, जो प्रकृति के एक-एक कण में व्याप्त है पर जो बन्धन मे नहीं आता। अपने मन-मन्दिर में वे प्रेम-भाव से सदा ही उस अगोचर प्रियतम के लिए प्रेम की आरती उतारती हैं, जिसकी अलौकिक छटा से विश्व का अणु-अणु आलोकित है। उनकी विरह-भावना माधुर्यपूर्ण है; उनकी रहस्यानुभूति मे प्रगाढ़ता है। रहस्यवादी कवि की आत्मा विश्वात्मा से मिलन के लिए व्याकुल रहती है, उसे क्षण भर चैन नहीं। इस वेदना की व्यञ्जना कवियित्री ने अनेक प्रकार से की है, जो बहुत ही मार्मिक बन पड़ी है। अपने उस अलौकिक प्रियतम की राह को आलोकित करने के लिए वे अपने प्राणों का दीपक जलाती हैं—

'मधुर-मधुर मेरे दीपक जल !
युग-युग प्रतिदिन प्रतिक्षण प्रतिपल,
प्रियतम का पथ आलोकित कर !'

वह अगोचर, अरूप प्रिततम स्वयं उनके हृदय में छिपा हुआ है जिससे वह प्रश्नों की झड़ी लगा देती हैं।

महादेवी की वेदना प्रसूत रचनाओं में वियोग-शृंगार की भावना पल्लवित हुई है। उनकी प्रेम-भावना में एक अनन्त कसक है। प्रिय की दी हुई होने के कारण यह कसक मधुर है और वह उसे सुरक्षित रखना चाहती है—

'तुमको पीड़ा में ढूँढा, तुम मे ढूढूँगी पीड़ा।'

महादेवीजी के प्रकृति-चित्रण मे भी रहस्यवादी-भावना ही प्रधान बन गई है। स्वतन्त्र-चित्रण उनमें नही मिलेगा क्योंकि समस्त शृष्टि उसी दिव्य-प्रियतम की छवि से छविमान है। उनके चित्रण में प्रकृति अपनी जड़ता को छोड़ सजीव हो उठी है।

महादेवी की भाषा मधुर, संस्कृत-पदावली से युक्त है लाक्षणिक प्रयोगों से काव्य-सौन्दर्य द्विगुणित हो उठा है। प्रतीकात्मक-पद्धति का भी सहारा उन्होने लिया है। रहस्यानुभूति की सम्यक अभिव्यक्ति के लिए कवि की काव्य-कला अत्यन्त उत्कृष्ट होनी चाहिए। उसको थोड़े से शब्दों में बहुत-कुछ कह देना होता है, इस व्यक्तिगत अनुभूति को शब्दों का परिधान देकर खड़ा कर देना बड़ा कठिन कार्य होता है। इसलिए अधिकांश रहस्यवादी कवि असफल रहते हैं पर महादेवी जी अपनी इस अनुभूति को काव्य का मनोरम रूप देने में पूरी तरह सफल हुई हैं। खड़ी बोली को काव्योचित रूप देने में महादेवी जी का भी बहुत बड़ा हाथ रहा है। वह नए छन्दों और नई लयों की प्रवर्त्तिका हैं।

उदाहरण—

जो तुम आ जाते एक बार।
  कितनी करुणा कितने सँदेश
    पथ में बिछ जाते बन पराग,
      गाता प्राणों का तार तार

अनुराग भरा उन्माद राग;
आँसू लेते वे पद पखार
हँस उठते पल में आर्द्र नयन
धुल जाता ओठों से बिषाद,
छा जाता जीवन में बसन्त
लुट जाता चिर संचित विराग;
आंख देतीं सर्वस्व बार।
निश्वासों का नीड़ निशा का
बन जाता जब शयनागार,
लुट जाते अभिराम छिन्न
मुक्तावलियों के बन्दनवार,
तब बुझते तारों के नीरव नयनों का यह हाहाकार,
आंसू से लिख जाता है कितना अस्थिर है संसार।

गीत

मधुर मधुर मेरे दीपक जल।
युग युग प्रति दिन प्रतिक्षण प्रतिपल।
प्रियतम का पथ आलोकित कर।
सौरभ फैला विपुल धूप बन,
मृदुल मोम सा घुल रे मृदु तन;
दे प्रकाश का सिन्धु अपरिमित,
तेरे जीवन का अणु गल गल।
पुलक पुलक मेरे दीपक जल।
सारे शीतल कोमल नूतन,
माँग रहे तुझ से ज्वाला कण;
विश्व शलभ सिर धुन कहता मैं,
हाय न जल पाया तुझ मे मिल।
सिहर सिहर मेरे दीपक जल।

माखन लाल चतुरवेदी - आपका जन्म सम्वत् १६४५ में मध्य प्रदेश में हुआ। 'खंडवा' से प्रकाशित होनेवाले साप्ताहिक पत्र 'कर्मवीर' का आपने चिरकाल तक सम्पादन किया है। हिन्दी काव्य मे राष्ट्रीय भावना को उत्तेजित करने वाले कवियों में आपका अन्यतम स्थान है। हार्दिक संवेदन तथा अनुभूति के धरातल पर आपकी कवितायें बहुत ही आकर्षक और हृदयग्राही प्रतीत होती है। 'एक फूल की चाह' कविता 'भारतीय आत्मा' नाम से आपने ही लिखी थी जो आपकी राष्ट्र प्रेम की कविताओं में अपना ऐतिहासिक स्थान रखती है। 'हिम किरीटिनी' और 'हिम तरंगिनी' नाम से आपके ही कविता संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। गद्य लिखने मे भी आपको पूर्ण सफलता मिली है। गद्य के काव्य की अनुपम छटा का समावेश करने की चातुरी आपको निसर्ग-सिद्ध है। 'साहित्य देवता' आपके काव्य-लेखों का संग्रह है।

गुरु भक्त सिंह'–ठाकुर गुरुभक्तसिंह 'भक्त' कविवर अयोध्या सिंह जी उपाध्याय 'हरिऔध' के अनुज भ्राता हैं। उनका जन्म संवत् १६५० मे जिला गाजीपुर के जमानिया नामक स्थान मे हुआ था। उन्हों ने साहित्य के स्वाध्याय के साथ-साथ विश्वविद्यालय मे बी० ए० एल० ल० बी० तक शिक्षा प्राप्त की। खड़ी बोली के आधुनिक कवियों मे उनका स्थान अत्यन्त प्रमुख है। उनकी कविताओ पर उनके सरल व्यक्तित्व का भी एक विशेष प्रभाव पड़ा है।

कविवर गुरुभक्त सिंह जी की कविताएँ अनुभूति और कल्पना दोनों ही की दृष्टि से अत्यन्त रमणीय बन पड़ी हैं। वस्तुतः उनमें कवि की प्रतिभा का अत्यन्त उपयुक्त सन्निवेश हुआ है। उन्होंने अपने समीपवर्ती वातावरण में सदैव एक विशिष्ट चेतना का अनुभव किया है और अपने काव्य में उसे यथा - स्थान प्रतिफलित करने का

ध्यान रखा है। 'वंशी-ध्वनि', 'सरस सुमन', 'वन श्री' और 'कुसुम कुञ्ज' नामक काव्य-संग्रह उनकी कवित्व शक्ति के उत्कृष्ट द्योतक हैं।

स्फुट कविताओं के अतिरिक्त गुरुभक्तसिंह जी ने हिन्दी-साहित्य को 'विक्रमादित्य' और 'नूरजहाँ' नामक दो सुन्दर प्रबन्ध-काव्य भी प्रदान किये हैं। कवि-कल्पना और प्रौढ़ाभिव्यक्ति के दृष्टि-बिन्दु से 'नूरजहाँ' का अपने प्रकार के अन्य काव्य-ग्रन्थों मे एक विशेष स्थान है। इसमें कवि ने शृंगार एव वीर रस के साथ-साथ वात्सल्य रस का भी अत्यन्त सुन्दर निरूपण किया है।

स्फूर्ति-प्रद एवं प्राञ्जल भाषा के साथ-साथ गहन भावाभिव्यञ्जना भी गुरुभक्तसिंह जी की कविता की एक विशेषता है। किसी भी तथ्य का अङ्कण करने से पूर्व उन्होने उसका गम्भीर तथा व्यापक परिशीलन किया है और यही कारण है कि उनकी कविताओं मे स्वाभाविकता एक विशिष्ट मात्रा में सन्निहिति हुई है। प्राकृतिक सुषमा से निकट रूप में परिचित होने के कारण उन्होने उसका यथाविध चित्रण किया है। प्रकृति के उग्ररूप की अपेक्षा उसके कोमल अंश का उल्लेख करने में ही उन्होंने अधिक तल्लीनता व्यक्त की है।

'हरिऔध' जी की भांति गुरुभक्तसिंह जी ने भी अपने काव्य मे मुहाविरों एवं लोकोक्तियो का प्रचुर प्रयोग किया है। इस प्रकार के प्रयोगों से उनकी रचना-शैली को सशक्तता का यथेष्ट परिचय उपलब्ध होता है। कविता को दूर-देश-वर्ती स्पष्ट भावनाओं से मनवित करना उन्हें कभी भी अभीष्ट नहीं रहा। यही कारण है कि उनकी कविताओं में वर्णनात्मकता का हल आवश्यकता से कहीं अधिक मात्रा में संचरित हुआ है। वैसे सहज ग्राह्यता के गुण के सम्पन्न होने के कारण उनकी काव्य-स्थली अत्यन्त मनोरम बन पड़ी है।

'भक्त' जी की कविताओं में आध्यात्म-परक विचारधारा का भी संकेत-रूप से अनेक स्थलों पर समावेश हुआ है। अनुभूति-पक्ष की प्रबलता के कारण उनकी भावनाओं में एक विशेष मार्मिकता एवं हृदय-स्पर्शिता का संचरण हो गया है।

सुभद्रा कुमारी चौहान—कवियित्री सुभद्रा कुमारी चौहान का जन्म संवत् १९६१ में तथा मृत्यु सं० २००५ में हुई। वे अपने युग के सामाजिक, राजनीतिक साहित्यिक जीवन में सदैव एक उल्लेखनीय योग प्रदान करती रहीं। वस्तुत: उनका जीवन स्नेह सेवा और संघर्ष के त्रिक का सफल संयोजन था। स्नेह का भाव उनके व्यवहार में इतन अधिक घुल-मिल गया था कि प्रत्येक अपरिचित व्यक्ति सहज ही में उनके आत्मीय का पद प्राप्त कर लेता था। हिन्दी के प्रति उनके मन में ममता और गौरव दोनों ही थे। निश्चय ही वे अपने समय की एक महान् कला-साधिका थीं।

सुभद्रा कुमारी जी के काव्य में उनकी अपनी ही भावनाओं का प्रतिविम्ब दृष्टिगत होता है। उनकी कविता में एक ओर राजनीतिक आलोचना और जन-जागृति के चिन्ह उपलब्ध होते हैं और दूसरी ओर उसके अञ्चल में पारिवारिक माधुर्य-भाव के पवित्र दर्शन होते हैं प्रेम को उन्होने आत्मसमर्पण की वस्तु माना है और नारी-जीवन की सार्थकता को मातृत्व-भाव ही से देखने का प्रयत्न किया है। उनाके काव्य में शिशु की विभिन्न क्रियाओं का अत्यन्त स्वाभाविक तथा मनोरञ्जक अङ्कण प्राप्त होता है। इस सम्बन्ध मे उनका एक सुन्दर परिस्थिति-चित्र देखिये:—

मैं बचपन को बुला रही थी,
बोल उठी बिटिया मेरी।
नन्दन बन सी फूल उठी,
यह छोटी सी कुटिया मेरी॥

देश में राष्ट्रीय चेतना का अभाव लक्षित कर सुभद्रा जी ने अपनी कविताओं में वीर भावना को भी पर्याप्त प्रश्रय प्रदान किया है। उन्होंने अतीत के स्वर्णिम स्वरूप के दर्शन कर वर्तमान की समस्याओं को उसी के आधार पर समाहारित करने का प्रयास किया है। इस दृष्टि कोण से उनकी निम्नलिखित काव्य-पंक्तियां अत्यन्त स्मरणीय बन पड़ी हैं:—

कह दे अतीत अब मौन त्याग,
लंके तुझमें क्यों लगी आग ?
ऐ कुरुक्षेत्र ? अब जाग जाग,
बतला अपने अनुभव अनन्त।
वीरों का कैसा हो बसन्त ?

सुभद्रा जी अपनी कविताओं में प्रारम्भ से ही आत्म विश्वास को एक गहन भावना लेकर चली हैं। नारी की कोमलता और उसके त्याग की महत्ता का उन्होंने उन्मुक्त शब्दों में स्फुरण किया है। भक्त की तल्लीन साधना को व्यक्त करने मे भी वे पूर्णतः सफल रही हैं। 'मुकुल' में उनकी तत्सम्बन्धी कविताओं में एक विशेष मर्म-स्पर्शिता का संप्रेषण दृष्टिगत होता है। उद्धृत काव्यांश मे उपासना के सत्य का उन्होंने कितना स्वाभाविक उद्घाटन किया है

पूजा और पुजापा प्रभुवर,
इसी पुजारिन को समझो।
दान दक्षिणा और निछावर,
इसी भिखारिन को समझो।
चरणों पर है अर्पण इसको,
चाहो तो स्वीकार करो।
यह तो वस्तु तुम्हारी ही है,
ठुकरा दो या प्यार करो॥

श्री डा० रामकुमार वर्मा—का जन्म सं० १९६२ में मध्य प्रदेश के सागर जिले के अन्तर्गत एक ग्राम में हुआ था। उन्हें अपने जीवन के आरम्भ से ही कविता के प्रति एक विशिष्ट अनुराग था और यही कारण है कि आगे चल कर वे इतने सुन्दर काव्य का सृजन करने में शक्षम हुए। यद्यपि 'वीर हम्मीर' 'कुल ललना' 'चित्तौड़ की चिता' एवं अभिशाप आदि जैसी कृतियों में उनकी काव्य कला का यथेष्ट विकास दृष्टिगत नहो होता, तथापि 'चितवन 'अञ्जलि' 'रूपराशि' 'निशीथ' 'चन्द्र किरण' एवं 'चित्र रेखा' जैसी उत्तर -रचनाएं उनके काव्य के प्रौढ़-भाग का पूर्ण रूप से प्रतिनिधित्व करती हैं।

वर्मा जी की कविताओं में अनुभूति और कल्पना के तत्वों का प्रमुख रूप से संगठन हुआ है। उन्होंने हिन्दी के मध्य कालीन सन्त कवियों की रचनाओं का विशद रूप से अध्ययन किया है। सम्भवतः इसी के प्रभाव स्वरूप उन्होने भौतिकवादी तथ्यों को हीन ग्रन्थियो से मुक्त माना है और अधिकांश मे अध्यात्म परक कविता में ही सृष्टि की है। रहस्यवादी कवि के अनुकूल उन्होने आत्मा मे विश्वात्मा के दर्शन को अपनी कविता का विषय बनाया है। उनके अनुसार कवि का सर्व प्रथम लक्ष्य सृष्टि में अन्तर्भूत सौन्दर्य का अनवेषण करना है। जीवन के पार्थिव स्वरूप के प्रति विरक्ति का प्रदर्शन करते हुऐ एक कविता में वे कहते हैं:—

"क्या शरीर है ? शुष्क धूल का
थोड़ा--सा छवि जाल,
उस छवि में ही छिपा हुआ है
वह भीषण कंकाल,
उस पर इतना गर्व ? अरे,
इतने गौरव का गान,

थोड़ी सी मदिरा है उस पर
सीखा है बलिदान ?

वर्मा जी कविता को छन्द-बद्ध एवं नियम समन्वित देखना चाहते हैं। उनका विश्वास है कि मुक्त वृत्तों से युक्त नाद-सम्बन्धी सहज-सौन्दय से सर्वथा विहीन रहती है। 'आधुनिक कवि' की भूमिका में उन्होंने स्पष्ट कहा है:—

'जिस प्रकार जीवन में आन्तरिक सौन्दर्य के साथ ही साथ वाह्य सौन्दर्य की अपेक्षा है, सिद्धान्त के साथ आचरण की एक रूपता अपेक्षित है, उसी प्रकार कविता में भी अनुभूति के साथ नियमित गति होनीं चाहिये।''

कविता के पश्चात् वर्मा जी ने एकाँकी नाटकों को अपने साहित्य का विषय बनाया है। एकांकियों के क्षेत्र में उन्हों ने अनेक मौलिक प्रयोग किये हैं और अपनी उत्कृष्ट कल्पना के आधार पर उनका यथेष्ट श्रंगार किया है। 'चारुमित्रा', 'पृथ्वी राज की आंखें' और 'रेशमी टाई' उनके एकाँकी नाटकों के सुन्दर संकलन हैं।

अध्यापक होने के नाते आलोचना के प्रति भी वर्मा जो की पर्याप्त रुचि है। कबीर साहित्य पर उनकी गवेषणाएँ हिन्दी–साहित्य में अपना पृथक महत्व रखती हैं। उनकी 'साहित्य समालोचना' 'हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास' तथा 'कबीर का रहस्यवाद' शीर्षक पुस्तकें समीक्षण के दृष्टिकोण से अत्यन्त सुन्दर बन पड़ीं हैं गद्य—काव्य की ओर भी उनका स्वाभाविक अनुराग है। उनकी 'हिमहास' नामक रचना में अनेक श्रेष्ट गद्य –गीतों का संग्रह उपलब्ध होता है।

बाल कृष्ण शर्मा नवीन — नवीन जी उत्तर प्रदेश के कानपुर नगर के निवासी हैं किन्तु आप का जन्म सम्बत १६५४ में ग्वालियर राज्य के एक ग्राम में हुआ था। युवावस्था से ही राष्ट्रोद्धार के कार्यों

में जुट जाने से आपने राजनीतिक क्षेत्र में अच्छा यश अर्जित किया है और उस प्रदेश के चोटी के नेताओं में आपकी गणना की जाती है। काव्य के प्रति आपको छात्र जीवन से ही विशेष अनुराग रहा है और तभी से कवितायें लिखते आ रहे हैं। विप्लव, संघर्ष, क्रान्ति और परिवर्तन की भावना प्रधान होने के कारण आपकी कविता में वाणी का ओजस्वी रूप बड़े नैसर्गिक रूप से फूट पड़ा है। शृंगार-रस से भी आप को प्रेम है और उस रसकी अभिव्यक्ति जिन कविताओं में हुई है वहां मादकता; उन्माद और सहज मस्ती बिखरी पड़ी है। सम्प्रति आप भारतीय संसार के सदस्य हैं। 'अपलक' कुंकुम और रश्मि रेखा आपके तीन कविता - संग्रह प्रकाशित हुए हैं। कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ जिस से उथल पुथल मच जाये—आपकी प्रसिद्ध क्रान्तिकारी कविता है।

कविवर सोहन लाल द्विवेदी हिन्दी के राष्ट्रीय कवियों में अपना अन्यतम स्थान रखते हैं। वे गान्धीवादी सिद्धान्तों के अनुयायी हैं और अहिंसा द्वारा रचनात्मक कार्य करने की ओर उनका सहज-अनुराग है 'पूजागीत' और 'भैरवी' उनकी राष्ट्रीय कविताओं के दो उत्कृष्ट संग्रह हैं। 'चित्रा' में उनकी इतर-विषयक कविताओं का सङ्कलन है और 'वासवदत्ता' बौद्ध–कालीन संस्कृति की एक उत्कृष्ट प्रतीक है। इन सभी कविताओं में स्वातन्त्रय–साधना और आत्मानुभूति का प्राधान्य है।

सोहन लाल जी की कविता में कल्पना के तत्त्व का समावेश है, किन्तु वह कहीं भी अस्वाभाविक न हो पाई है। उन्हें वास्तविकता से प्रेम है और यही कारण है कि उनकी अभिव्यञ्जना में कहीं भी कृत्रिमता का संचरण न हो पाया है। कविवर माखन लाल चतुर्वेदी की प्रतीक-पद्धति के स्थान पर उन्होंने अपने स्वदेश--प्रेम सम्बन्धी गीतों में महाकवि मैथिली शरण गुप्त के सहज अभिव्यक्तिकरण

को अपनाया है। इस दृष्टि से उनकी कविताओं में गति के तत्व का अत्यन्त वाञ्छनीय संविधान हुआ है। उदाहरण के रूप में हम युगावतार गान्धी जी के सम्बन्ध में कही गई उनकी निम्नलिखित पंक्तियाँ लेंगे:—

चल पड़े जिधर दो डग, मग में
चल पड़े कोटि पग उसी ओर,
पड़ गई जिधर भी एक दृष्टि
पड़ गये कोटि दृग उसी ओर।

हृदय-तत्व का प्राधान्य होने के कारण सोहन लाल जी की कविताओं मे कलात्मकता का एक विशेष अंश दृष्टि गोचर होता है। नवीन युग की नवीन भावनाओं का अङ्कण करने में वे सर्वथा सफल रहे हैं। प्राचीन युग की सांस्कृतिक मान्यताओं मे उनका गहन विश्वास है, तथापि वर्तमान के मौलिक उपादानों को ग्रहण करने में वे किसी से पीछे नहीं रहे हैं। उन्होंने जीवन की विभिन्न गति-विधियों का अत्यन्त शान्त रीति से निरीक्षण किया है और एक युग--कवि के अनुरूप ही उन्हें अपने काव्य में यथा-स्थान प्रतिफलित किया है। अपने आदर्श का स्थापन करते समय कर्तव्य की भावना से वे कहीं भी विमुख नहीं हुए।

युवकों के साथ-साथ द्विवेदी जी शिशुओं के भी कवि हैं। आधुनिक युग मे बाल-साहित्य का सृजन करने वालों मे वे सर्व-प्रमुख हैं। इस सम्बन्ध में उनकी 'विगुल', 'झरना' एवं 'शिशु-भारती नामक रचनायें विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। बाल-कविताओं की रचना करते समय उन्होंने मनोविज्ञान के सिद्धान्तों का सर्वत्र ध्यान रखना है और आयु-क्रम के अनुसार भिन्न वयस के शिशुओं के लिये भिन्न प्रकार की कविताओं का प्रणयण किया है। उनकी प्रमुख इच्छा बाल-हृदय में स्वदेश के प्रति एक अनुराग और आदर की भावना

स्थापित करने की ओर प्रेरित है और अपने अभिलषित लक्ष्य की पूर्ति में वे पूर्णतः सफल हुए हैं। वे उनके अन्तर में विश्व-प्रेम एवं सहयोग की एक विशेष भावना स्थापित कर देना चाहते हैं :—

हिल मिल कर साथ रहेंगे हम,
दुख सुख सब साथ सहेंगे हम
नित विमल प्रेम की गंगा में,
घुल मिल कर साथ बहेंगे हम।
लायेंगे नवयुग का विहान।
× × ×
गायेंगे सब मिल नई तान।
हम सब समान, हम सब समान।

—शिशु-भारती

रामधारी सिंह 'दिनकर'—का जन्म संवत् १६६५ वि० मे हुआ था। वह बिहार में मुंगेर जिले के सिमरिया ग्राम के रहने वाले हैं। पटना विश्वविद्यालय से उन्होंने बी० ए० आनर्स की परीक्षा पास की है। रेणुका, विद्रोह, शिखा, रसवन्ती, द्वन्द्वगीत, सामधेनी, हुंकार, कलिंग-विजय, बापू आदि दिनकर जी की प्रकाशित काव्य पुस्तकें हैं। 'कुरुक्षेत्र' इनका प्रबन्ध-काव्य है जो बहुत ही लोक प्रिय हुआ है दिनकर की विकासोन्मुखी काव्य-प्रतिभा अभी साहित्य को बहुत कुछ देगी—ऐसी आशा है। प्रारम्भिक रचनाओ मे हमे छाया वाद का पूर्ण उन्मेष मिलता है पर 'सामधेनी' में कवि का स्वर बदल गया है। उनमें विचारों और भावों का नया उन्मेष है। उन पर युद्ध की विभीषिका की छाया स्पष्ट है।

कवि की जनतंत्र-भावना भारतीयता से अनुप्राणित है, उसका स्वरूप रूस के साम्यवादी आधार पर अवलम्बित नहीं। 'प्रगतिवाद' को साम्यवाद' का साहित्यक पर्याय मानने वालों से कवि सहमत

नहीं। 'रसवन्ती' की भूमिका में कवि ने यह बात स्पष्ट कर दी है - 'प्रगति शब्द में जो नया अर्थ ठूँसा गया है, उसके फल स्वरूप हल और फावड़े कविता का सर्वोच्च विषय सिद्ध किए जा रहे हैं और वातावरण ऐसा बनता जा रहा है कि जीवन की गहराइयों में उतरने वाले कवि सिर उठाकर नहीं चल सकें।'

दिनकर के काव्य में भाव-गाम्भीर्य है। उनकी भाषा में तत्सम, तद्भव और उर्दू के भी शब्दों का प्रयोग हुआ है। उनकी भाषा सजीव, प्रवाहयुक्त और ओजपूर्ण है, उसमें हृदय में स्फूर्ति उत्पन्न करने की शक्ति है और मार्मिक भावों को सफल अभिव्यक्ति हुई हैं।

'दिनकर' की कविता राष्ट्रीय-भावना और साँस्कृतिक चेतना से अनुप्राणित है। हिंदी कविता उन्हें पाकर गौरवान्वित हुई है।

हिमालय के प्रति

मेरे नगपति ! मेरे विशाल !
साकार, दिव्य, गौरव विराट
पौरुष के पुञ्जीभूत ज्वाल
मेरी जननी के हिम किरीट
मेरे भारत के दिव्य भाल
मेरे नगपति ! मेरे विशाल
युग युग अजेय, निर्बन्ध, मुक्त
युग युग गर्वोन्नत, नित महान
निस्सीम व्योम में तान रहा
युग से किस महिमा का वितान
कैसी अखण्ड यह चिर समाधि
पतिवर ! कैसा यह अचर ध्यान

तू महाशून्य में खोज रहा
किस जटिल समस्या का निदान
उलझन का कैसा विषम जाल
मेरे नगपति ! मेरे विशाल !

गीत-अगीत

गीत, अगीत कौन सुन्दर है ?

(१)

गाकर गीत विरह के तटिनी
वेगवती बहती जाती है,
दिल हलका कर लेने को
उपलों से कुछ कहती जाती है।
तट पर एक गुलाब सोचता—
"देते स्वर यदि मुझे विधाता,
अपने पतझड़ के सपनों का
मै भी जग को गीत सुनाता।"
गा-गा कर बह रही निर्झरी,
पाटल मूक खड़ा तट पर है।
गीत, अगीत कौन सुन्दर है ?

(२)

बैठा शुक उस घनी डाल पर
जो खोंते पर छाया देती,
पंख फुला नीचे खोंते में
शुकी बैठ है अंडे सेती।
गाता शुक जब किरण वसन्ती
छूती अंग पर्ण से छन कर,
किन्तु शुकी के गीत उमड़कर

रह जाते सनेह में सनकर ।
गूँज रहा शुक का स्वर वन मे,
फूला मत्त शुकी का स्वर हैं ।
गीत, अगीत कौन सुन्दर है ?

(३)

दो प्रेमी हैं यहाँ, एक जब
बड़े साँझ आल्हा गाता है,
पहला स्वर उसकी राधा को
घर से यहाँ खींच लाता है ।"

चोरी-चोरी खड़ी नीम की
छाया में छिपकर सुनती है,
"हुई न क्यों मैं कड़ी गीत की
विधना यों मन में गुनती है ।"

वह गाता, पर किसी वेग से
फूल रहा इसका अन्तर हैं ।
गीत, अगीत कौन सुन्दर है ?

श्री उदयशंकर भट्ट—जन्म सं० १९२५ मे उत्तर प्रदेश के कर्णवास नामक नगर मे हुआ । भारत विभाजन से पहले आप पंजाब के लाहौर शहर में चिर काल तक रहे और अध्यापन के साथ साहित्य सर्जन भी करते रहे । सम्प्रति आप आँल इंडिया रेडियो दिल्ली मे हिन्दी-परामर्श दाता के रूप में काम कर रहे हैं । भट्टजी यथार्थ वादी कवि हैं । जीवन की गहन अनुभूति और दार्शनिकता का सुन्दर सामंजस्य इनकी रचनाओ में उपलब्ध होता है । सामाजिक वर्ग वैषम्य और उत्पीड़न को आपने अपनी कविता द्वारा व्यक्त किया है अकर्मण्यता, अवसाद और नैराश्य को आप चिनोती देकर सुन्दर आशावाद

को ध्वनित करते रहे हैं। भट्ट जी के कई काव्य प्रकाशित हो चुके है तक्षशिला, मानसी, विसर्जन, अमृत और विष, युगवाणी, यथार्थ और कल्पना युगदीप, मत्स्य गंधा आदि प्रर्याप्त प्रसिद्ध हैं। भट्ट जी भाषा की दृष्टि से बड़ी क्षमता रखने वाले कवि हैं। हिन्दी में बहुत कम कवियों के पास इतनी समृद्ध भाषा और अभिव्यक्ति है जितनी भट्ट जी के पास है।

हरिवंश राय 'बच्चन – कविवर हरिवंश राय 'बच्चन इलाहाबाद विश्वविद्यालय के अंग्रेजी विभाग मे अध्यापन कार्य करते हैं। हिन्दी की व्यक्ति वादी काव्य धारा में उनकी रचनाओं का एक पृथक अस्तित्व है। अपनी कविताओं का सृजन करने से पूर्व उन्होंने निकट-वर्ती परिस्थितियों का सम्यक अवलोकन किया है। वातावरण की प्रतिकूलता से उन्हें सदैव एक निकट संघर्ष करना पड़ा है और संघर्ष की इस तिक्तता के विस्मृत करने के हेतु ही उन्होंने अपनी कविता के अधिकांश भाग का सृजन किया है। उनकी हालावाद से सम्बन्धित कविताओं में इसी प्रकार की प्रवृत्ति दृष्टिगत होती है।

बच्चन ने आध्यात्मिकता के कल्पित आदर्शवाद का निराकरण कर प्रत्यक्ष भोगवाद के सिद्धान्तों में विश्वास व्यक्त किया है। आरम्भ मे उनकी कविताओं मे यौवन की कल्पनाओं का सहज सम्मिश्रण दृष्टिगत होता है, किन्तु उनकी उत्तर कालीन रचनाओं में जीवन की विभिन्न विषमताओं की अत्यन्त गम्भीर एवं प्रौढ़ अभिव्यक्ति हुई है। उन्होने वाह्य-दर्शन की अपेक्षा आत्म-दर्शन की प्रवति को कहीं अधिक मान्यता प्रदान की है।

'सतरंगिनी' में बच्चन ने अपनी व्यक्ति-वादी विचार-धारा को समाज की गति-विधि मे सम्मिलित करने का प्रयत्न किया है, किन्तु इस प्रयास मे वे प्राय: असफल ही रहे हैं। इसी कारण अन्त में एक प्रबल प्रेरणा का अनुभव करते हुए भी वे कुछ-कुछ पलायन

वादी मनोवृत्ति की ओर उन्मुख हुए हैं । इस सम्बन्ध में उनकी निम्नलिखित पंक्तियाँ उल्लेखनीय है:--

कल सुधारूँगा हुई
संसार से जो भूल,
कल उठाऊँगा भुजा
अन्याय के प्रतिकूल,
आज तो कह दो कि मेरा
बन्द शयनागार ।

बौद्धिक चिन्तन और कल्पित सौन्दर्य के स्थान पर बच्चन की कविता में अनुभूत भावना को ही प्रमुख स्थान उपलब्ध हुआ है । उनकी कविता समस्या-मूलक ग्रन्थियों से शून्य एवं सरल-स्पष्ट है । प्रकृति और जगत् का अध्ययन करते समय उन्होंने आत्म-परक सूक्ष्म-दर्शन का ही आश्रय ग्रहण किया है ।

गेयात्मकता की दृष्टि से बच्चन की कविता हिन्दी की वर्तमान रचनाओं मे अत्यन्त महत्व-पूर्ण है । 'निशानिमन्त्रण', 'मिलन यामिनी' एवं 'एकान्त संगीत मे उनके अनेक सुन्दर गीतों का सङ्कलन उपलब्ध होता है । बच्चन के काव्य मे मनोवेगों का प्राधान्य है । 'मधुवाला' 'मधुशाला' और 'मधुकलश' में उनकी इसी भावना की प्रतिकृति प्राप्त होती है । यद्यपि गान्धी जी के निर्वाण के अनन्तर उन्होंने उनके सिद्धान्तों के प्रति आस्था प्रकट करने के लिए भी कुछ कविताओं का सृजन किया है. किन्तु वे उनके काव्य की प्रमुख वृत्तियों से सम्बद्ध नहीं हैं और यही कारण है कि उनकी रचना में वे प्रायः असफल रहे हैं । वे उमर ख़य्याम के अनुयायी हैं और हालावादी कविता के प्रमुख प्रवर्त्तक हैं । वस्तुत: उनकी वही कविता सर्वाधिक सुन्दर बन पड़ीं हैं ।

आरसी प्रसाद सिंह:—बिहार के कवियों मे श्री आरसी

प्रसाद सिंह का नाम बहुत प्रसिद्ध है। शृङ्गार, प्रेम और वासना की जलन से ओत प्रोत रससिक्त कविता लिखने में आपने अच्छी सफलता प्राप्त की है। छायावादी कवियों की कोमल कान्त पदावली को अपना कर आपने बड़ी सरस रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। प्रकृति-चित्रण आपके काव्य में अच्छा हुआ है 'आरसी' और 'कलापी' आपकी रचनाओं के विशाल संग्रह है। कविता लिखने में आपको विशेष प्रयास नहीं करना पड़ता—साधारण से साधारण विषय पर भी आप कविता लिखने की प्रेरणा प्राप्त कर लेते हैं।

नरेन्द्र शर्मा— कविवर पन्त की भांति श्रीयुत नरेन्द्र शर्मा ने भी प्रकृति के अपनी निकट सहचरी के रूप में दर्शन किये हैं। उनकी कविताओं में सौन्दर्य और प्रगतिवाद का साथ-साथ अन्तर्निहन हुआ है। गीततत्व से संयुक्त होने के कारण उनका काव्य अपने में अत्यन्त आकर्षक एवं मनोरम बन पड़ा है। 'पलाशवन', 'प्रभात-फेरी', 'प्रवासी के गीत', 'कर्ण-फूल', 'कामिनी' तथा 'मिट्टी और फूल' उनके उत्कृष्ट काव्य-संग्रह हैं।

'पलाश-वन' की प्रथम कविता में ही नरेन्द्र शर्मा हमारे सम्मुख आशा वाद का रमणीय सन्देश प्रस्तुत करते हैं। शैली और भावना, दोनों ही की दृष्टि से उनकी निम्नलिखित पंक्तियाँ अत्यन्त मौलिक तथा सुन्दर बन पड़ीं हैं:—

पतझर की सूखी शाखों में लग गई आग, शोले लहके !
चिनगी-सी कलियाँ खिलीं और हर फुनगी लाल फूल दहके !

प्रकृति के पश्चात् नरेन्द्र शर्मा को कविताओं का दूसरा प्रधान स्वर प्रेम और सौन्दर्य की भावात्मक अभिव्यञ्जना का स्वर है। किन्तु यह स्पष्ट है कि उनकी प्रेम-सम्बन्धी कविताओं में ऐहिक तृष्णा के अतिशय गर्हित स्वरूप का समावेश कहीं भी नहीं हुआ है। इस सम्बन्ध में वे अपना एक पृथक् आदर्श ले कर चले हैं और उन्होंने

उसकी सात्त्विकता का सर्वत्र समान रूप से पालन किया है। एक छन्द में प्रियतमा की रूप श्री के सर्व-व्यापी प्रभाव का वे इस प्रकार उल्लेख करते हैं —

तुम आती हो तो
बादल-सा हट जाता है,
सब आसमान खुल जाता है,
खिल जाती है पल में प्रसून-सी नरम धूप !

नरेन्द्र शर्मा उन कवियों में से हैं जिन्होंने प्रगतिवाद को साहित्य का वास्तविक स्तर प्रदान किया। उसके अभावों को भी उन्होंने एक पूर्णता प्रदान की और उसकी विग्रहात्मक भावनाओं को एक नूतन प्रेरणा के सम्बल से विभूषित किया। शोषित जनता की मूक व्यथा का उन्होंने वास्तविक अर्थों में अनुभव किया और अपने काव्य के माध्यम से उसे अत्यन्त मार्मिक रूप में उपस्थित किया। उनकी तत्सम्बन्धी कविताएँ प्रभावोत्पादन की एक महती शक्ति से युक्त हैं।

आधुनिक युग की व्यक्ति-परक काव्य-धारा मे भी नरेन्द्र शर्मा ने पर्याप्त योग दिया है। उनकी आत्माभिव्यक्ति से सम्बन्धित कविताएँ किसी प्रकार की पलायन-वादी वृत्ति से संयुक्त नहीं है। किन्तु फिर भी एक निराशावादी स्वर की अवस्थिति उसमे अवश्य है.—

चैत की मधु चाँदनी में
नीम देखे मधुर सपना,
और मैं ? मैं ज्यों दिवस के
चौंक ऐसा प्रेत्त अपना !
सार जीवन का भुलाया; भार जीवन का बढ़ाया,
हर घड़ी, हर याम ने !

श्री सच्चिदानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय'— अज्ञेय जी आधुनिक युग

के उन कलाकारों में हैं जो अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा के कारण हिन्दी साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। आलोचक और उपन्यासकार के रूप में आपका परिचय हमने पहले दिया है। कवि के रूप में भी आप अपनी मौलिकता और प्रयोग शीलता के कारण बहुत विख्यात हैं। कविता के माध्यम से सूक्ष्म और तरल भावों को व्यक्त करने की जैसी चातुरी आपकी लघुकाय कविताओं में दृष्टिगत होती है वह हिन्दी के लिए बहुत कुछ नई है। भाषा, भाव, छन्द सभी दिशाओं में आपने नवीन प्रयोगों का चमत्कार दिखाया है। कविता दार्शनिक चिन्तन की गुरुता को स्वाभाविक रूप से ग्रहण नहीं करती किन्तु यदि कवि समर्थ और प्राणवान है तो वह दर्शन और चिन्तन को इतनी सरलता से व्यक्त कर देता है कि पाठक को रसानुभूति मे कोई बाधा नहीं आती। अज्ञेय की कविताओं की यही प्रमुख विशेषता है। कविता में प्रयोग वाद नाम से नये प्रयोगों का श्रेय भी आपको ही है।

श्री रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' - श्री अंचल हिन्दी के एक सफल कलाकार है। कविता के अतिरिक्त उपन्यास और निबन्ध लिखने मे भी आपने अच्छी ख्याति उपलब्ध की है। हिन्दी में प्रगतिवादी काव्य धारा के प्रवाहित होते ही अंचल ने उसमें विशेष्ट योग दिया और सरस काव्य शैली द्वारा प्रगतिवादी दृष्टिकोण को अपनी वाणी से ध्वनित किया। यद्यपि बाद मे तथा कथित प्रगतिवादी कवि या लेखकों ने इन्हें सच्चे अर्थों में प्रगतिवादी मानने से साफ इन्कार करना शुरू कर दिया। किन्तु यदि किसी व्यक्ति विशेष के मानने या न मानने की बात को यथार्थ परीक्षण से पृथक् रखा जाय तो कहना होगा कि श्री अंचल की प्रारम्भिक रचनाओं में राग की भाव भूमि पर प्रगति को चरितार्थ करने का सक्रिय प्रयत्न दृष्टिगोचर होता है। अंचल ने समाज के उस वर्ग को अपनी कविता में अंकित किया जो दलित,

पतित, शोषित या निम्न वर्ग में परिगणित होता है।

वेश्यावृत्ति, पाप, दुराचार और पूंजीपतियों के दुराचार पूर्ण कृत्यों का वर्णन करके कवि ने उनके प्रति विराग और आक्रोश को प्रवल किया है अतः हम उन्हें प्रगतिवादी विचार धारा का समर्थक ही कहेंगे। हां-इतना अवश्य है कि कविता की शैली पूरी तरह से रोमान्टिक—सरस प्रेमगीतों से परि-पूर्ण और मादक है। यदि केवल शैली के कारण ही उन्हें प्रगतिवादी कैम्प से निकाला जाय तो शायद यह मूल भावना को न समझना होगा। पीड़ित मानवता के चित्र प्रस्तुत करने में भी अंचल को अच्छी सफलता मिली है। अंचल की काव्य गति अभी स्थिर होकर एक दिशा में जम कर नहीं बैठ गई है। उसमें नूतनता के लक्षण दृष्टिगत होते हैं।

श्री शिव मङ्गल सिंह 'सुमन'—हिन्दी कविता में मार्मिकता तथा अभिव्यक्ति का चुटीलापन लाने वाले नवयुवक कवियों में सुमन अपना विशेष स्थान रखते हैं। उर्दू शायरी के समान लघु भाव खंड के आधार पर सुन्दर रचना चातुर्य आपकी छोटी-छोटी कविताओं में दृष्टिगत होता है। सुमन युग की भावनाओं को पकड़ कर उसके गीत गाने की कला में इतने दक्ष हैं कि श्रोता यदि उनकी वाणी से कविता पाठ सुन ले तो मुग्ध हुए बिना नहीं रह सकता। कविता की मूल प्रेरणा प्रगति और जीवन है। युग चेतना को प्रचुर करना, उसे विकासोन्मुख बनाना तथा पुरातन को दलदल से निकालने का सन्देश आपको कविता का मूल विषय है। प्रेम और बलिदान के गीतों मे कवि का सरस और उन्मुक्त रूप देखने को मिलता है। 'जीवन के गान' 'हिल्लोल' 'प्रलयसृजन नाम मे कई कविता संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। हिन्दी साहित्य में गीति काव्य की परम्परा पर आपने अनुसन्धान पूर्ण थीसिस लिखा है जिस पर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से आपको डा० लिट की उपाधि मिली है।

सम्प्रति आप उज्जैन के माधव कॉलेज में हिन्दी अध्यापक के रूप में कार्य कर रहे है। हिन्दी कविता को लोकप्रिय, सरल और भावपूर्ण बनाने वाले कवियो मे आपको विशेष स्थान प्राप्त है।

श्री केदार नाथ अग्रवाल—प्रगतिवादी कवियो में व्यंग्यात्मक शैली की प्रहारपूर्ण कविता लिखने वाले तरुण कवियों में आपने अच्छा यश उपार्जित किया है। कविता का विषय चाहे कुछ हो किन्तु उसमें प्रगतिवादी विचार की छटा ला देना आपकी विशेषता कहा जायगा। फूल-पत्रों के वर्णन से लेकर राजमहलों या सेठ साहूकारों के वर्णन तक एक भाव-धारा का ऐसा साम्य परिलक्षित होता है कि हम यह अनुभव नहीं कर पाते कि कवि की मनसा में किस भाव की प्रमुखता है। वह दृश्याङ्कन में रम रहा है या व्यंग्य के द्वारा किसी दूसरे प्रभाव की सृष्टि करना चाहता है। अधिकाँश कविताओं मे रूप छटा के साथ उस भाव पर बल दिया जाता है जो प्रगतिवाद का साम्प्रदायिक घोष है। किन्तु कवि की सफलता केवल कला मे है। कलाकार की सूक्ष्म दृष्टि होने से कविता कहीं भी बोझिल या प्रचारोद्दिष्ट होने का ढिढोंरा नहीं पीटती। उसका प्रचारात्मक दृष्टिकोण प्रच्छन्न न रहने पर भी खटकता नहीं। प्रगतिवादी कवियों मे अग्रवाल की यह विशेषता ही उनके यश का कारण है।

छायावाद और प्रगतिवाद के उपर्युक्त प्रमुख कवियो के अतिरिक्त कतिपय अन्य कवि भी अपनी काव्य धारा से हिन्दी साहित्य को समृद्ध करने मे लीन है। कुछ कवियों ने तो नूतन प्रयोग द्वारा ही भावाभिव्यक्ति करना अपना लक्ष्य बना लिया है। जिसे आलोचक 'प्रयोगवाद' नाम से व्यवहृत करने लगे हैं। यथार्थ मे प्रयोगवाद कोई वाद जैसी वस्तु तो नहीं है, फिर भी अन्य वादों से अलग करने के लिये शैली को भी वाद का नाम दे दिया गया है। काव्य में प्रयोग या परीक्षण करने की परिपाटी कोई नई परिपाटी नहीं है, चिर

अनादि से यह होता आया है किन्तु आज आयासपूर्वक उसे विधान के रूप में चरितार्थ किया जा रहा है इसी कारण आलोचक उसे प्रयोग-वाद के नाम से पुकारते हैं।

कुछ कवि प्रयोगवाद की प्रेरणा से न लिख कर भी अच्छी कवितायें लिखने में समर्थ हुये हैं। गोपालसिंह नेपाली, जानकीवल्लभ शास्त्री, हंसकुमार तिवारी, बलवीरसिंह रंग, गिरजाकुमार माथुर, प्रभाकर माचवे आदि का नाम विशेषरूप से उल्लेखनीय है।

वर्तमान हिन्दी कविता पर कुछ बाह्य प्रभाव

वर्तमान हिन्दी कविता को प्रभावित करने वाली प्रमुख प्रवृत्तियों का यथा स्थान उल्लेख किया गया है। यदि उन प्रवृत्तियों का नाम रूप से परिगणन किया जाय तो छायावाद के अतिरिक्त राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविता, गांधीवादी विचार धारा की कविता, वैयक्तिक अनुभूतिपरक कविता, प्रगतिवादी कविता और प्रयोगवादी कविता के नाम से इन्हें गिना जा सकता है। राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविता की मूल प्रेरणा नवीन नहीं है—भारतीय अध्यात्मपरक भावना के साथ इस विचार धारा का छायावाद के युग से भी पहले सूत्रपात हो चुका था। किन्तु वर्तमान युग में आकर उसने नवीन रूप धारण किया इस कारण वह इस युग की प्रमुख प्रवृत्ति समझी जाने लगी। गांधीवाद का प्रचार भी इस युग की कविता द्वारा हुआ। सियारामशरण गुप्त, सोहनलाल द्विवेदी, माखन-लाल चतुर्वेदी आदि कवियों ने गांधीवादी दृष्टिकोण को अच्छी शैली से कविता द्वारा अभिव्यक्त किया। वैयक्तिक कविता में बच्चन, नरेन्द्र-शर्मा आदि कवियों का उल्लेख पहले हो चुका है।

सन १९४२ के स्वतन्त्रता आन्दोलन ने तथा बंगाल के अकाल ने हिन्दी कविता को दो नये विषय दिये। इन दोनों विषयों पर अनेक कवियों ने फुटकर कवितायें लिखी। बंगाल के अकाल पर श्रीमती महादेवी वर्मा द्वारा सम्पादित 'वंग-दर्शन' नामक एक कविता-संग्रह

प्रकाशित किया जो बंगाल के अकाल द्वारा उत्पन्न देश की विक्षोभ-दशा का अच्छा आभास देता है। बच्चन की बंगाल का अकाल रचना भी इस विषय पर सुन्दर कृति है।

सन १६४१ मे द्वितीय महायुद्ध का परोक्ष रूप से भारत पर भी गहरा प्रभाव पड़ा और उसने भारत को सांस्कृतिक एवं साहित्यिक चेतना को भी स्पर्श किया। हिन्दी कविता पर भी इस युद्ध का प्रभाव पड़ा और कवियों ने युद्ध तथा विनाश के विरोध में अपनी वाणी को मुखरित किया। युद्ध समाप्ति पर आजाद हिन्द फौज, नाविक-विद्रोह, भारत विभाजन महात्मा गांधी का वलिदान आदि विषय भी हिन्दी कविता मे प्रतिध्वनित हुए। इन समस्त वाह्य एवं अभ्यन्तर प्रभावों को ग्रहण कर हिन्दी कवियों ने अपनी रचनाएं प्रस्तुत कीं।

आज हिन्दी कविता देश की स्वतंत्रता के अनुकूल उसके देशा-भिमान और गौरव को प्रबुद्ध करने में लीन नहीं हो रही है यह खेद और आश्चर्य की बात है। दो एक कवियों को छोड़कर प्रायः सभी पुरातन शैली से स्फुट कविताएं लिख कर ही अपनी आत्माभिव्यक्ति को सीमित बनाए हुए हैं।

हिन्दी साहित्य का भविष्य

कविता के अतिरिक्त उपन्यास, नाटक, निबंध, कहानी और अन्य सामान्य ज्ञानोपयोगी विषयों पर उत्तम कोटि का साहित्य सृजन हो रहा है। हिन्दी कहानी और उपन्यास मे अंग्रेजी की भांति विचारो-त्तेजक, मनोवैज्ञानिक उच्च कोटि की रचनायें हो रही हैं। भाषा को सर्वाङ्गन तथा समृद्ध बनाने के लिए शब्दकोष, पारिभाषिक कोष, आदि ग्रन्थों का प्रणयन भी हो रहा है। प्रान्तीय भाषाओं के साथ समन्वय करके अनुवाद की दिशा में भी प्रयत्न हो रहा है। राष्ट्रभाषा के पद पर हिन्दी के आसोन होने पर हिन्दी का भविष्य उज्वल दृष्टिगत होना स्वाभाविक है।